ISSN : 2321-3922
जनवरी -2023
RNI-BIHHIN05394
वर्ष-11 अंक-32

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

जनवरी–मार्च – 2023

प्रकाशन : 27 जनवरी 2013

श्री दयानन्द जायसवाल
संस्थापक–सह–प्रधान संपादक

डॉ. विजय कुमार सिंह
संयोजक

श्रीमती अनिता जायसवाल
संरक्षक

डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
सम्पादक मंडल

अश्विनी प्रजावंशी
सम्पादक मंडल

श्रीमती छाया पाण्डेय
संस्थापक सदस्य

श्रीमती संयुक्ता गुप्ता
संस्थापक सदस्य

कार्यालय प्रभारी

बिरजू कुमार
भागलपुर
7004435995

सुमित भारती
कोलकाता
8757689138

सौरभ भारती
दिल्ली
8699170450

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक :

श्री दयानन्द जायसवाल

संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं
समस्त व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922
वर्ष–10, अंक–32

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल

मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303
वेबसाईट : www.susambhavya.com
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922
जनवरी–मार्च – 2023

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतर्राष्ट्रीय स्तर की हिंदी त्रैमासिक है जो वर्तमान समय में विश्व के विभिन्न देशों के पाठक सहित भारत के लगभग सभी शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि अप्रैल 2023 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ, कोरियर या डाक से संपादक के पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com
Mob.: 9931240303

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303

नोट : कृपया अपनी रचनाएँ kurtidev -010 में ही ई मेल से भेजें अन्यथा स्वीकृत नहीं होगी।

अनुक्रम

पुरोवाक्	संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	5
समीक्षा	साहित्य साधक का समग्र मूल्यांकन	डॉ. लव कुमार	6
कविता	परमात्मा से वार्तालाप	निखिल राज	7
कविताएँ	माँ, भूख, अछूत के बेटे	डॉ. गिरिजा शंकर मोदी	8
समीक्षा	राजेन्द्र सिन्हा एक संवेदनशील कथाकार	डॉ. प्रमोद प्रियदर्शी	9
समीक्षा	विनय मिश्र की ग़ज़लों में रचनात्मक वैशिष्ट्य	डॉ. वरुण कुमार तिवारी	11
लघुकथा	अली बर्ड्स	सीताराम गुप्ता	12
समीक्षा	चेतना जगाती विचारमूलक कथाएँ	सूर्यकांत नागर	13
समीक्षा	संस्मरण का संदूक समीक्षा के सिक्के में नए प्रतिमान	डॉ. अवधेश कु. चन्सौलिया	14
लघुकथा	स्मृति अगर होती	संजय वर्मा 'दृष्टि'	15
आलेख	भारतवर्ष का अंग गौरव	विजय वर्धन	16
आलेख	क्या है भारत, क्या है भारतीयता	डॉ. निरुपमा श्रीवास्तव	21
आलेख	अंग्रेजी मानसिकता से मुक्त हों	आचार्य बलवन्त	25
लघुशोध	संपूर्ण नारीत्व की तलाश नारी के लिए मृगतृष्णा	सुभाषचन्द्र झा	28
आलेख	संगति और कुसंगति	डॉ. अमर सिंह बधान	33
आलेख	कैसे–कैसे रावण जीवित हैं अब भी	''	35
कविता	सूरज की पहली किरण	देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव	36
आलेख	अंधेरे से प्रकाश की ओर जाने का पर्व है दिवाली	आकांक्षा यादव	37
कविता	आखिर क्यों	अशोक सिंह	38
आलेख	हिन्दी की वीणा हैं गोपाल दास 'नीरज'	कृष्ण कुमार यादव	39
वार्ता	नवगीत साहित्य का यथार्थ	जयशंकर शुक्ल	41
आलेख	साहित्य में अवसरवाद	ज्ञानीचोर 'शोधार्थी'	45
कविता	आम्रपाली	अनामिका	46
कहानी	सीमांकन	डॉ. विवेक द्विवेदी	47
कहानी	किरका डोंगा	श्रीमती रजनी शर्मा वस्तारिया	52
लघुकथा	दुर्लभ होते हैं ऐसे मददगार	सीताराम गुप्ता	12,53
कहानी	कि तुम मेरी जिन्दगी हो	डॉ. पूरण सिंह	54
कहानी	मन का डर	सविता मिश्रा	57
कहानी	सम बॉडी इज सनराइज	दिलीप कुमार सिंह	59
कहानी	रोजगार	शंकरलाल माहेश्वरी	62

नववर्ष

शुभाशिष, शुभकामना, शुभभावना वर
अर्धरात्रि का विशद उल्लास भर
नव वर्ष आगमन के सम्मान पर
चिर तृप्ति अमरता पूर्ण प्रहर

नमन वनभोर की पहली किरण पर
नमन प्रखर ज्योति पुंज निरंतर
परम शक्ति को नत प्रणत कर
धन्य हूँ कर, करबद्ध नमन ईश्वर

नवकल्पना, नवसृष्टि का आहवान कर
जीवन में नवरंग बुनकर
जो बीता, जो होगा नव साथ फिर
जीवन है सुर–ताल सा सुंदर

दुर्लभ जीवन में सुवास भरकर
संकल्पों के थाल सजाकर
नव चेतना, नव प्राण लेकर
अक्षत कुंकुम सजे नववर्ष भाल पर।

मीनाक्षी

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

मानव–समाज और जीवन की प्राचीन धारणाएँ, सांस्कृतिक मर्यादाएँ एवं आदर्शोन्मुख अवधारणाएँ धीरे–धीरे विनष्ट होती जा रही है और उनके स्थान पर तीव्रगति से स्थापित हो रही हैं। सभ्यता और संस्कृति की धारा भी समान रूप से गतिशील है। समसामयिक परिप्रेक्ष्य में नैतिक मूल्यों का अवमूल्यन तीव्रगति से बढ़ा है। अपने बुजुर्गों और बड़ों के प्रति शिष्टता, विनम्रता और शालीनता भाव त्यागकर नई पीढ़ी अशिष्ट, अमर्यादित और असभ्य आचरण की ओर आकर्षित हो रही है। ऐसी स्थिति में साहित्यकारों, धर्माचार्यों एवं स्वयंसेवी संस्थाओं को चाहिए कि मूल्यों का पुनःस्थापित करें, ताकि जन जागरण द्वारा नव्य समाज की निर्मिति हो सके। खासकर नैतिक मूल्यों की सांस्कृतिक विरासत को भावी पीढ़ी के हाथों में सौंपने का पुनीत दायित्व साहित्यकारों को निभाने की जिम्मेवारी है। पर, सहयोग अन्य संस्थाओं और शिक्षण संस्थाओं का भी लिया जा सकता है। नैतिक मूल्यों में सदैव से ही मानव के शान और आचरण में प्रसिद्धि और जीवन को सही दिशा मे ले जाने का सामर्थ्य जीवन मूल्यों में ही है।

समसामयिक परिप्रेक्ष्य में संस्कृति और मूल्यों के बीच द्वंद्वात्मक संघर्ष चल रहा है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मूल्यों में तेजी से गिरावट आई है। पाश्चात्य संस्कृति से कामवृत्ति और अर्थ संग्रह प्रवृत्ति भारत में आयात कर ली गई है। मार्क्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद मूल्यों, जीवन मूल्यों, पारंपरिक मूल्यों, राष्ट्रीय मूल्यों तथा सामाजिक मूल्यों को पुनर्स्थापित करने हेतु समाज के सभी वर्गों को आगे आना होगा, सम्मिलित दायित्व निर्वहन करना होगा। भूमंडलीकरण के कारण मानव की सीमाएँ विस्तृत और व्यापक हो गई हैं। आज मानव की मानवतावादी अपनाने की तथा पूरी संवेदनशीलता और जागरुकता के साथ राष्ट्रवादी मुख्य धारा से जुड़ने की आवश्यकता है। बहुधर्मी और बहुआयामी होने के कारण मानव का मानसिक स्तर व्यापक और विस्तृत होते हुए भी अर्थलोलुपता और काम पिपासा के दलदल में फँसता जा रहा है, जिससे मुक्त होने की आवश्यकता है। यही कारण है कि आज मानव भौतिक समृद्धि की ओर तेजी से बढ़ता हुआ जीवन मूल्यों की चिंता नहीं कर रहा है। मानव जीवन के समग्र विकास और कल्याण के लिए जीवनमूल्यों का विशेष महत्त्व है। नैतिक मूल्यों, जीवनमूल्यों और संस्कारों की लेखनी चलाकर राष्ट्रोत्थान और समाजोत्थान किया जा सकता है। आज की दिग्भ्रमित युवापीढ़ी को नैतिक मूल्यों की सार्वभौमिक और सार्वकालिक प्रासंगिकता सम्प्रति समझाने की आवश्यकता है, ताकि विश्व अपना नैतिक वैभव और आदर्शवादी चरित्र पुनः प्राप्त कर सके। जीवन में नैतिक मूल्यों का व्यक्तिगत, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास करने का भी विशेष महत्त्व है।

चिंतन और मूल्यों के बदलते इस परिवेश में अपने भावबोध को बौद्धिक और सांस्कृति चिंतन से विकसित करने की आवश्यकता है। बुद्धिजीवी और साहित्यकारों की इसमें निर्णायक भूमिका सिद्ध होगी। मानव के सकारात्मक सृजनशक्ति बढ़ाने की आवश्यकता है। जीवन की अनंत संभावनाएँ हैं, फिर भी मानव नकारात्मक सोच और उपभोक्तवादी संस्कृति के भँवर में पड़कर मानवमूल्यों की अस्वीकृति में व्यस्त है। यही कारण है कि भारतीय परंपरागत सांस्कृतिक परिवेश आज प्रदूषित हो गया है।

सांस्कृतिक परंपराओं, नैतिक विचारधाराओं, रचनात्मक और सृजनात्मक अवधारणाओं को मद्देनजर रखते हुए समाजहित और राष्ट्रहित में कार्य करना ही मानवीय मूल्यों के प्रति समर्पित होना है। यही आज वैश्विक आवश्यकता है। सार्वभौम मूल्यों को आत्मसात् करना और उसे व्यावहारिक धरातल पर प्रतिष्ठित करना ही रचनाकार के जीवन का उद्देश्य होता है। यही सार्वभौमिक मूल्य 'सत्यं, शिवं एवं सुन्दरम्' के रूप में साहित्य में अभिव्यक्ति पाते हैं। इसके कारण ही साहित्य कालजयी बन पाता है। विश्व की सुदृढ़ता और शक्तिमत्ता के आधारस्तंभ की यह जीवनमूल्य है। साहित्य, संगीत, कला, नीतिशास्त्र, तर्कशास्त्र, सौंदर्यशास्त्र आदि जीवनमूल्यों के निर्धारक तत्त्व हैं। इसका अस्तित्व मानव के सद्आचरण, सद्व्यवहार एवं संकल्प में निहित है और यही आदर्श और सिद्धांत मानवीय मूल्यों के प्रति आकृष्ट करते हैं।

आज विश्व संक्रमण की स्थिति से गुजर रहा है, फिर भी सकारात्मक सोच, रचनात्मक ऊर्जा एवं मूल्यपरक साहित्य सृजन के द्वारा ही मानव–समाज को रुग्नावस्था से निजात दिला सकता है। सम्यक् प्रयास ही गुणात्मक विकास ला सकते हैं। बाजार और मीडिया तंत्र को भी नियंत्रण करने की आवश्यकता है। जीवन–मूल्यों के तंत्र नव्य–आयाम से प्रस्तुत किये जा सकते हैं। मानव जीवन के व्यापक हितों को ध्यान में रखकर खुली आँखों से साहित्यकारों, सामाजिक, सांस्कृतिक संस्थाओं को इसकी प्रतिस्थापना हेतु आगे आकर सहयोग करने की महती आवश्यकता है, ताकि समाज, साहित्य, राष्ट्र एवं संस्कृति सुरक्षित रहे। सधन्यवाद!

समीक्षा

साहित्य साधक का समग्र मूल्यांकन

डॉ. लव कुमार
गढ़बनैली, पूर्णियाँ (बिहार)
मो.–9430276299

कोसी अंचल के विख्यात साहित्यकार डॉ. मधुकर गंगाधर का साहित्य–लेखन किसी परिचय का मोहताज नहीं, क्योंकि उनकी रचनाएँ केवल कोसी अंचल की भौगोलिक सीमाओं में ही घिरकर नहीं रह गई है। साहित्य की विभिन्न विधाओं में समान अधिकार के साथ लिखनेवाले मधुकर जी का जीवन और रचना के बीच का सन्तुलन अथवा तादात्म्य का अन्तर्सम्बन्ध इतना मजबूत और स्वाभाविक है कि उनकी रचनाओं में आया तथ्य किसी बौद्धिक जुगाली से निःसृत महसूस न होकर, अपने परिवेश और गाँव–समाज के बीच से उभरता एवं विकसित महसूस होता है। डॉ. वरुण कुमार तिवारी की समीक्ष्य कृति 'डॉ. मधुकर गंगाधर की साहित्य साधना' अपने विषय और वस्तुगत कलेवर में नए विचार सन्दर्भों को समाहित किए हुए है। रचना केन्द्रित आलोचना से शुरूआत करते हुए लेखक ने यह साबित किया है कि देश के वैचारिक पुनर्जन्म के साथ ही साहित्यिक–सांस्कृतिक
क्षेत्र में भी पुनर्जीवन की नई आशा का संचार हुआ और नए बौद्धिक अभियानों द्वारा अपनी जातीय तथा राष्ट्रीय अस्मिता का एहसास हुआ। कथाकार मधुकर जी ने सृजन के जिन पक्षों पर अपनी कलम चलाई है, उनपर अपनी सृजनात्मक चेतना और बौद्धिक तार्किकता से युक्त संवेदना की छाप छोड़ी है। इसलिए मधुकर जी के बहुआयामी साहित्यिक अवदानों का समग्र मूल्यांकन करने के लिए पूरी पुस्तक को मूलतः दस भागों में बाँट लिया गया है। इन दस अध्यायों में मधुकर जी के कथाकार, उपन्यासकार, कवि, संस्मरण लेखक, अनुवादक, नाटककार और साक्षात्कार को केन्द्र में रखकर उनकी रचनाओं का मूल्यांकन किया गया है, जो इस दृष्टि से निष्पक्ष एवं सन्तुलित है। डॉ. तिवारी ने इन समीक्षित कृतियों की प्रशंसा गाथा ही नहीं गायी है, अपितु जहाँ जो विचार तर्कहीन, अर्थहीन अथवा विरोधाभासी लगे हैं, वहाँ उन्होंने तटस्थतापूर्वक अपनी
बेबाक अभिव्यक्तियों को रोका नहीं है। सामाजिक और युगीन दृष्टि से प्रासंगिक रचनाएँ प्रायः रचनाकारों को भी यश और सम्मान देती हैं और जनजीवन से जुड़ी रचनाएँ जितनी अधिक संवेदनशील और अनुभवगम्य होंगी, रचना की स्वाभाविकता और सहजता उतनी ही अधिक होगी। मधुकर जी की कहानियों
और कविताओं में यह स्वाभाविकता एकाधिक स्थलों पर देखने को मिलती है, पर अत्यधिक भावोद्रेक भी कृति की सामरस्यता को प्रभावित करती है। वरुण कुमार तिवारी ने इन दोनों अतियों को समान रूप से पकड़ने और अपनी समीक्षाओं में उद्घाटित करने की चेष्टा की है।

'मधुकर गंगाधर' समय–समाज का दृष्टि–सम्पन्न साहित्यकार नामक पहले अध्याय में लेखक ने मधुकर जी के व्यक्तित्व और परिवेश की गहन जाँच–पड़ताल की है। इसलिए यह अध्याय और अध्ययन पूरी पुस्तक की पृष्ठभूमि बन गई है। कोसी अंचल के इस साहित्यकार की रचनाओं में, विशेषकर उनकी कहानियों और उपन्यासों में इस क्षेत्र में बसे किसानों, मजदूरों, मछुआरों और घटवारों की आशाओं–आकांक्षाओं, पीड़ाओं और बहुस्तरीय संघों का यथातथ्य अंकन है। पूँजीवादी आधारों पर टिकी व्यवस्था के समय लिखी गई कहानियाँ हों अथवा आधुनिक जीवन की आपाधापी में पिसती जिन्दगी को स्वर देने के समय की कहानियाँ हों, हर दौर की कहानियों और उपन्यासों में अंचल की आत्मा धड़कती हुई महसूस की जा सकती है। जीवन के हर पक्ष को वैज्ञानिक दृष्टि से स्पर्श करने वाली कहानियाँ और उपन्यास केवल परम्परा को ढोनेवाले ही नहीं हैं, बल्कि समय सन्दर्भ के अनुसार बदलती हुई परिस्थितियों, परिवर्तित जनरुचियों और आस्वादन में नयेपन के कारण वस्तु में परस्पर टकरानेवाली, एक–दूसरे को काटने वाली और जटिल लगने वाली भावानुभूति से सम्पृक्त परम्पराओं का विरोध भी करनेवाले हैं। यही वैशिष्ट्य उनकी कहानियों और उपन्यासों के वस्तुगत नएपन और शिल्पगत कसाव का मूल कारण है। डॉ. तिवारी ने इन मूल तथ्यों को पकड़ा है और उनकी रचनाओं में परम्परा का प्रभाव और प्रयोगधर्मिता के पहलुओं को संकेत रूप में स्पष्ट किया है।

ठीक इसी प्रकार, मधुकर जी की कविताएँ भी ग्राम्य जीवन की महक से सराबोर हैं, क्योंकि उनमें स्वाभाविक उद्गार और सहज जीवन शैली से उद्भूत कोमलता भी है। लेखक डॉ. तिवारी ने मधुकर जी की कविताओं का सूक्ष्म मूल्यांकन किया है और पाया है कि भाव वैशिष्ट्य के साथ–साथ अभिव्यंजना की सहजता स्वाभाविकता भी इन कविताओं की विशेषता है। इनकी कविताओं में प्रकृति चित्रण, गाँव की मिट्टी की सौंधी महक, आँसू–पसीने की धार, लोक संस्कृति के विविध रंग, लोक चेतना, किसानों–मजदूरों की दैन्यता और ग्राम्य जीवन के आत्मीय अनुभवों की सटीक अभिव्यक्ति हुई है। लेखक ने मधुकर की कविताओं में आए रचनात्मक बदलावों की अपेक्षा ग्रामीण जीवन में आई विसंगतियों को उभारने की चेतना को ज्यादा फोकस किया है। लेखक की तटस्थता और विवेचन शक्ति की गम्भीरता साफ झलकती है। इसमें

संयोगवश यही बात डॉ. तिवारी के नाटक मूल्यांकन के सन्दर्भ में सही नहीं उतरती है। 'मधुकर गंगाधर' के नाटकों का पाठ–सन्दर्भ में लेखक ने अपना पूरा ध्यान मधुकर जी के नाटकों के वस्तु पक्ष को उभारने पर केन्द्रित कर रखा है, उसकी रंगमंचीय तकनीकों और नाट्य विधान पर कहीं कोई चर्चा नहीं हुई है। यह इस अध्ययन की सीमा है। केवल संवादों का वैशिष्ट्य और चरित्रों की उपादेयता पर टिप्पणी कर, सन्दर्भ के रूप में संवादों को उद्धृत करना ही नाट्य–समीक्षा नहीं है– नाटक का मूल्यांकन उसके रंगमंचीय पक्ष के अन्वेषण के बिना अपूर्ण है। मधुकर जी के नाटक– अकाल, गाँधी का बेटा, सूरज डूब गया था, तोहफा (एकांकी), भारत भाग्य विधाता कोसी अंचल के अनेक गाँवों में विभिन्न अवसरों पर सफलतापूर्वक अभिमंचित हुए हैं, पर वे किन कारणों से सरलतापूर्वक मंच पर प्रस्तुत हो सके, इसका अन्वेषण नहीं किया जा सका है। लेखक ने जो तथ्य दिए हैं, वे वस्तु से सम्बद्ध हैं, शिल्प–शैली से नहीं। वे मधुकर जी के नाटकों का वस्तु–विश्लेषण और यदा–कदा संवाद तथा चरित्र–चित्रण पर दृष्टिपात करते हुए आगे बढ़ते हैं, पर उसकी गहराई में न उतरकर नाटक के बाह्य आवरण को ही भेद सके हैं; नाटक की अन्तरात्मा अनुद्घाटित ही रह गई है।

संस्मरण के अन्तर्गत दो लेख संकलित हैं–'दरख्तों के साये में मधुकर गंगाधर' और 'आकाशवाणी की भीतरी संरचना का यथार्थ'। दोनों लेख वस्तुतः मधुकर जी की प्रकाशित दो कृतियों की समीक्षाएँ हैं। लेखक ने दोनों कृतियों का मूल्यांकन जिस सहृदयता और विधागत कोमलता के साथ किया है, वह
उल्लेखनीय है। मधुकर जी की संस्मरण लेखन शैली, आत्मीय जनों के साथ बिताये गए क्षणों की भावावेगपूर्ण अभिव्यक्ति शैली को तिवारी जी ने

गम्भीरता से पकड़ा है, इसलिए उनके इस निष्कर्ष से असहमत नहीं हुआ जा सकता है कि ''इस संस्मरणात्मक कृति में मधुकर गंगाधर का वैचारिक दृष्टिकोण एवं वास्तविक जीवन भी साफ दृष्टिगोचर होता है।... शुरू से ही बहुत बेबाक, स्पष्टवादी और निडर होने के कारण दिग्गज साहित्यकारों से भिड़ने में भी उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई।''

'वैचारिक परिपार्श्व' में मधुकर जी की सद्यः प्रकाशित कृति 'भारतीय राष्ट्र और राष्ट्रवाद' का विवेचन–विश्लेषण है और इसके लिए लेखक ने भारतीय इतिहास को भी खंगाला है। पुस्तक में जिन मुद्दों और प्रसंगों को उठाया गया है, उसे तिवारी जी ने बड़ी निस्संगता और निष्पक्षता से उद्घाटित किया है। 'साक्षात्कार' के अन्तर्गत मधुकरजी से लिए गए साक्षात्कारों के पुस्तकों का विश्लेषण है। 'सन्दर्भ और साधना' में डॉ. रमेश नीलकमल द्वारा संपादित 'डॉ. मधुकर गंगाधर : सन्दर्भ और साधना' की समीक्षा संकलित है। 'रचनाएँ' शीर्षक के अन्तर्गत मधुकर जी की कहानी और कुछ कविताएँ संकलित की गई हैं, जो अनपेक्षित हैं और पुस्तक की मूल योजना से कहीं मेल नहीं खाती हैं। इन रचनाओं के संकलन के पीछे लेखक की योजना और उनका उद्देश्य स्पष्ट नहीं होता। लेखक ने पुस्तक की भूमिका लिखने में भी परहेज बरती है, इसलिए रचनाओं के प्रकाशन, संकलन आदि की जानकारी नहीं मिल पाती है। सम्भवतः पुरानी रचना होने के कारण इसे इस पुस्तक में शामिल कर लिया गया मालूम पड़ता है। परिशिष्ट के अन्तर्गत मत : सम्मत, सन्दर्भ ग्रंथों की सूची और डॉ. मधुकर गंगाधर के रचना–संसार का पूरा परिचय दिया गया है, जो शोधार्थियों के लिए बहुत उपादेय साबित होगा। परिशिष्ट से ही लेखक की विश्लेषण शक्ति का दायरा और मौलिकता का परिचय मिलता है, साथ ही मधुकर जी के लम्बे रचनात्मक जीवन की गवाही भी।

निस्सन्देह डॉ. वरुण कुमार तिवारी ने एक जिम्मेदार लेखक की हैसियत से अपनी लेखकीय पक्षधरता को स्पष्ट करते हुए, नई कहानी धारा के एक समर्थ रचनाकार की साहित्य–साधना को रेखांकित करने का दायित्वपूर्ण प्रयास किया है। कोसी अंचल के साहित्यकार का सही और सटीक मूल्यांकन इसलिए भी महत्त्व रखता है, क्योंकि मूल्यांकनकर्ता का स्वयं कोसी अंचल से सम्बद्ध हैं और यहाँ की उर्वर साहित्यिक परिवेश के गवाह रहे हैं। अपनी इस संक्षिप्त समीक्षा कृति में डॉ. तिवारी ने जो विचार–सूत्र और तथ्यात्मक संकेत दिए हैं, वे शोधकार्य के लिए बीज–मंत्र की तरह हैं, जो भविष्य में अपनी उपादेयता स्वयं सिद्ध करेंगे।

कविता

परमात्मा से वार्तालाप

निखिल राज
दिल्ली विश्वविद्यालय
(School Of Open Learning)

परमात्मा की आशा मुझसे
बड़ा बनूँ मैं तो ऐसे
सूर्य की किरणों जैसे
मगर मेरे ईश्वर मेरी बात तू अब मान ले
अपनी ये आशा टाल दे
मेरा तू ये हाल देख
दिल में बुझती हुई मशाल देख

परमात्मा ने कहा–
वत्स, भय को भगा, खुद को मजबूत तो कर
मुझमें लीन होकर मुझको महसूस तो कर
तेरे सारे बिगड़े काम बन जायेंगे
फिर ये पूरी दुनिया तेरा ही गीत गाएंगे

मैं बोला–
मेरे ईश्वर! ये सब तो बस कहने की बातें हैं
जाकर उनको समझा जो सिर्फ तेरा गुणगान गाते हैं
तुझको मेरी अच्छाई
तुझको कभी न रास आई
जब जब मैंने किया भलाई
तब तब दुनिया ने किया पराई
मेरे ईश्वर जबसे इस धरती पर आया हूँ
बदकिस्मत की पोटली अपने सर पर लाया हूँ
और जब जब मेरे हृदय में अनुराग जागा है
तब तब तूने उसे मुझसे ले भागा है।
परमात्मा का जवाब था–
वत्स, मेरी बात पर अब तू ध्यान दे
जरा मुझसे भी अब तू जान ले
मैं चाहूँ तो अभी तेरे दुखों का भार हटा दूँ
मैं चाहूँ तो अभी तेरा प्रेम तेरा अनुराग लौटा दूँ
मगर ऐसा करना मेरा धर्म नहीं है
तेरे इस पीड़ा पर मरहम लगाना मेरा कर्म नहीं है
तुझको खुद उठना होगा
इस दुनिया से लड़ना होगा
मनुष्य अपने भाग्य का खुद निर्माता है
तू आगे तो बढ़ तेरी मदद को तैयार ये विश्वविधाता है
सब कुछ त्यागकर बस तू मुझमें ध्यान लगा
अपने विजय का डंका तू अपने हाथ बजा
वचन देता हूँ तेरी सारी इच्छाएँ होंगी पूरी
बस बात मान ले अब तू ये मेरी
जैसे बिना कीचड़ के कमल नहीं खिलता
वैसे बिना कर्म के इंसान को उसका फल नहीं मिलता

मैंने कहा–
मेरे ईश्वर तूने मेरी आंखें खोल दीं
ऐसी बातें तूने बोल दीं
इस पापी दुनिया से बचने का तूने मुझको मार्ग दिखाया
मेरे इस उलझे हुए जीवन में एक रोशनी जगाया
मेरे ईश्वर! तू तो सर्वव्यापी सबके लिए समान है
तभी तो मंदिर मस्जिद घर घर में तेरा गुणगान है
अब समझा तू इतना क्यों महान है
तभी तो तुझसे उम्मीद लगा के बैठा आज जीवित ये इंसान है।

कविताएँ

गिरिजाशंकर मोदी
सिकन्दरपुर, भागलपुर
मो. 6299550424

अछूत के बेटे

माँ! स्कूल में क्या होता है?
बेटा, बाबुओं के बच्चे पढ़ते हैं
माँ! पढ़ना क्या होता है
बेटा, ये सब बड़े लोगों की बात है
माँ! बड़े लोग कौन होते हैं
बेटा, जिनके घर खाना
और किताबें होती हैं
माँ! किताबें क्या होती हैं
बेटा, यह बड़े लोगों की चीज है
माँ! बच्चे पीठ पर क्या ले जाते हैं
बेटा, यह किताब भरा बैग होता है
माँ! उन किताबों से वे क्या करते हैं
बेटा, उसे पढ़कर वे मालिक बनते हैं
माँ! मुझे भी किताब दो न
बेटा, किताब खरीदने के पैसे नहीं हैं
माँ! आज मैं नहीं खाऊँगा
मुझे किताबें ही दे दो ना
ना, बेटा ना
माँ, ऐसा क्यों
बेटा, मालिक के बच्चे तुम्हें पीटेंगे
फिर किताब छीन लेंगे
माँ! ऐसा वे क्यों करते हैं?
बेटा, हम छोटी जाति के लोग हैं
पढ़ने की मनाही है
माँ! ऐसा क्यों
बेटा, पढ़ लेंगे तो फिर उनकी
गंदगियाँ कौन साफ करेगा
माँ! मैं स्कूल जाकर देखूँ
पढ़ना क्या है
ना, बेटा ना
पंडितजी डाँटकर भगा देंगे
माँ! पंडितजी ऐसा क्यों करेंगे?
बेटा, वे गाँववालों से डरते हैं
माँ! बड़ा होकर
गाँववालों को देख लूँगा
बेटा, तुम्हारे पापा को गाँव वालों ने
पीट–पीटकर मार डाला था।
–––––

माँ!

घंटों गुजर गये, माँ
जब तुमने अपने सूखे स्तन
क्षण भर ही तो मेरे मुख में डाले थे
एक धार भी तो न फूट पाई थी
कि मालिक की डाँट से काँप गये थे
तुम्हारे प्राण अंदर तक
और तुम छुड़ाकर बिजली–सी
समा गई थी एक गुफा में
एक मुखौटा पहन बड़ी बेरुखाई से
डालियाँ फूल की हिला देने
नन्हें मालिकों के बीच
और उनकी हर रुखाई पर
मुस्कुराहट बिखेरने को
सड़े काठ पर उगे कुकुरमुत्ते–सा

फिर तुम आई थी तूफान–सा
जब मैं मक्खियों से लदा
भिनक रहा था
और डाल दी थी मशीन–सा
मेरे मुँह में निर्जीव स्तन
जहाँ भावनाओं की सारी
रंग लीकें तुम्हारी
जम जड़ हो गई थी
संवेदनाओं की कोई सुगबुगाहट न थी,

मैं घबराहट में
तुम्हारी हड्डियों से सिमट
अपने प्राण रक्षा को
तुम्हारी सूखी चमड़ी
जोर–जोर से चूसने लगा था।
कि एक धार भी अमृत का निकल
मेरे प्राण की रक्षा कर दे
पर तुम्हारे सारे रक्त को तो
किसी ने चूस लिये हैं, माँ
और तुम्हारे प्राण एक कोटर में
मौन अटके पड़े हैं
ऐसा क्यों, माँ
क्या हम इस धरती की संतान नहीं?

भूख

माँ! मुझे आज फिर
कुत्तों ने काट लिया
माँ! मैंने कहा था
मालिक के नौकरों को
'पत्तलें हमे दे दीजिए न'
पर उसने धक्के देकर कहा
'कुत्ते कहाँ जायेंगे'
हम साथियों और कुत्तों में
हम अधिक थे
फिर भी कुत्तों ने बाजी मार ली
तुम्हारे लिये माँ
फिर भी
कुछ पत्तलें तो ले ही आया हूँ
तुम तो कई दिनों से भूखी हो
चल भी नहीं सकती
मैं पत्तलें पोंछ–पोंछ कर
जमा करता हूँ, तुम खा लेना
ठहरो माँ
शाम को फिर जाऊँगा, शहर
पता लगाने
भोज फिर कहाँ है?

समीक्षा

राजेन्द्र सिन्हा एक संवेदनशील कथाकार

डॉ. प्रमोद प्रियदर्शी
प्राध्यापक डी.डी. एम. कॉलेज, बैरगनिया,
सीतामढ़ी, मो.– 9939057784,

मेरी दृष्टि में राजेन्द्र सिन्हा एक संवेदनशील कथाकार हैं, पर किसी को संवेदनशील रचनाकार घोषित करने से पहले यह जानना आवश्यक है कि संवेदना है क्या? फिर, रचनाकार उससे कितना अनुप्राणित है? संवेदना पर विहंगम दृष्टि डालने के उपरान्त हम पाते हैं कि संवेदना कोई स्थूल पदार्थ नहीं कि हम उसका अवलोकन कर सकें। यह कोई विचार भी नहीं है और न काव्यशास्त्रीय तत्त्व–रस, छंद, अलंकार आदि ही। वस्तुतः संवेदना एक भावना है। अस्तु, भाववाचक संज्ञा है, जिसका सामान्य अर्थ है–किसी प्राणी को कष्ट में देखकर द्रष्टा या भावक के हृदय में दुःख या कष्ट का उत्पन्न हो जाना। दूसरे शब्दों में भोक्ता के हृदय का भाव, मूलतः कष्ट–भाव, जब द्रष्टा या भावक के हृदय में उसी दुःखानुभूति या तीव्रता के साथ उत्पन्न हो जाए तो वह अनुभूति संवेदना हुई अर्थात् संवेदन 'स्व–मन' में भावोव्यति का उत्स है। 'सम्–वेदना' समान भाव की पीड़ा का बोधक है। सहृदयता के कारण भोक्ता
और भावक के बीच समभाव की स्थिति बनती है, जिससे सहानुभूति पैदा होती है। यहीं 'सह–अनुभूति' व्यक्तिगत से समष्टिगत रूप में आकर संवेदना बन जाती है। यह प्रकृति प्रदत्त वरदान है, जो जितना सहृदय होगा, वह उतना ही संवेदनशील होगा और जो संवेदनशील होगा, वह सहनशील नहीं होगा। अन्याय देखकर उसका खून खौल उठेगा। वह संशस्त्र होकर अन्याय मिटाने के लिए निकल पड़ेगा। राजेन्द्र सिन्हा इसी अर्थ में एक संवेदनशील कथाकार हैं। जहाँ कहीं समाज में अन्याय, अनीति, भेद–भाव, आडम्बर, कुरीति आदि दृष्टिगोचर होती है, राजेन्द्र सिन्हा में अन्तर्निहित संवेदना उनकी भावयित्री और कारयित्री प्रतिभा को उत्तेजित कर देती है और वे कलम रूपी तलवार लेकर निकल पड़ते हैं, अन्याय और अनीति पर प्रहार करने। फिर, विडम्बनाओं और विसंगतियों के चित्र को शब्दबद्ध करते हुए उनकी कहानियाँ रूप और आकार ग्रहण करती हैं। विसंगतियों का चित्र सिन्हाजी की अनूठी शैली से अनुप्राणित होकर और संवेदना का जीवद्रव्य पाकर इस प्रकार प्राणवान बनता है कि अपने सम्प्रेषण से पाठकों के अन्तर्मन को छू लेता है। पाठक सहज ही संतुष्ट हो जाता है और आलोचक रचनाकार की सफलता को देखकर वाह–वाह! कर उठता है।

राजेन्द्र सिन्हा के अब तक तीन कथा–संग्रह प्रकाशित हैं–'फटी हुई जेब', 'भेड़िया धसान' और 'उस पार प्रकाश है'। इन तीनों संग्रहों में कहानियों की संख्या तीन दर्जन के भी नीचे है, फिर भी कहानीकार को अपेक्षा से अधिक प्रसिद्धि प्राप्त हो चुकी है, इससे उनकी कहानियों की गुणवत्ता को समझा जा सकता है।

'भेडिया धसान' के तेरह वर्ष बाद 'उस पार प्रकाश है' का प्रकाशन यह सिद्ध करता है कि राजेन्द्र सिन्हा धीमे चलते हैं। यह धीमे चलना ही सुखद परिणाम देता है। लेखकों के मार्गदर्शक कहे जानेवाले बंकिमचन्द्र चटर्जी कहा करते थे कि रचनाएँ लिखकर संदूक में रख दो। एकवर्ष बाद निकाल कर देखो, सुधार करो। ऐसा आठ बार करने पर जो रचना तुम्हारे सामने आए, उसे प्रकाशन हेतु भेजो। आजकल अधिकांश कहानीकार संख्या बढ़ाने के चक्कर में बेतहाशा लिखते हैं और 'सरस–सलिल' जैसी पत्रिकाओं में छपकर बाजारु बनते हैं। पुस्तकों पर अपनी शीघ्र प्रकाश्य रचना का उल्लेख करते हैं और पाठकों को अपनी प्रति सुरक्षित कराने का आग्रह करते हैं। फिर समय के गर्त में कहीं खो जाते हैं। मैं गर्व के साथ यह कहता हूँ कि राजेन्द्र सिन्हा उन विरले कथाकारों में से हैं, जिन्होंने परिमाण और संख्या के व्यामोह से विलग शनैः शनैः चलते हुए मर्मस्पर्शिनी कहानियों का सृजन कर पाठकों के स्नेह–सहानुभूति और संवेदना को सहज ही प्राप्त कर लिया है।

राजेन्द्र सिन्हा की कहानियाँ पाठकों के मन के उहापोह को बिल्कुल खत्म कर देती हैं और उसके मन पर ऐसा बिम्ब उपस्थित कर देती हैं कि भ्रम और यथार्थ का झीना आवरण स्वतः हट जाता है। इस दृष्टि से सिन्हाजी की कहानियाँ सामाजिक अन्तर्वेदना के शब्द–चित्र हैं। 'चाण्डाल', 'रास्ता किधर है', 'राजा' आदि कहानियाँ इस तथ्य का परिचायक हैं। तपते मरुस्थल में निर्मल–जल स्रोत की भाँति इनकी कुछ कहानियाँ प्रवाहित हैं, तो कुछ में जीवन की वसीयत को बदलने का संकल्प भी है। 'आगे खतरा है', 'अंधेरी रात में दो जुगनू' ऐसी ही कहानियाँ हैं।

विविध–विषयों को लेकर अपेक्षित–अन्तराल के साथ लिखी गयी इनकी कहानियाँ गहरी संवेदना की कहानियाँ हैं, जो भावोद्रेक में पाठकों के मन पर चिरकालिक प्रभाव छोड़ती है। यही कारण है कि देश की प्रतिष्ठित पत्रिकाएँ–हंस, आजकल, वागार्थ आदि इनकी कहानियों को हाथोहाथ लेती है और सम्मान के साथ प्रकाशित करती हैं।

राजेन्द्र सिन्हा के अब तक प्रकाशित कथा–संग्रह में सर्वनिष्ठ है–'उस पार प्रकाश है'। यह सिन्हा जी द्वारा समय–समय पर लिखी गई कहानियों का संकलन है, जो उनके विस्तृत जीवनानुभवों का सम्बल लेकर स्टेशन–दर–स्टेशन भटकते व्यक्तिचित्रों का प्रकाशन है। अस्तु, इनकी कहानियाँ पल–पल बदलते समय का साक्षी भी है। स्त्री–विमर्श के इस दौर में स्त्री–पुरुष के बीच समान महत्त्व बनाए रखने का कार्य राजेन्द्र सिन्हा जैसा सधा हुआ कलाकार ही कर सकता है। अन्यथा, अधिकांश कहानीकार तो अपनी पिचकारी का सारा रंग भाभीजी पर ही उड़ेल देते हैं, साथ में खड़े भाई साहब को औपचारिक अबीर भी नहीं डाल पाते। कहानीकारों की इस चुहलबाजी पर पाठकरूपी भाई साहब कितना जलते होंगे, आप

समझें। इस सन्दर्भ में राजेन्द्र सिन्हा निर्णायक भूमिका में हैं। वे नारी विद्रोह के आग्रही हैं। नारी मर्यादा के संरक्षण और
मर्यादा–हनन के उभय बिन्दुओं पर विन्यस्त इनकी कहानियाँ– 'बंदिनी की जंजीर' और 'वह दूसरी' नारी–जागरणा के मार्ग में मील के पत्थर की तरह सुशोभित हैं। 'वह दूसरी' की दुर्गा तो विद्रोह के चरम–स्थिति में आकर बरछी उठा लेती है–'यदि तुम मुझपर प्रहार करोगे, तो मैं तुम्हारा संहार करुँगी।' यह नारी विद्रोह की पराकाष्ठा है। लेखक का अभीष्ट बिल्कुल स्पष्ट है–पति यदि अन्यायी है, हृदयहीन और हत्यारा है, तो पत्नी उसका सर्वनाश कर सकती है। जीवन के वसीयत को बदल सकती है।

मिथकीय कथा का आधार लेकर सृजित 'बंदिनी की जंजीर' अतिविशिष्ठ कहानी है। यह एक ही कहानी राजेन्द्र सिन्हा को अमर करने के लिए पर्याप्त है। इस कहानी में सदियों से शोषित–पीड़ित नारी–जाति की अंतहीन समस्याओं के प्रति लेखकीय संवेदना सिर चढ़कर बोल रही है। पौराणिक कथा तथा पृष्ठभूमि को लेखक ने समकालीन–सामाजिक नारी–विमर्श के बृहत्–पटल पर अंकित कर प्रगतिशील वैचारिक अभिव्यक्ति का विषय बना दिया है। ऐसा करते हुए सिन्हाजी ने उपजीव्यों और नाटकीयता का भरपूर उपयोग किया है और इसी में लेखकीय सफलता भी निहित है। अकाट्य तथ्यों से परिपूर्ण प्रखर वाणी में बंदिनी की जंजीर झनकती है। स्वर–तंत्र से झंकृत एक–एक शब्द पुरुष–प्रधान सत्ता की जंजीरों को तोड़ते हैं, रूढ़ियों पर प्रहार करते हैं। इस कहानी में राजेन्द्र सिन्हा कहानीकार से अधिक कलाकार नजर जाते हैं। प्रगतिशील वैचारिक अभिव्यक्ति कहीं भी असांस्कृतिक नजर नहीं आती। कहानी में एकबार भी
शीर्षक 'बंदिनी की जंजीर' शब्द–समूह प्रयुक्त नहीं है। कहानीकार की यह एक बड़ी विशेषता है। नारी–संवेदना में अन्तर्भूत व्यंजना के माध्यम से शीर्षक सार्थकता को प्राप्त करता है। कहानी के अन्तिम अनुच्छेद में कहानीकार ने कुरुक्षेत्र, रामलीला मैदान और शिखंडी–इन तीन शब्दों का प्रयोग करते हुए समापन किया, है, जो सिन्हाजी के शब्द–सामर्थ्य और शब्द–शक्तियों के चमत्कारिक प्रयोग का परिचायक है। 'कुरुक्षेत्र' अभिधा है, तो 'रामलीला मैदान' लक्षणा और 'शिखंडी' व्यंजना।

सिन्हाजी की 'भेड़िया धसान' नामक कहानी भी एक बहुमूल्य कहानी है। इसमें पौराणिक मान्यताओं के विकृत होते स्वरूप के सापेक्ष परम्पराओं का पुनर्मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है। खलील जिब्रान की 'मूर्ति' की भाँति लेखक, पाठक आदि सभी आस्था के हुए भेंड़चाल में शामिल हैं। पाँच वर्ष काँवर–जल चढ़ाकर ही कोई सही तथ्य को समझता है। जैसे एक रुपये में मूर्ति बेचकर विक्रेता दो रुपये देकर उसी मूर्ति को प्रदर्शनी में देख आता है। सिन्हाजी की यह कहानी इस अर्थ में विशिष्ट है कि कहानी कहीं से भी अनास्था को बढ़ावा नहीं देती, बल्कि आस्थापूर्वक वैज्ञानिक दृष्टिकोण सम्पन्न होकर
कर्म करने का संदेश देती है। पशुबलि का विरोध और निरीह प्राणियों पर दया की अपेक्षित प्रवृत्ति संदेश को बहुआयाम बनाते हैं। ईश्वर साध्य हैं। साधक साधना के बल पर उनका सामीप्य पा सकता है, भेड़िया धसान आडम्बरों से नहीं।

सामान्य ग्रामीण–किसान की आकांक्षाओं की पड़ताल करनेवाली कहानी 'संकल्प' वंश वृक्ष की तरह छतनार है। इसके कई आयाम हैं। सामान्यतः नारियल का उच्च–वृक्ष लगाने वाला व्यक्ति फल नहीं खा पाता; किन्तु इस कारण वृक्ष लगाना तो रोका नहीं जा सकता। वृक्ष के उत्तराधिकारी को यह कसक जरूर रह जाती है कि वृक्ष लगाने वाला फल का भोग लगाये बिना ही चला गया, परन्तु संतोष कि वह भी तो उसी का स्वरूप है, उसी का अंश जो उसके वंश–वृक्ष को लहलहाते रखने को संकल्पित है। 'संकल्प' का 'कमल' यदि पिताजी के नाम से कोई कृति करता तो वह सबसे बड़ा श्रद्धा–तर्पण होता और नैतिकता कर्मनिष्ठा का रूप लेकर पूर्णाहूति को प्राप्त होती।

'उस पार प्रकाश है' की कहानियाँ कथ्य और शिल्प की दृष्टि से बेजोड़ हैं। अधिकांश कहानियाँ ग्राम्य–परिवेश के तंतुवाल से बुनी गयी हैं। फलस्वरूप कथावस्तु, वातावरण, चरित्र, भाषा आदि आंचलिक जान पड़ते हैं, परन्तु इन कहानियों को एकदम से आंचलिकता का जामा पहनाना भी कठिन है, क्योंकि राजेन्द्र सिन्हा अत्यंत प्रगतिशील साहित्यकार हैं और उनका दृष्टिकोण सर्वथा वैज्ञानिक है। उस पार प्रकाश है, तो इस पार भी अँधेरा नहीं नहीं है। ये कहानियाँ उन्हीं चुनिंदा स्थलों पर प्रकाश बिखेरती हैं, जहाँ–जहाँ अँधेरा है।

राजेन्द्र सिन्हा की कहानियाँ गहन–अध्ययन–आलोड़न की अपेक्षा रखती हैं। इन कहानियों में समस्याओं की गंगा का अविरल प्रवाह है। उन्हें एक आलेख के कठौते में समेटा नहीं जा सकता। ऐसा कार्य सूत्रात्मक रूप से भूमिका लेखक तो कर सकता है, सम्यक् आलोचक या समीक्षक नहीं। आशा है, हिन्दी के शोध–प्रज्ञों एवं विद्वान प्राध्यापकों का ध्यान राजेन्द्र सिन्हा की ओर जायेगा और इनकी कहानियों पर शोध–कार्य होंगे।

साहित्य में वर्तमान आधुनिकयुग कहानी और आलोचना का युग है। सामाजिक संदर्भ में यह अर्थ का युग है। अर्थ–प्राप्ति के लिए गला–काट प्रतिस्पर्धा का युग है। 'टका धर्मो, टका कर्मो, धर्मो कर्मो टका–टका' का सिद्धान्त सर्वत्र परिलक्षित है। पूँजीवाद और उच्च मध्य वर्ग के प्रबल–प्रभाव में
जनसरोकार और मजदूर–किसान की बात करनेवाला भी मौका मिलते ही मन्दिर की महंती के लिए शीर्षासन करता दृष्टिगोचर
होता है। फिर मानवीय संवेदना के लिए जगह कहाँ रह जाती है? ऐसे वातावरण में संवेदना के विकास का जिम्मा 'पर–दुःख कातर' राजेन्द्र सिन्हा जैसे साहित्यकारों के जिम्मे ही रह जाता है, जिसका वे भलीभाँति निर्वहन भी कर रहे हैं और यही कारण है कि मेरी दृष्टि में राजेन्द्र सिन्हा एक संवेदनशील कथाकार हैं।

समीक्षा

विनय मिश्र की ग़ज़लों में उपस्थित रचनात्मक वैशिष्ट्य को समझने की कोशिश

डॉ. वरुण कुमार तिवारी
संपर्क 4/383वैशाली
गाजियाबाद, (उ.प्र.) पिन–201010

विनय मिश्र इक्कीसवीं शताब्दी के एक महत्त्वपूर्ण ग़ज़लकार हैं। वे अपनी ग़ज़लों में एक ऐसे समाज की रचना करते हैं, जो आज के समय–समाज के प्रयार्थ पर आधारित है। वे बिना किसी पूर्वाग्रह के बड़ी नफासत से ग़ज़लें कहते हैं और उन्हें अपनी स्वाभाविक परिणति तक पहुँचने देते हैं। यह स्वाभाविकता ही उन्हें और उनकी ग़ज़लों को औरों से अलग करती है। कथ्य और शिल्प दोनों ही स्तरों पर उनकी ग़ज़लें अभिव्यक्ति का प्रौढ़ प्रमाण कही जा सकती है।

विनय मिश्र ग़ज़ल में हिंदी कविता को एक सार्थक दिशा दे रहे हैं, जिनमें साम्प्रतिक समय–समाज को समझने की उनकी विराट दृष्टि उपस्थित है। विनय हिंदी ग़ज़ल की जिस प्रगतिशील जनप्रतिरोध चेतना, व्यवस्था विरोध एवं जनप्रतिबद्धता का विशेषताओं की प्रशंसा की जाती है, उनके स्रोत आज की हिंदी कविता में मिलते हैं। बावजूद हिंदी ग़ज़ल समकालीन हिंदी कविता की नकल नहीं है, मात्र आधार संरचना है। विनय मिश्र भी वहाँ से अपना मानस निर्मित किया है और अनुमान की प्रामाणिकता के साथ रचना– सत्य को ग़ज़ल के रूप में उजागर किया है। निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भाषा, भाव, ग़ज़ल–शिक्षा, शब्द–प्रयोग, अर्थ–गौरव और अनुपम अभिव्यंजना–शैली ने विनय मिश्र को एक सशक्त ग़ज़लकार के रूप में प्रस्तुत किया है।

उनके दो ग़ज़ल संग्रह– 'सच और है' (2012) और 'तेरा होना तलाशूँ' (2018) प्रकाशित हैं। पत्र–पत्रिकाओं में भी उनकी ग़ज़लें निरन्तर प्रकाशित हो रही हैं। इनके अतिरिक्त 'समय की आँख नम है' (गीत संग्रह), 'सूरज तो अपने हिसाब से निकलेगा) (कविता संग्रह), 'इस पानी में आग' (समकालीन दोहा संग्रह) में भी उन्होंने समय–समाज की तल्ख सच्चाइयों को उजागर किया है। ज्ञान प्रकाश विवेक (हिंदी ग़ज़ल दुष्यंत के बाद, 2014), नचिकेता (अष्टछाप, 2015), रामकुमार कृषक (अलाव, मई– अगस्त, 2015), 'जीवन सिंह' (दस्तखत : आलोचना की यात्रा मे हिंदी ग़ज़ल, 2017), 'हरेराम समीप' (समकालीन हिंदी ग़ज़लकार, प्रथम खंड), गौरीनाथ इत्यादि के चयनों में भी विवेचित–विश्लेषित विनय मिश्र विगत तीन दशकों से अपनी ग़ज़लों में अपने समय के सामाजिक अन्तर्विरोधों समाजार्थिक विसंगतियों, राजनीतिक विद्रूपताओं और सांस्कृतिक विडंबनाओं को स्वर दे रहे हैं।

विनय मिश्र की ग़ज़लों पर आलोचकों, ग़ज़लकारों, ग़ज़ल समीक्षकों एवं साहित्यकारों के आलेखों का संकलन है 'समकालीन ग़ज़ल और विनय मिश्र' इस सद्यः प्रकाशित आलोचना ग्रंथ के संपादक हैं सुधी समीक्षक एवं सिद्ध संपादक डॉ. लवलेश दत्त। डॉ. दत्त ने अपने संपादकीय में लिखा है– ''समकालीन हिंदी ग़ज़ल को समृद्ध और विकसित करनेवाले कवियों में विनय मिश्र एक महत्वपूर्ण नाम है। पिछले दो–तीन दशकों में महत्वपूर्ण पत्र–पत्रिकाओं में उनकी ग़ज़लों को पढ़ते हुए उनके जरिए ग़ज़ल की दुनिया में झाँकने की कोशिश ही इस पुस्तक के रूप में आपके सामने है।''

संपादक ने उनकी ग़ज़लों के वैशिष्ट्य के संबंध में जो लिखा है, उससे मेरी सहमति है कि ''वे कथ्य ही नहीं, ग़ज़ल के शिल्प का भी पूरा ख्याल रखते हैं और प्रयोगों के अतिरेक से बचकर अपनी सहज, स्वतंत्र और स्वतःस्फूर्त चेतना के औजारों से, अपने समय को रखते और तराशते हैं। उनके अनेक शेर कालजयी होने की क्षमता रखते हैं और इसीलिए उनका रचना वैशिष्ट्य उन्हें समकालीन हिंदी ग़ज़ल के परिदृश्य में एक प्रतिनिधि रचनाकार के रूप में प्रतिष्ठित करता है।'' ये पंक्तियाँ न केवल माइलस्टोन की तरह हैं, बल्कि इनसे कवि–मानस की रचना–दृष्टि की निर्मिति का भी बोध होता है।

प्रस्तुत ग्रंथ में संकलित समीक्षाएँ कहीं अन्वेषण परक है और कहीं विश्लेषणात्मक, परंतु सभी समीक्षाओं में विनय मिश्र की ग़ज़लों में सोच से ज्यादा महत्त्व संवेदनाओं को पकड़ने की प्रवृत्ति है। इनमें ग़ज़लकार की संवेदना, मूल्यधर्मिता और सामाजिक सरोकारों को स्पर्श करने की प्रवृत्ति देखी जा सकती है। समीक्षकों ने कवि के जीवनानुभवों और अपनी संरचना के भीतर से उभरती संवेदनाओं को अभिव्यक्ति दी है। इनमें निष्पक्षता एवं विवेचनात्मकता स्पष्ट दिखाई देती है और मनुष्य जीवन के अनेक आयामों को उजागर करने की कोशिशें भी।

जिन नामचीन हस्तियों ने विनय मिश्र की ग़ज़लों के क्राफ्ट और कंटेंट को लिखित प्रतिक्रिया के रूप में व्यक्त किया है, वे हैं सर्व श्री वागीश शुक्ल, अनिल राय, श्रीधर मिश्र, हरेराम समीप, सेवाराम त्रिपाठी, नचिकेता, दयानंद पांडेय, नलिनी विभा नाज़ली, जीवन सिंह, नित्यानंद श्रीवास्तव, मधुकर खराटे, विवेक कुमार मिश्र, रमेश गौतरा, आसिफ रोहितासनी, महेन्द्र नेह, शिव ओम अम्बर, रामकुमार कृषक इत्यादि। स्पष्ट है कि ये सभी लब्धप्रतिष्ठ रचनाकार, विद्वान एवं ख्यात आलोचक हैं। सभी ने साहित्य की विभिन्न विधाओं को सँवारा है। इतने सारे लेखकों की समीक्षाओं को देखकर यह कहने की जरूरत नहीं है कि, विनय मिश्र की ग़ज़लों की जमीन न केवल उर्वर है, बल्कि उनकी रचनात्मक प्रतिबद्धता उन्हें वरिष्ठ रचनाकारों की परंपरा से जोड़ती है।

वागीश शुक्ल लिखते हैं–''हिंदी ग़ज़ल आज जिस मुकाम पर है, उसको अपनी संपूर्णता में विनय मिश्र की ग़ज़लों में पाया जा सकता है। इसके आगे भी संभावना ऐसी ही है कि हिंदी ग़ज़ल की आने वाली मंजिलें उनकी काव्य यात्रा के पड़ावों के पड़ोस में ही होंगी।'' अनिल राग का अभिमत है कि ''किसान,
श्रमिक, सर्वहारा, स्त्री, निष्कासित–विस्थापित आम आदमी की विस्तीर्ण दुनिया, उनकी ग़ज़लों में अनुभव का हिस्सा बनकर सामने आती है। यह अनुभव विचार की प्रक्रिया से निरपेक्ष नहीं है। कला और जीवनानुभवों के ज्ञानात्मक संबंधों के भीतर से ही विनय मिश्र अपनी ग़ज़ल–रचना की प्रेरणाएँ प्राप्त करते हैं।''

श्रीधर मिश्र उनकी ग़ज़लों को इसलिए महत्वपूर्ण मानते हैं, क्योंकि उनमें सामाजिक सृजनशीलता है, जो ऐतिहासिक नवीनता की परिधि तक है। वे अपनी ग़ज़लों में एक बेहतर दुनिया, एक बेहतर समाज के लिए जूझते दिखते हैं, वे किसी भी कीमत पर आज के समय को मनुष्यता के अनुकूल करना चाहते हैं। हरेराम समीप विस्तार से उनकी ग़ज़लों का विश्लेषण –विवेचन करते हैं और अपना निष्कर्ष देते हैं कि सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि विनय मिश्र के यहाँ ग़ज़ल की रिवायत और

आधुनिकता का वह अर्थवान सामंजस्य स्पष्ट दिखाई देता है, जो जनधर्मी चेतना के विकास के साथ–साथ हिंदी ग़ज़ल को हिंदी कविता के समानांतर उत्तरोत्तर समृद्ध कर रहा है। समीप को विश्वास है कि, ''समकालीन हिंदी ग़ज़ल में एक नए विमर्श की शुरूआत यहीं होगी,क्योंकि मैं दावे से कह सकता हूँ कि विनय मिश्र के यहाँ आकर हिंदी ग़ज़ल का बहुआयामी विकास हुआ है।''

विनय मिश्र की ग़ज़लें वाकई एक वास्तविक प्रतिपक्ष की भूमिका में है। दुष्यंत कुमार और अदम गोंडवी ने समकालीन हिंदी ग़ज़ल के लिए प्रतिपक्ष की जिस भूमिका का इजहार किया था, निर्णय लिया था, वह विनय मिश्र की कलात्मक ग़ज़लों में परवान चढ़ती दृष्टिगोचर होती है।''

जीवन सिंह को लगता है और सही लगता है कि विनय मिश्र को कवि और कविता दोनों पर बहुत ज्यादा भरोसा है कि वे कविता में लय को बचाकर ले जायेंगे और छंदों की वापसी कर जीवन मूल्यों के छंद को बचा सकेंगे। जीवन सिंह की इस धारणा से असहमति का कोई प्रश्न ही नहीं है। शिव ओम अम्बर विनय मिश्र के भाषागत प्रांजल प्रयोग पर से विमग्ध हैं। ब्रजेश पाण्डेय का विचार भी समीचीन और आश्वस्तिकारक है कि हिंदी ग़ज़ल ने हिंदी कविता को विलुप्त होती पाठकीयता से जोड़ा है और उसमें विनय मिश्र ने एक अनुपेक्षणीय मीलस्तंभ की प्रतिष्ठा बनायी है।

यहाँ यह उल्लेख्य है कि हितु मिश्रा ने उनकी ग़ज़लों में संगीत की खोज की है। उन्होंने विनय मित्र की कई ग़ज़लों को संगीतबद्ध कर उन्हें स्वर, लय और ताल में गाया भी है, परंतु इन समीक्षकों ने विनय मिश्र की ग़ज़लों में निहित जीवन मूल्यों निषेधात्मक मूल्यों के प्रति प्रतिरोध की चेतना, समय–समाज के प्रति समस्याओं–चुनौतियों, उनका जनधर्मी संकल्प और उनकी संघर्षशीलता, उनकी संवेदना, प्रतिबद्धता एवं जीवन–दृष्टि को समर्थ भाषा में व्यक्त किया है एवं मूल्यांकन के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है। फलस्वरूप प्रस्तुत आलोचनात्मक कृति ग़ज़ल–समीक्षकों और अध्येताओं के लिए तो उपयोगी है ही, शोधकर्ताओं के लिए भी महत्वपूर्ण है।

लघुकथा

अर्ली बर्ड्स

सीताराम गुप्ता
ए.डी.–106–सी, पीतमपुरा, दिल्ली
फोन नं. 09555622323

कुछ लोग गिद्धों की तरह बस इंतजार करते रहते हैं कि कब कोई मरे और वे जल्दी से अपना काम करें अर्थात् सबसे पहले मातमपुर्सी के लिए पहुँचकर रोना–धोना शुरू करके सबको जता सकें कि वे मृतक व उसके परिवार के लिए कितने दुखी हैं। इसी से कोरोना संकट के कारण लाख मना करने के बावजूद वे मृतक के परिवार के सदस्यों से लिपट–लिपट कर रोने में कोई कमी नहीं रखते। निरंतर एक वर्ष तक कोविड से संक्रमित रोगियों का उपचार करते हुए डॉक्टर विश्वास कोरोना संक्रमण से ग्रसित हो गए। एक सप्ताह तक घर पर ही क्वारंटीन रहकर उपचार करने के बाद जब उनकी हालत बिगड़ गई, तो महीनों तक विभिन्न हस्पतालों की शरण लेनी पड़ी; लेकिन बात नहीं बनी। एक्मो सपोर्ट के लिए घर से डेढ़ हजार किलोमीटर से भी अधिक दूर एक बेगाने शहर में रहना पड़ा। ब्लड लॉस और ब्लीडिंग की वजह से रोज खून की जरूरत पड़ती, पैसा भी पानी की तरह बहाना पड़ रहा था। इस दौरान सैकड़ों लोगों ने न केवल अपना रक्त प्लाज्मा व प्लेटलेट्स दिए, अपितु आर्थिक मदद करने में भी उदारता का परिचय दिया। परिवार को उपचार के लिए करोड़ों रुपए उधार लेने पड़े।

इस सबके बावजूद एक लंबे संघर्ष के बाद डॉक्टर विश्वास परिवारजनों को एक बेगाने शहर में अकेले रोता– बिलखता छोड़कर उस लंबी यात्रा पर निकल गए, जहाँ से कभी किसी की वापसी नहीं होती। माता–पिता, पत्नी, बहन, छह वर्षीय पुत्र व दो अन्य रिश्तेदारों ने युवा डॉक्टर की अर्थी को कंधा देकर बड़ी मुश्किल से चिता तक पहुँचाया। अर्थी को चिता तक पहुँचाने के लिए सचमुच कुछ मजबूत कंधों की बेहद जरूरत थी। यदि उस बेगाने शहर में सुरेश सिंघल जी नामक एक सज्जन ने भरपूर मदद न की होती, तो बड़ी मुश्किल से भी ये संभव न होता। देर शाम तक वापस घर पहुँचे। घर जो किराए पर लिया हुआ था। उस समय भी कुछ ऐसे कंधों की जरूरत थी, जिन पर सर रखकर रोने से कुछ सुकून मिल सके। बारह घंटे से अधिक का समय व्यतीत हो चुका था और इतने समय में कुछ परिचित कंधों का आसपास होना असंभव अथवा मुश्किल नहीं था। खुद ही रो लिए, खुद ही चुप हो गए। रात के तीन बज गए थे पूरे परिवार को रोते–रोते। सुबह पाँच बजे अस्थियाँ चुनने के लिए जाना था, अतः चार बजे ही उठ गए। पिता और पत्नी का भाई दोनों श्मशान पहुँचे और अस्थियों चुनकर वहाँ से सीधे हरिद्वार चले गए और वहाँ गंगा में अस्थि विसर्जन के बाद सीधे अपने घर के लिए निकल पड़े और रात बारह बजे के बाद घर पहुँचे। बाकी लोग भी किसी तरह से व्यवस्था करके रात के डेढ़–दो बजे तक घर पहुँच पाए।

अगले दिन सुबह–सुबह ही मातमपुर्सी के लिए लोगों का आना प्रारंभ हो गया। मातमपुर्सी के लिए सबसे पहले जिस परिवार के सदस्य आए, वे सभी स्वयं कोरोना से संक्रमित हो चुके थे। इनमें से कुछ की हालत बहुत बुरी हो गई थी, लेकिन गनीमत थी कि वे सभी पूरी तरह से स्वस्थ हो चुके थे। इन सबका उपचार डॉक्टर विश्वास ने ही किया था। उसी दौरान डॉक्टर विश्वास भी कोरोना से संक्रमित हो गए थे और लगभग चार महीनों तक जीवन के लिए घोर संघर्ष करते और कठिन शारीरिक व मानसिक यातना झेलते हुए एक सुबह पूरी तरह से शांत हो गए। मातमपुर्सी के लिए आया पूरा परिवार डॉक्टर विश्वास की मृत्यु पर अत्यधिक दुखी था, लेकिन पिछले तीन महीनों में परिवार के किसी भी सदस्य ने डॉक्टर विश्वास के माता–पिता अथवा पत्नी से एक बार भी फोन करके डॉक्टर विश्वास अथवा उसके परिवार का हालचाल नहीं पूछा। उस समय जब सब कुछ समाप्त हो गया था, तब भी यह नहीं पूछा कि मृतक का दाह संस्कार कब, कहाँ और कैसे हुआ होगा? वापस कब और कैसे आओगे? आठ आदमियों के वापस आने के लिए टिकटों के पैसे हैं या नहीं–ये पूछना भी भूल गए। बस एक बात याद रही और वो ये कि मातमपुर्सी के लिए सबसे पहले पहुँचना है, क्योंकि नजदीकी रिश्तेदारों के लिए यही सबसे जरूरी होता है।

समीक्षा

चेतना जगाती विचारमूलक कथाएँ

सूर्यकांतनागर
9893810050

डां. परुषोत्तम दूबे साहित्य जगत का एक बड़ा नाम है। साहित्य की विविध विधाओं में लेखन के अतिरिक्त दूबेजी ने अनेक सार्थक लघुकथाओं का सृजन किया है। इस विधा के सिद्धांत और आलोचना पक्ष पर भी उनका महत्त्वपूर्ण काम है। इधर उनकी लघुकथा संग्रह 'छोटे–छोटे सायबान' आया है। इसमें लगभग अर्धशतक छती उनकी लघुकथाएँ शामिल हैं। ये गहरे जीवनानुभवों से उपजी रचनाएँ हैं। दूबेजीकी रचनात्मकता में समकालीन साहित्य की मुख्य धारा के लगभग सभी कथ्य मौजूद हैं। इन कथाओं की खास विशेषता सांकेतिकता, प्रतीकात्मकता और प्रयोगशीलता है। स्मरण रहे, प्रतीक कोई सजावट की चीज नही है। यह सृजन का ही एक रूप है। प्रयोग से प्रगति की राह खुलती है। सीमा लांघना जरूरी है। जब–जब सीमाएँ लाँघी गई, नया कुछ सामने आया है। बौद्धिक और शिल्पगत विशेषता के बावजूद लघुकथाओं में ये सूत्र हैं, जिन्हें थामकर पाठक रचना में प्रवेश कर सकता है। मुखरता पर नियंत्रण के बाद भी लघुकथाओं में अन्वेषण के लिए काफी कुछ छोड़ा गया है। वैसे भी रचनात्मकता किन्हीं पैमाने की मोहताज नहीं होती। यदि कोई प्रतिमान है तो वे रचना से ही निकलकर आते हैं।

संग्रह की प्रथम रचना 'वे दोनों' गुंडों, दशहतगजों और देशद्रोहियों की उस दूषित मानसिकता पर प्रहार करती है, जिसके अधीन वे अंधाधुंद गोलियाँ चलाते हैं, हिंसा फैलाते हैं। इन लोगों की आतंकी गतिविधियाँ ही उनकी जाति है और हिंसा
उनका धर्म। 'अधूरी सुरंग' समकालीन यथार्थ को बयाँ करती महत्त्वपूर्ण रचना है। अराजक व्यवस्था के बीच आम आदमी पिस रहा है। हर तरफ क्षरण है, चाहे बात आर्थिक स्थिति की हो या मानवीय मूल्यों की। भविष्य अंधकारमय है। दशहित में दिया गया दान ही सच्चा दान है। लेखक ने लघुकथा 'मस्तक दान' में इस महीन पक्ष की ओर ध्यान आकर्षित किया है कि दान देने में हाथों से अधिक भागीदारी मस्तिष्क की होती है। किसको दान देना है, कितना देना है, कब देना है, क्या देना है, यह प्रथमतः मन–मस्तिष्क की उपज है। हाथ तो महज माध्यम है।
जो वतन पर मर मिटता है, अमर हो जाता है। देश के लिए दी गई कर्बानी अमरत्व प्रदान करती है। तब आदमी मरकर भी अमर रहता है (लघुकथा प्रार्थना)। इसी प्रकार अतःकरण से गाया कोई अनमोल गीत है, तो वह है राष्ट्रगीत। उसके आगे शेष गीत फीके हैं। (लघुकथा अनमोल गीत)

स्त्री का श्रेष्ठतम रूप ममतामयी माँ का है। संतान के प्रति माँ का प्यार निर्व्याज, निस्वार्थ और तर्कातीत होता है। करुणा, दया, प्रेम और त्याग सब एक जगह देखना हो तो माँ के हृदय में झाँको। माँ का कोमल, जादुई स्पर्श संतान की पीड़ा हर लेता है, इसीलिए माँ सदा बसी रहती है अतःकरण में। यही भाव है लघुकथा 'घर लौटा राम खिलावन' का! यादों में बसी माँ का ऐसा ही भावपूर्ण चित्रण 'माँ' लघुकथा में। इससे भिन्न दृष्टिकाण है लघुकथा 'रूनझुन' का जहाँ संतान द्वारा माँ के हक में बाधा डालने के प्रति शिकायत है। बच्चे माता–पिता के सुख–सुविधा को अपने खाते में डाल लेते हैं। कथा में गहरा मनोविज्ञान है। लड़कियाँ मात्र घर चलानेवाली सेविका नहीं है। स्त्री ही है, जो सही अर्थ में घर को मंदिर बनाती है। कन्या का उसके बाहरी सौंदर्य से नहीं, उसकी प्रतिभा के बल पर आँकना चाहिए। यही भाव–दिशा है, लघुकथा 'लड़की पसंद' है।

प्रेम निःशब्द होता है। प्रेम की कोई परिभाषा नहीं है। वह हृदय से होता है। उसकी अभिव्यक्ति आँखों से होती है या आचरण से। कई बार वह आभासी होती है। पति–पत्नी की हल्की–फुल्की नोक–झोंक के पीछे भी प्रेम छिपा होता है। इस अव्यक्त भावात्मक लगाव का शिद्दत से व्यक्त किया है। लघुकथा 'बेड टी'। चुनाव जीतकर पुनः सत्ता हथियाने की नेताओं की चाल–चलाकियों का ब्योरा प्रस्तुत करती रचना है 'फिर वही'। हर बार आम आदमी ही छला जाता है। राजनीति में नैतिकता के लिए जगह नहीं है। जिस वक्ष ने छाया दी, उसे ही उखाड़ फेंकने में तनिक लज्जा नहीं आती। अपदस्थ कर स्वयं को रोपने का ख्याल आज सत्ता की राजनीति में खूब चल रहा है। नरेश से नारायण बनने की उत्कृष्ट गाथा है– 'नर–नरेश और नारायण'। खिलौना बनने से बेहतर है, उसकी चाबी बनना। मोहरा बनने से बेहतर है, पासा बनना। पासा उलट–पलटकर बाजी बदल सकता है। सत्ता का केन्द्र वही है। पर उसे अपने अवसरवादी स्वयं पर जरा भी खेद नहीं है। कोरोना काल में झेली त्रासिदियों का मर्मस्पर्शी चित्रण है–रचना 'अन्नप्राशन' में। आशंका और अविश्वास का भयावह दौर था वह।

ऐसी अनेक विचारपरक रचनाओं से ओतप्रोत है, पुरुषोत्तम जी की पुस्तक 'छोटे–छोटे सायवान'। प्रभावी अभिव्यक्ति के लिए उनके पास सारगर्भित, अर्थगामी, सततप्रवाही भाषा है। उर्दू लब्जों के सटीक प्रयोग से भाषा आकर्षक हो गई
है। लेखक ने लघुकथाओं में भाव और कलापक्ष दोनों के बीच संतुलन रखा है। सीमित शब्दों में चिंतन असीमित है। लघुकथा विद्या की टेरीटरी में नया चैप्टर जोड़ने के लिए लेखक बधाई के पात्र हैं।

समीक्षा

'संस्मरण का संदूकसमीक्षा के सिक्के' में नये प्रतिमान

डॉ. अवधेश कुमार चन्सौलिया
प्रा0 हिन्दी, डी.एम. 242
दीनदयालनगर, ग्वालियर (म.प्र.)
09425187203

अजहर हाशमी यद्यपि राजनीति विज्ञान के प्राध्यापक रहे हैं, लेकिन उसकी पहचान एक साहित्यकार के रूप में अधिक है। आप बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। कवि, निबंधकार, चिंतक, ज्योतिषी होने के साथ–साथ आपमें भारतीयता कूट–कटकर भरी है। सनातनधर्मी श्री हाशमी जी भारतीय संस्कृति के उन्नायक भी हैं।

'संस्मरण का संदूक : समीक्षा के सिक्के' कृति के पूर्व हाशमी जी की एक पुस्तक 'सृजन के सहयात्री' भी प्रकाशित हो चुकी है। इसमें मध्यप्रदेश के साहित्यकारों की सृजनात्मकता का समीक्षात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इसके पश्चात् देश के सुप्रसिद्ध मंचीय कवियों पर 'संस्मरण का संदूक : समीक्षा के सिक्के' प्रकाश में आयी है। इस पुस्तक में हाशमी जी के साथ मंच साझा करने का अनेक साहित्यकारों का साहित्यिक विवरण है। इसमें ऐसे कवि भी हैं, जो न केवल कवि हैं, बल्कि व्यंग्यकार, निबंधकार, वैयाकरण, पत्रकार, बाल साहित्यकार, ग़ज़लकार, गीत, नवगीतकार, शायर, भाषा वैज्ञानिक आदि हैं।

इन साहित्यकारों में डॉ. नामवर सिंह, डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी, डॉ. धर्मवीर भारती, महीप सिंह, महेरून्निशा परवेज, शरद जोशी, प्रेम भारती, अमरकांत, शिवमंगल सिंह 'सुमन', हरिवंश राय बच्चन, शेर जंग गर्ग, कन्हैयालाल नंदन, बलदेव वंशी, शंभुनाथ सिंह,सोम ठाकुर, यश मालवीय, महेश्वर तिवारी, कैलाश वाजपेई, कुँअर नारायण, गोपाल प्रसाद 'नीरज', प्रदीप पंडित प्रमुख हैं।

इन साहित्यकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रामाणिक जानकारी प्रस्तुत करना अत्यन्त दुष्कर कार्य था। हाशमी जी ने कभी साहित्यकारों के जन्म और अवसान की तिथियों से पाठकों को अवगत कराने का महनीय कार्य किया है। इसके साथ ही उनकी कृतियों के प्रकाशन वर्ष, उनकी विषय वस्तु एवं प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख भी विस्तार से इस पुस्तक में किया गया है। कृतियों तथा कविताओं की समीक्षा भी बहुकोणीय दृष्टि से हुई है। समीक्षा करते समय हाशमीजी की दृष्टि रचना के उन बिन्दुओं पर अधिक होती है, जो राष्ट्रीय विचारधारा से ओत–प्रोत होते हैं। या जिनमें भाई–चारे की भावनाओं को बल मिलता हो। यथा–डॉ. लक्ष्मी नारायण मित्तल के आलेख 'सद्भाव की विरासत' के ये अंश उद्धृत करना जरूरी मानते हैं–''सन् 1728 में गोदावरी नदी के किनारे बाजीराव प्रथम और निजाम उल मुल्क के बीच भयंकर युद्ध हुआ। मराठे जीत गये और निजाम की सेना को अन्न का भारी तोड़ा आ पड़ा। इसी बीच ईद–मुबारक आन पड़ी। बाजीराव के साथियों ने कहा–युद्ध नीति कहती है कि दुश्मन की लाचारी का फायदा उठाया जाए, पर बाजीराव पेशवा ने पाँच हजार बैलों पर आवश्यक सामग्री लदवाकर निजाम के सैनिकों के लिए भिजवायी, ताकि वे ईद मुबारक मना सके। जंग की हार जीत मुस्तकिल नहीं होती, भाईचारा असली इंसानियत है।''

हाशमीजी स्वयं एक श्रेष्ठ साहित्यकार हैं। उन्होंने राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय कवि सम्मेलन में भाग लिये हैं। अनेक नामचीन कवियों का सान्निध्य उन्हें प्राप्त हुआ है। डॉ. शिव मंगल सिंह 'सुमन' के वे छात्र रहे हैं और उनके साथ कवि सम्मेलनों में सस्वर पाठ भी किया है। ऐसा संयोग बिरले ही लोगों को प्राप्त होता है। शरदोत्सव पर रतलाम में आयोजित कवि सम्मेलन जो 1977 ई. में सम्पन्न हुआ था, जिसमें सुमन जी ने 'साँसों का हिसाब', 'पर आँखें नहीं भरीं', 'साथ नहीं हो तुम' कविताएँ सुनायीं थीं। वहाँ पर श्रोताओं की माँग पर 'चलना हमारा काम है' कविता प्रस्तुत की थी, जो इस प्रकार है–

''गति प्रबल पैरों में भरी
फिर क्यों रहूँ दर–दर खड़ा
जब आज मेरे सामने
है रास्ता इतना पड़ा
जबतक न मंजिल जा सकूँ
तबतक न मुझे विराम है
चलना हमारा काम है।''(पृ. 118)

यह कविता लोगों को कर्तव्य और लक्ष्य के पथ पर निरंतर गतिशील रहने की प्रेरणा देती है। हाशमीजी उन कविताओं को महत्व देते हैं, जो समाजोपयोगी हों। इसलिए उन्होंने समीक्षा के लिए ऐसी कविताओं, गीतों, नवगीतों, संस्मरणों को ही चुना है, जिनमें सामाजिक और पारिवारिक यथार्थ का चित्रांकन हो। कवि प्रदीप पंडित की कविता 'रिश्ते' की ये पंक्तियाँ महत्वपूर्ण हैं–

''टहलने लगे बाजार में भीत के रिश्ते
रुआँसा लगे कहने कि मर गये रिश्ते
छाँव नहीं, प्यार नहीं, अहसास नहीं
गूँगे से हो गये इस दौर के रिश्ते।''(पृ. 257)

हाशमीजी इन पंक्तियों की समीक्षा करते हुए लिखते हैं कि पाठको! मेरे मत में उक्त कविता (रिश्ते) में प्रदीप पंडित ने वर्तमान की उपभोक्तावादी संस्कृति के धरातल पर रिश्तों की टूटन को रेखांकित किया है।(पृ. 257) इस समीक्षा के प्रारंभ में उनका कहना है कि ''मेरे मत में कवि प्रदीप पंडित की कविता, प्रतीकों का परिधान पहने हुए, अपमानों की उँगली पकड़कर अक्षरों के आँगन में टहलती हुई कविता है। उनकी कविता में अनुभूति की गहराई है, साफगोई और सच्चाई है। संवेदनशीलता उनकी कविताओं का निशान है। बिम्ब उनकी कविताओं की पहचान है। एक वाक्य में कहूँ तो यह कि कवि प्रदीप पंडित की कविता में बिम्ब के बादल बरसते हैं।(पृ. 257)

अजहर हाशमी जी संवेदनशील साहित्यकार हैं। सहृदयता, सहजता, मिलनसारिता और सामाजिक समरसता आपके व्यक्तित्व में पूर्णतः घुली–मिली है। नैतिक मूल्यों के प्रति आपकी अगाध आस्था है। 'संस्मरण का संदूक : समीक्षा के सिक्के' कृति की समीक्षा में भारतीय एवं सनातन मूल्यों को आसानी से देखा जा सकता है। देश के सुप्रसिद्ध साहित्यकारों से आपके गहन और आत्मीय संबंध इस पुस्तक के संस्मरणों में पूरी निजता के साथ रूपायित हुए हैं। भाषा पर आपकी अच्छी पकड़ है। समीक्ष्य कृति की समीक्षा में नये–पुराने एवं स्वयं के द्वारा एवं स्वयं के द्वारा निर्मित प्रतिमानों की झलक पाठकों को जगह–जगह मिल जाती है। जैसे–'माहेश्वर तिवारी के नवगीत मर्मस्पर्शी हैं, क्योंकि उनमें आत्मीय संगीत की अनुगूँज सुनाई देती है। मेरे मत में माहेश्वर तिवारी के नवगीत दरअसल जिंदगी के द्वारा, जिंदगी के लिए, जिंदगी के ज्योति कलश हैं। उनके नवगीतों में परिवेश के पालने में संदेश का शिशु किलकारियाँ करता है। माहेश्वर तिवारी अपने नवगीतों में बिम्ब और प्रतिबिम्ब के बीच कभी प्रतीकों की पगडंडी के पथिक होते हैं तो कभी नदी का अकेलापन महसूस करते हुए संवेदनशील सहयात्री। (पृ. 161)

भाषा का ऐसा प्रवाह तथा जीवंतता बहुत कम दृष्टिगत होती है। साहित्यकारों की विशेषताओं को जिस तरह से हाशमीजी खोजते हैं, वह अपने आपमें यूनिक है। ऐसा वही समीक्षक कर सकता है, जो रचनाकार और उसकी कृतियों से बहुत ही अपनत्व और गहराई से जुड़ा हो। साथ ही उसमें सूक्ष्म अन्वेषण की प्रवृत्ति हो। भाव एवं भाषा पर उसका पूर्ण अधिकार हो। हाशमीजी हिन्दुस्तान की संत–परंपरा के संपृक्त व्यक्ति हैं। वे ऋषितुल्य हैं, उनका चिंतन 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया। सर्वे भद्राणि पश्यन्ति, मा कश्चिद् दुःखभाग भवेत्।।' की भावनों से अभिसिंचित है। मानव को सुखमय बनाना, सबका कल्याण करना और इसके लिए क्या किया जाए? यही उनका ध्येय है। अपनी कविताओं, व्यंग्यों, निबंधों और समीक्षाओं में समाज में व्याप्त विसंगतियों, भ्रष्टाचार एवं अनाचारों को कैसे दूर करें, इसी की चिंता करते वे प्रतीत होते हैं। समाज में भाईचारा, सद्भाव, देशप्रेम, नैतिक मूल्यों और मानवीयता की स्थापना का संकल्प लेकर वे निरंतर सृजनशील हैं। उनका लेखन आमजन को केन्द्र में रखकर चलता है और इसी के अनुरूप वे भाषा का चुनाव करते हैं। विषयानुसार शैली, मुहावरे, लोकोक्ति, प्रतीक, बिम्ब, उपमान एवं छंद का प्रयोग करके वे अपने कथन को बोधगम्य बनाकर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। इससे रसानुभूति सहज हो जाती है। समीक्ष्य कृति की उपयोगिता इसी से सिद्ध हो जाती है कि इस पुस्तक पर लेखक को मध्य प्रदेश सकार ने 'साहित्य अकादमी पुरस्कार', 2021 से सम्मानित किया है। 'निर्मल वर्मा' के नाम पर दिया गया यह पुरस्कार अखिल भारतीय पुरस्कार है, जिसमें कृतिकार को एक लाख रुपये नगद, शॉल एवं श्रीफल प्रदान किये जाते हैं। इससे साहित्य जगत में रचनाकार की प्रतिष्ठा स्वयंसिद्ध हो जाती है। समीक्षा के क्षेत्र में प्रतिमान स्थापित करने में यह पुस्तक निश्चित ही सफल होगी।

स्मृति अगर होती है

संजय वर्मा 'दृष्टि'
मनावर (धार)
9893070756

लघुकथा

एक जानकारी के मुताबिक पलक झपकने से तीन गुना तेज याद आती है घटनाओं के बारे में पढ़ा। स्मृतियाँ सिमेटिक भाषा के तथ्य समझने पर व एपिसोडिक व्यक्ति विशेष के लिए खास महत्व रखती है। रटंत क्रिया से भी याददाश्त मजबूत होती है। चिंतनीय प्रश्न यह उठता है कि क्या इंसान के मरने के बाद स्मृतियाँ अमर होती हैं? पुनर्जन्म के उदाहरण में तो स्मृतियाँ पहचान का आधार बनाती कई घटनाएँ पढ़ने, सुनने में आती रही हैं। कई लोगों को पिछले जन्म की घटनाएँ याद रहती हैं। छोटी उम्र में पुनर्जन्म की बातें ज्यादा याद रहती। फिर बड़े होने पर कम हो जाती है। पुनर्जन्म पर कई फिल्में, सीरियल भी बने हैं। आज भी कई बच्चे ऐसे जिनकी जनरल नॉलेज की मेमोरी बहुत ही तगड़ी है और इसी प्रतिभा के कारण गिनीज बुक रिकार्ड में भी उनका उल्लेख है। ज्योतिष और विज्ञान भी स्मृति अमर और शरीर खत्म होने की बात कहता है। पुनर्जन्म में मेमोरी ट्रांसफर भी शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश होती होगी। इसी प्रकार से मनुष्य के शरीर में हवा लगना यानी भूत, प्रेत, चुड़ैल आदि का लगना, जिसको ओझा जानकार उसके द्वारा उतारा भी जाता है। कोई इसे मानसिक रोग मानता है, किंतु बाधा पीड़ित इंसान की बाधा होने से बोली भी बदल जाती है। जिसे उसे कभी भी पढ़ी बोली सुनी नहीं होती है। ऐसे कई उदाहरण देखने को मिले हैं। दाह संस्कार के समय कपाल क्रिया किये जाने के प्रति क्या, धारणा के पीछे क्या, पुनर्जन्म मैमोरी का रहता है? ये अभी तक विस्तृत रूप से मालूम नहीं है, प्राचीन ग्रंथों पुराणों में अमरता प्राप्त का उदाहरण भी पढ़ने को मिलते हैं। मस्तिष्क की क्रियाओं–प्रतिक्रियाओं के गूढ़ रहस्य को सुलझाने में और भी 15 की आवश्यकता है, ताकि पुनर्जन्म से स्मृति कैसे अमर बनी रहती ज्ञात हो सके।

आलेख

भारतवर्ष का अंगगौरव

विजय वर्धन,
लहेरी टोला, भागलपुर–812002
मो.–9204564272

भारतवर्ष के बिहार राज्य का एक शहर अथर्ववेद में अंग नाम से वर्णित है। प्राचीन काल में इसका क्षेत्र नेपाल से गिरीडीह एवं राजमहल से लक्खीसराय तक फैला हुआ था। असुर राजा बलि वैदिक काल में दक्षिण भारत से विजयपताका लहराते हुए जब अंग पहुँचे, तब यहाँ की स्वास्थ्यवर्धक आवोहवा एवं मनोरमता से मुग्ध होकर यहीं बस गये। पत्नी सुदेशना से उन्हें चार पुत्र हुए–अंग, बंग, कलिंग और पुण्ड्र एवं सम्हा नाम की एक पुत्री पैदा हुई। सबसे बड़े पुत्र अंग ने पिता के बाद इसी क्षेत्र में शासन किया और इसका नाम 'अंग' रख दिया, जिसकी राजधानी मालिनी थी। बाद में राजा हरिश्चन्द्र के पौत्र चम्प के नाम पर यही मालिनी चम्पा के नाम से विख्यात हुई, जो आज भी चंपानगर के रूप में फल–फूल रही है। चम्प के प्रपौत्र जयद्रथ ने एक निम्न जाति की लड़की से विवाह कर लिया था, जिससे उसकी संतान सूतपुत्र कहलायी। इन्हीं सूतपुत्रों में एक अधीरथ थे, जिन्होंने कर्ण को पालपोसकर जीवन–दान दिया था, जो गंगा में एक पिटारी में पाया गया था। एक राजा ने चंपा को चंपक वृक्षों से भर दिया था, जिससे इसके फूलों से सारी चम्पा सुवासित हो उठी थी। इसी चंपा में रोमपाद नामक एक राजा ने शासन किया, जो राजा दशरथ के अभिन्न मित्र थे। राजा दशरथ को गंधर्व विवाह से उत्पन्न पुत्री शान्ता को राजा रोमपाद ने गोद ले लिया था; क्योंकि उन्हें कोई संतान नहीं थी। रोमपाद ने पुत्री शांता का विवाह अंग के ही एक सिद्ध ऋषि 'श्रृंगी' से किया था। श्रृंगी ऋषि ने ही पुत्रेष्ठि यज्ञ करा कर राजा दशरथ को चार पुत्रों का पिता बनाया था।

अंग का वर्णन बुद्ध की जातक कथाओं, रामायण, महाभारत, जैनों के चम्पक श्रेष्ठ कथाओं, जापान के बौद्ध कथाओं, मेगास्थनीज की इंडिका, अबुल फजल की आईने अकबरी आदि पुस्तकों में मिलता है।

महावीर और गौतम बुद्ध ने अंग में कई बार वर्षावास किया और अपने गहन ज्ञान से लोगों को आनंदित कर दिया था। जैन धर्म के बारहवें तीर्थंकर बासुपूज्य का पाँचों कल्याण–गर्भ, दीक्षा, कैवल्य (शुद्धता) एवं निर्वाण अंगप्रदेश में ही सम्पन्न हुआ था। बुद्ध के काल में अंग छः महानगरों में फैला हुआ था–राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी,काशी एवं अंग। सम्राट अशोकी की माँ शुभद्रांगी अंग की ही एक ब्राह्मण कन्या थी। सती बिहुला की कार्यस्थली भी अंग ही रही, जिन्होंने अपने तप से मृतपति को स्वर्ग से जीवनदान दिलवाकर एक अनूठा मिशाल प्रस्तुत किया था और अंग की गरिमा में चार चांद लगा दिया था।

अंग का मंदार पर्वत जो मदार पौधों से एक समय आच्छादित था, मंदार नाम से नामित हुआ। यह भगवान विष्णु का वह स्थल है, जहाँ उन्होंने मधु और कैटभ दो दैत्यों को मार कर लोगों के प्राण बचाए थे। मंदार पर्वत शैव, वैष्णव, जैन और संताल धर्मों का संगम स्थल है। यहीं समुद्र मंथन से प्राप्त विष को भगवान शंकर ने पान करके सुर–असुर के विवाद को समाप्त किया था और नीलकंठ कहलाये। वेद के अनुसार भगवान शंकर ने अंगप्रदेश में ही अपने त्रिनेत्र से कामदेव को भस्म किया था। राजा आदित्यसेन की पत्नी रानी श्रीकोण्ड देवी ने मंदार पर्वत पर नरहरि की प्रतिमा स्थापित की थी और मंदार के नीचे पापहरिणी तालाब खुदवाया था। इस तालाब में दक्षिण के कांचीपुरम के चोल साम्राज्य के एक राजा ने जब स्नान किया, तब उनका कुष्ठ रोग दूर हो गया; क्योंकि मंदार सूर्य प्रकाश का वैज्ञानिक केन्द्र स्थल है, जैसा कि उज्जैन का महाकालेश्वर मंदिर है। मंदार के किसी भी मंदिर में बलि नहीं दी जाती है। यह विंध्याचल पर्वत का एक ऑफ सूट है। इसके आसपास एक जाति निवास करती है, जिसे बिंद कहा जाता है, जो विंध्य का अपभ्रंश है।

अंग जनपद का इतिहास सबसे पुराना है। यह वस्तुतः भारतीय इतिहास को ही उजागर करता है। सप्तर्षियों में अंगिरा ऋषि अंग के ही आदिऋषि थे। आयुर्वेदाचार्य चरक का जन्म मंदार के निकट हुआ था। अंग में ही दीर्घतमा के कटे सिर को जोड़ा गया था। यहीं कटे हुए जांघ के स्थान पर धातु की जांघ लगाई थी। यहाँ विमान भी बनाकर उड़ाये जाते थे। द्रोणाचार्य को अंग में ही आग्नेयास्त्र की शिक्षा मिली थी। इतिहासकारों का मत है कि अंग का इतिहास श्रावस्ती, कौशाम्बी एवं साकेत से भी प्राचीन है। वेद में वर्णन है कि इन्द्र अंग से सीधे जुड़े हुए थे। अंग में बहुतायत से पाये जानेवाले सफेद हाथी को अंगवासियों ने इन्द्र को भेंटस्वरूप दिया था। डॉ. अभयकांत चौधरी के अनुसार इन्द्र पहले असुरों के देवता थे, पर बाद में सुरों अर्थात् आर्यों ने उन्हें अपना लिया। इतिहासकार तो यह भी कहते हैं कि वेद की रचना के पूर्व ही अंग की स्थापना हो गयी थी। यह भी कहा जाता है कि विष्णु के दस अवतारों में पांच अवतार अंग में ही हुए। जैसे–मत्स्य, कच्छप, वराह, वामन एवं नरसिंह। हिरण्यकशिपु पूर्णियाँ क्षेत्र का रहनेवाला था। इसलिए नरसिंह भगवान ने वहीं अवतार लेकर उसे मारा। हिरण्यकशिपु ने मंदार पर घोर तपस्या करके विष्णु भगवान से अमर रहने का वरदान माँगा था।

वैदेही जब विवाह के बाद श्रीराम के साथ अयोध्या जा रही थीं, तब अंग की नारियों ने बेगुसराय के निकट सिमरिया घाट पर उन्हें जल पिलाया था। चौदह वर्षों के वनवास के पश्चात् जब राम लौट रहे थे, तब उन्होंने अंग के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने लिए अंग में पदार्पण किया था, क्योंकि राजा दशरथ ने यहीं पुत्रेष्ठि यज्ञ करवाया था। सुल्तानगंज में उत्तरवाहिनी गंगा से जल लेकर प्रभु राम एवं सीता देवघर गये थे और वैद्यनाथ धाम में शिवलिंग पर जल अर्पण किया था।

कहलगाँव के गंगातट पर चौरासी ऋषियों ने साधना की थी और लोगों का कल्याण किया था, जैसे कहोल, आरुणि, अष्टावक्र

आदि। कहोल ऋषि के नाम पर ही कहलगाँव का नाम पड़ा है। आज भी इन ऋषियों की गुफाएँ कहलगाँव की पहाड़ी में देखी जा सकती हैं।

कर्ण अंग के ऐसे प्रतापी राजा थे, जिन्होंने संपूर्ण भारतवर्ष पर शासन किया था। प्रतिदिन मनों सोना दान देकर इन्होंने दानी कर्ण की ऐसी महिमा पायी, जो विश्व में आजतक मिशाल है। कई नरेशों ने अपने नाम के साथ कर्ण शब्द जोड़ लिया। आज भी अंगप्रदेश कई लोगों के नाम के साथ 'कर्ण' टाइटिल पाया जाता है।

जैनियों के पाँच तीर्थंकर अंग में ही पैदा हुए। पहले तीर्थंकर ऋषभ मंदार पर्वत पर आए थे। नौवें तीर्थंकर सुविधि नाथ जमुई के रहनेवाले थे। तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ भी अंग के थे और चौबीसवें तीर्थंकर महावीर का जन्म वैशाली में हुआ था। इनकी शिष्या चंदनवाला भी अंग की थी। जैन ग्रंथों में चंपा का वर्णन इतने विस्तार से है कि ऐसा प्रतीत होता है, मानो जैन धर्म कण–कण से अंग का ऋणी है। ये ग्रंथ बताते हैं कि अंग के प्रासाद इतने ऊँचे–ऊँचे और शोभायमान थे कि मानो सैकड़ों बाहुओं से आकाश को छू रहे हों। घर–घर में रेशम की पताकाएँ इस तरह से उड़ती थीं, मानो गगन में सर्प उड़ रहे हों। तालाबों में लाल कमल ऐसे खिले रहते थे, मानो बड़े–बड़े फल तालाबों में भरे हुए हों। वस्तुतः जैनधर्म का विकास अंग में हुआ है। जैन ग्रंथ भी मूलतः अर्धमागधी भाषा में लिखे गये हैं।

जिस समय महावीर अपने ज्ञान से लोगों को आध्यात्मिकता की ओर ले जा रहे थे, उसी समय गौतम बुद्ध ने अंग के गया में साधना करके ज्ञान प्राप्त किया और प्राणियों को दुःखों से उबारने के लिए सारनाथ, मगध, बज्जि आदि स्थानों पर उपदेश दिया। वे चम्पा में भी पधारे थे और गग्गरा झील (भैरवा तालाब) के पास भी उपदेश दिया। चम्पा के वैदिक ब्राह्मण सोनदंड उनसे इतने प्रभावित हुए कि बुद्ध के चरणों पर गिर पड़े और बौद्ध भिक्षु बन गये। बांका के भदरिया गाँव में एक ललना विशाखा भी बुद्ध की शिष्या बन गयी और उनके सम्मान में उसने नौ करोड़ की एक माला उपहारस्वरूप प्रदान किया।

अंग की धरती पर बौद्धधर्म ने ज्यादा ख्याति पाई, जिसका परिणाम हुआ कहलगाँव में विक्रमशिला महाविहार की स्थापना, जिसमें देश–विदेश से छात्र विद्याध्ययन के लिए आते थे। यह अंग की धरोहर के रूप में विकसित हुआ। दुर्भाग्य से इसमें पाँच मकार–मांस, मदिरा, मैथुन, मुद्रा एवं मत्स्य के कारण यह पतन की ओर बढ़ने लगा और अंत में नष्ट हो गया। इसका भग्नावशेष आज भी कहलगाँव के अंतीचक गाँव में देखा जा सकता है। इसके बाद अंग की धरती से बौद्ध धर्म समाप्त हो गया, पर श्वेताम्बर और दिगम्बर मंदिरों के साथ जैन धर्म आज भी यहाँ विद्यमान है।

अंग के राजाओं ने भारतवर्ष के बाहर भी कई उपनिवेश बसाया था; जैसे पूर्व में कंबोडिया, उत्तर–पश्चिम में अंगद्वीप, दक्षिण–पूर्व में वर्मा और उत्तर में चीन। कंबोडिया का अंकोरवाट मंदिर इतना भव्य है कि देखकर आश्चर्य होता है। इस प्रकार बृहत्तर भारत की स्थापना सर्वप्रथम अंग के नृपतियों ने ही की।

लगभग छः सौ वर्ष ई.पूर्व भारतवर्ष में बारह जनपद थे, जिनमें अंग सर्वश्रेष्ठ था, क्योंकि यहाँ के नाविक साहसी थे, जो समुद्री तूफान का सामना करते हुए विदेशों तक जाते थे और नावों पर सोना–चांदी लादकर लाते थे। चंपाद का शोणकोटिविंश नाम सेठ बीस करोड़ स्वर्ण मुद्राओं का स्वामी था। संभवतः अंग की धनाढ्यता के कारण ही भारतवर्ष को सोने की चिड़िया कहा जाता था।

बारहवीं सदी में अंग के राजा इन्द्रद्युम्न की पत्नी सोने के कमल पर बैठकर स्नान करती थी। इन्द्रद्युम्न ने ही उड़ीसा के जगन्नाथ मंदिर का निर्माण कराया था। चौथी शताब्दी में अंग में लोकगीतों की प्रथा प्रारंभ हुई, जिन्हें विभिन्न अवसरों पर गाया जाने लगा। ये लोकगीत इतने मधुर एवं भावपूर्ण हैं कि मन मोह लेते हैं। इस प्रकार अंग ज्ञान और धन से परिपूर्ण था।

अंग के दुमका में नौनीहाट के निकट एक सभ्यता पनपी थी, जिसे मड़प्पा कहा जाता था। इसकी रूपरेखा सिंधु घाटी सभ्यता की तरह ही थी और यह पाँच नदियों–गंगा, बासलोई, ब्राह्मणी, अजय एवं मयूराक्षी नदियों के बीच फली और फूली।

अंगप्रदेश पुरातत्त्व अवशेषों का भी विशाल गर्भगृह है। दुमका के रामपुरहाट के द्वारिका नदी में पत्थर के छोटे–छोटे औजार पाये गये हैं। राजमहल में अनाजों तथा वनस्पतियों के जीवाश्म मिलते हैं। साहिबगंज के पहाड़ों पर पौधों एवं जानवरों के भी जीवाश्म आज भी पाये जाते हैं। यही कारण है कि अंग्रेज अन्वेषक माउंट गोमरी ने कहा था कि अंगक्षेत्र में कहीं भी खड़े होकर पत्थर फेंका जाय तो पत्थर जहाँ भी गिरेगा, वहाँ खुदाई करने पर पुरातात्त्विक अवशेष जरूर मिलेगा। 1862 ई. में रेलवे लाइन बिछाने के क्रम में सुलतानगंज से गौतम बुद्ध की कांसे की एक प्रतिमा मिली थी, जो आज इंग्लैंड के बरमिंघम संग्रहालय में सुरक्षित है।

बंगाल के गौड़ राजा शशांक ने अंगजनपद में एकमुखी, अनेकोंमुखी शिवलिंग की स्थापना की थी, जो आज भी मंदिरों के रूप में पूजे जाते हैं। उन्होंने शाहकुण्ड पर्वत पर एक किला भी बनवाया था, जिसका अवशेष आज भी देखा जा सकता है।

स्वामी गोरखनाथजी के अनुयायी मिथिला से चलकर चंपा आए और कर्णगढ़ के दक्षिणी भाग में शरण ली। इस स्थान का नाम उन्होंने श्रीनाथनगर रखा, जो बाद में नाथनगर के नाम से विख्यात हो गया। इस क्षेत्र से होकर पूरब से पश्चिम एक रोड गुजरती है, जिसका नाम स्वतंत्रता सेनानी कृष्ण बिहारी लाल के नाम से 'के.बी.लाल रोड' रखा गया है।

नाथ संप्रदाय के लोग अघोरनाथ भी कहलाते थे; क्योंकि वे तंत्रविद्या में विश्वास करते थे। इन्होंने साहेबगंज मोहल्ले में गंगा के किनारे एक शिवमंदिर स्थापित किया और इसका नाम भूतनाथ रखा। यह मंदिर आज भी विद्यमान है। गंगा जब इस मंदिर के निकट थी, तब यहाँ दाह संस्कार होता था।

चांदो सौदागर की पुत्रवधू बिहुला ने छठी शताब्दी में सावित्री की तरह अपने मृतपति को ईश्वर से प्रार्थना करके जीवित किया, जिसकी याद में आज भी बिहुला–विषहरी पूजा भाद्र मास में अंग में मनाया जाता है।

अंग की धरती मुंगेर में एक ऋषि रहते थे, जिनका नाम मुद्गल ऋषि था। मुद्गल शब्द ही अपभ्रंशित होकर मुंगेर हो गया है। मुंगेर में सोनो नाम का एक स्थान है, जहाँ प्राचीन काल में सोने का भंडार था। कर्ण यहीं से सोना लेकर दान किया करते थे। बिम्बिसार को इस भंडार के कारण कई युद्ध लड़ने पड़े थे। इस स्थान से सोने के गहने गढ़ने के फार्मा मिले हैं, जो पटना संग्रहालय में है।

अंग की राजधानी चम्पा, जो आजकल भागलपुर के नाम से विख्यात है, के दक्षिण–पूर्व में सूरावन (ताड़ वृक्षों का जंगल जिनसे सुरा या शराब बनता था) पूर्व में सहोर वन (कंटीले वृक्षों का वन) या सबौर एवं दक्षिण कुहुवन (कहुवा के वृक्षों का वन) था। चंपा का उत्तरी द्वार नरगा के पास, पश्चिमी द्वार चम्पा नदी के पास तथा पूर्वी द्वार पब्लिक गार्डेन में खुलता था, जो टी.एन.बी एवं मारवाड़ी कॉलेज के बीचोबीच है। दक्षिण में द्वार नहीं था; क्योंकि उधर से आक्रमण की संभावना रहती थी। भीमकित्ता के पास छोटे दरवाजों से काम चलाया जाता था। चंपा के चार कोनों में चार वाचटावर्स थे। एक उत्तर–पश्चिम में त्रिमुहान के पास, दूसरा उत्तर–पूर्व में टील्हा कोठी के पास, तीसरा दक्षिणपूर्व में शाहजंगी पहाड़ी पर एवं चौथा दक्षिण–पश्चिम में भीमकित्ता के टीले के पर। इन टावर पर मिट्टी, लोहे एवं शीशे के गोले रखे रहते थे, जिन्हें जब धनुष से फेंका जाता था, तब हवा के घर्षण से इनमें आग लग जाती थी, जो दुश्मनों के बीच गिरकर हड़कंप मचा देती थी। इससे दुश्मन भाग जाते थे। आज भी ये गोले नशरतखानी में देखे जा सकते हैं।

चंपा के टील्हा कोठी एवं शाहजंगी के बीच सम्राट अशोक ने कई कपोत विहार बनवाये थे, जिन्हें परवर्तिका कहा जाता था। कालान्तर में यही नाम अपभ्रंशित होकर परबत्ती हो गया, जो भागलपुर का एक मोहल्ला है।

प्राचीनकाल में गंगा के किनारे–किनारे एक सड़क बनाई गई थी, जो पटना से बंगाल तक जाती थी। भागलपुर में यह चंपानगर, नरगा, साहेबगंज, यूनिवर्सिटी रोड, नयाबाजार चौक होते हुए बूढ़ानाथ, शंकरटाकीज, माणिक सरकार चौक, आदमपुर, घुरनबाबा पीर चौक, तिलकामांझी चौक होते हुए सबौर चली जाती है। इस रोड का पूर्वी द्वारा संकरी गली एवं पश्चिमी द्वार सूर्यगढ़ा था। इन दो द्वारों के बीच में कई द्वार एवं सराय थे; जैसे पूरब सराय, लक्खीसराय, भागलपुर का सराय मोहल्ला आदि।

चंपा या भागलपुर के खंजरपुर क्षेत्र में कंजर नामक एक जाति एक ही रात में अचानक आकर बस जाती थी और कुछ दिनों के बाद सारा सामान एक ही रात में समेटकर चली जाती थी। यह द्रविड़ मूल की एक घुमक्कड़ जाति थी। इसी जाति के नाम से खंजरपुर नाम पड़ा। यहाँ मान सिंह ने एक कोठी बनवायी थी, जिसे छावनी कोठी कहते हैं। कंजर जाति के अचानक गायब हो जाने के कारण जनमानस में यह घटना एक मायावी घटना के रूप में घर कर गई, जिससे कुछ लोग इस स्थान को मायानगर भी कहने लगे, जो मुस्लिम शासनकाल में मायागंज हो गया। आज इसी स्थान पर जवाहरलाल नेहरू मेडिकल कॉलेज एंड हॉस्पिटल स्थित है।

मायागंज में एक स्थान पर गंगा किनारे एक गुफा है, जो प्राचीन समय में चूना निकालने के क्रम में खोदी गई थी। बाद में मारीचि नाम ऋषि ने इसमें अपना आश्रम बना लिया। बौद्ध काल में हीनयानों ने इसे विहार के रूप में प्रयोग किया। चूँकि ये लोग खुद को मैं हीन हूँ–कहकर संबोधित करते थे। बाद में डाकुओं ने इस गुफा को अपना अड्डा बना लिया। बाद में यह गुफा वीरान हो गया। मधेपुरा से एक साधु (महर्षि मेँहीँ)ईश्वर की खोज में भागलपुर आए और इसी गुफा में साधना करने लगे। कालान्तर में उन्हें इस गुफा में ईश्वर का दर्शन हुआ और उन्होंने यहाँ आश्रम बनाकर रहने लगे। उन्हीं के नाम पर इस जगह का नाम 'महर्षि मेँहीँ आश्रम' हो गया, जो आज यह 'महर्षि मेँहीँ आश्रम के नाम से जगद्विख्यात है। आज यह स्थान एक दर्शनीय स्थान के रूप में विकसित हो गया है।

मुगलकाल में एक अधिकारी सराय मोहल्ले में रहते थे। इनका एक खूबसूरत बाग था, जिसे लालबाग कहा जाता था, जो आज भी इसी नाम से विख्यात है। यहाँ प्रोफेसर कॉलोनी बना दी गयी है। लाल खाँ ने सखीचंद घाट के पास एक बाजार बनवाया था, जो आज नयाबाजार नाम के मोहल्ले से जाना जाता है, पर अब कोई बाजार नहीं है। नयाबाजार से एक रोड लाल खाँ ने बनवायी थी, जो आज भी रामसर होते हुए तातारपुर चौक तक जाती है। लाल खाँ को मोहर्रम से बहुत ज्यादा लगाव था। इसलिए उन्होंने कर्बला से कुछ मिट्टी लाकर मंदरोजा चौक के पास रखवा दिया था, जिससे यह स्थान पाक हो गया। मुहर्रम में कई जगह के निशान इस स्थान पर इकट्ठे किये जाते हैं, इसी स्थान पर लाल खाँ की कब्र भी है।

भागलपुर के तिलकामांझी चौक को शृंगाटक कहा जाता था; क्योंकि यहाँ से तीन रास्ते फूटते थे। पूरब में सबौर की ओर, पश्चिम में चंपानगर की ओर एवं दक्षिण में रेलवेस्टेशन की ओर। एक रोड बरारी की ओर भी जाती है, पर यह बहुत बाद में बना है। अंग्रेजी शासनकाल में तिलकामांझी चौक के पश्चिम में एक सौ दो एकड़ का एक जंगल था, जिसे काटकर एक मैदान बनाया गया। इसके बीच में एक क्वार्टर का निर्माण हुआ, जिसमें भागलपुर के सेसन जज मि. सैंडिस रहने लगे। इसीलिए उनके आवास के चारों तरफ के मैदान को सैंडिस कंपाउंड कहा जाने लगा, जो आज भी इसी नाम से प्रचलित है। कुछ दिनों के बाद सैंडिस साहब को पाइल्स की बीमारी हो गयी। डॉक्टरों ने उन्हें शारीरिक श्रम करने की सलाह दी। वे मैदान की मिट्टी काटकर एक स्थान पर इकट्ठा करने लगे, जिससे एक टीला बन गया। आजादी के बाद इसमें एक सीढ़ी बनाई गई। 1957 ई. में चुनाव के दरम्यान नेहरूजी ने इसी टीले से भाषण दिया था।

भागलपुर के दूसरे कलेक्टर क्लीवलैंड जब साहेबगंज मोहल्ले का रोड बनवा रहे थे, तब जमीन के नीचे से रस्सी के कई गुच्छे निकले थे। ये वही रस्सी थी, जो कर्ण के किले के गेट पर रखे जाते थे। यदि दुश्मन किले के अंदर प्रवेश करने का प्रयास करते थे, तब ऊपर से रस्सी उनपर गिरा दी जाती थी, जिससे दुश्मन उसमें उलझकर फँस जाते थे और मारे जाते थे।

क्लीवलैंड की दमनकारी नीतियों से क्षुब्ध होकर संथालियों

ने विद्रोह कर दिया, जिसका नेतृत्व तिलकामांझी कर रहे थे। तिलकामांझी ने एक दिन विष भरे तीर से क्लीवलैंड को मारा, जिससे वह बुरी तरह घायल हो गया और अंत में मर गया। बाद में तिलकामांझी को बहुत मुश्किल से गिरफ्तार करके तिलकामांझी चौक पर फाँसी दे दी गई। आज यह चौक उन्हीं के नाम पर रौशन हो रहा है।

भागलपुर से पटना के बीच रेलवे लाइन बिछाने के क्रम में सुल्तानगंज में गौतमबुद्ध की एक कांसे की मूर्ति मिली थी, जो बहुत खूबसूरत थी। यह आज इंग्लैंड के वरमिंघम संग्रहालय में रखी हुई है।

चंपानगर में जो महाशय ड्योढी है, वह पहले टील्हा कोठी के पश्चिम में स्थित था। इसकी रानियाँ टील्हाकोठी के सामने के तालाब में स्नान करती थीं। जब क्लीवलैंड ने टील्हा कोठी पर अपना आवास बना लिया, तब रानियों को परेशानी होने लगी। क्लीवलैंड ने महाशय ड्योढ़ी को चंपानगर के त्रिमुहान के निकट जमीन देकर स्थानांतरित कर दिया।

कला : दुमका के पास जो मड़प्पा सभ्यता पनपी थी, उसी सभ्यता ने सबसे पहले मूर्तिकला का ईजाद किया था। बाद में कुषाणकाल एवं पालकाल में मिट्टी के अलावे धातु की भी मूर्तियाँ बनने लगीं। इस काल में अंग जनपद मूर्तियों एवं मंदिरों से भर गई। दीपावली में आज भी हाथी एवं परियों की मूर्तियाँ बनाई जाती हैं। कई विवाह समारोह में आज भी सफेद हाथी की मूर्ति छत या छप्पर पर लगाई जाती है।

पालवंशी राजा रामपाल के समय में विक्रमशिला महाविहार में अंगिका में एक रामायण लिखी गई थी, जो वाल्मीकि रामायण के बाद दूसरी रामायण है। यह कलकत्ता के नेशनल म्यूजियम में रखी गई है।

मंजूषा चित्रकला अंग की प्राचीन चित्रकला है, जिसे बिहुला ने मंजूषा पर बनाकर प्रारंभ किया था। इसमें गुलाबी, नीला और पीला रंग बहुतायत से प्रयोग किया जाता है। इसे कागज, सन एवं शोले से बनाई जाती है। इसके मुख्य पात्र– टुण्डी राक्षसी, मनसादेवी, उसकी बहनें, बिहुला, लखेन्द्र एवं सर्प होते हैं।

सहलेस भगत, बाबा बिसुराउत, घुघली घटमा, नटुआ दयाल, हिरनी–बिरनी आदि अंग के लोकसंस्कृति के रचयिता हैं। खड़ी बोली हिन्दी के प्रणेता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म अंग के राजमहल में हुआ था। दिनकर भी अंगक्षेत्र के बेगुसराय के रहनेवाले थे, जिन्होंने 'हिमालय' जैसी ओजस्वी कविता लिखी और राष्ट्रकवि से इन्हें नवाजा गया। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने टील्हा कोठी की सीढ़ी पर मौलसिरी के वृक्ष के नीचे गीतांजलि के कुछ पद लिखे थे। बंगला के कई साहित्यकारों ने यहाँ कुछ उपन्यासों, कविताओं और कहानियों की रचनाएँ की हैं; जैसे वनफूल, शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय।

अंगप्रदेश में कई कर्णप्रिय लोकोक्तियाँ बोली जाती जाती हैं; जैसे–'सुनो जी गणपत, कहो जी भाई। विद्या दे सरोसती माई।' 'एक मुट्ठी राय देल छिरियाय, चुनते–चुनते ओरो न पाय।' 'पढ़भो लिखभो पइबो गद्दी, नै ते तू रही जेभो रद्दी।'

भाषा : अंगप्रदेश में अंगिका भाषा बोली जाती है, जिसे 'छिकाछिकी' भी कहते हैं। ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर अनुमान लगाया जाता है कि यह भाषा लगभग पंद्रह हजार वर्ष पुरानी है। वैदिक साहित्य में अंगिका भाषा का भरमार है। अनेक मंत्र अंगिका भाषा में ज्यों के त्यों लिखे गये हैं। अतः जननी की तरह इस भाषा ने वेदों को समृद्ध किया है। यह सुरों एवं असुरों दोनों की भाषा थी। ह्वेनसांग का तो यहाँ तक कहना है कि अंग, बंग और कलिंग आदि प्रदेशों में यही भाषा बोली जाती थी। बंगला भाषा अंगिका से बहुत कुछ मिलती है। सिद्धों, नाथों एवं जैनियों की अपभ्रंश साहित्य अंगिका से ही निकला–ऐसा माना जाता है।

अंगिका भाषा के कई शब्द हू–ब–हू या कुछ रूप बदलकर संथाली भाषा से मिलते–जुलते हैं; जैसे पुसी, जांगा (जांघा), दोल (दाल), चड़े (चिड़िया) आदि। यही कारण है कि अंगिका भाषा की उत्पत्ति संथाल भाषा से ही माना जाता है।

भारतीय आर्य भाषा में अंगिका का स्थान पूर्व वैदिककाल से है। इसे प्राच्य भाषा, पूर्वी भाषा, प्राकृत भाषा, पालि भाषा या अर्धमागधी अपभ्रंश भी कहा जाता है। पाणिनी ने प्राकृत अंगिका से एक–एक अक्षर जोड़कर सूत्र बनाए। विद्वानों का अनुमान है कि प्राच्य अंगिका से प्राकृत भाषा, प्राकृत से संस्कृत, संस्कृत से अपभ्रंश हुआ तथा अपभ्रंश से हिन्दी निकली है। जैसे–

प्राच्य अंगिका	प्राकृत	संस्कृत	अपभ्रंश	हिन्दी
दू	दो	द्वौ	दु	दो
अज्ज	आय	अद्य	अज्ज	आज
कज्ज	काम	कार्य	कज्जहि	कार्य
सत्त	सात	सप्त	सत्त	सात

अंगिका भाषा के कई शब्द हू–ब–हू कई भाषाओं में प्रयुक्त किये जाते हैं; जैसे हे, हो, अरे आदि। महाभारत काल में अंगिका को आंगी कहा जाता था। इसमें आर्य भाषा परिवार की सभी विशेषताएँ मौजूद हैं। इस भाषा का प्रयोग ऑ की तरह किया जाता है; जैसे चावल को चॉर और देवर के पुत्र को जॉत कहा जाता है। इ, औ और उ का प्रयोग बहुत कम होता है, पर ए एवं ऐ का प्रयोग ओ और औ की तरह बहुत ज्यादा होता है। इसमें स्वर संयोग नहीं होता है; जैसे प्रेम का परेम और धर्म को धरम कहा जाता है। अनुस्वार की जगह नासिका या चंद्रबिन्दु का प्रयोग होता है, जैसे अँचरा, ऊँच्च, एँड़ी, इँजोर आदि। मूर्धन्य श एवं मूर्धन्य ण का प्रयोग नहीं होता है। केवल दन्त न एवं दन्त स का प्रयोग होता है। एक वचन से बहुवचन बनाने के लिए सिनी या समानार्थी शब्द का प्रयोग किया जाता है। जैसे –बुतरूसिनी, छौड़ासिनी, बरतन–बासन, लोटा–ऊटा, कपड़ा–लत्ता आदि। कर्ता के लिंग के अनुसार बंगला की तरह लिंग परिवर्तन नहीं होता है। जैसे–सीता जाय छै, राम जाय छै। इस भाषा में अनुनासिक ध्वनियों न, औ ऊ का प्रयोग बहुतायत से होता है। जैसे हुन्नें, जिन्नें, तिन्नें, जाय छैं, खाय छैं, अंगा, नुंगा, फतिंगा आदि। अंगिका में ग्रास के अर्थ खाना होता है। संभवतः इसी शब्द से अंग्रेजी में ग्रास शब्द बना है, जिसका अर्थ घास होता है, जिसे जानवर खाते हैं। अंगिका के कई

शब्द तमिल भाषा के शब्द से मिलते हैं; जैसे–झड़ी, झगड़ा, खूंटी, बीज, कौवा, कुत्ता, बंदर, आग आदि।

विद्वानों का मत है कि अंगिका में कृदन्त का प्रयोग किरातों से आया है। जैसे खाय क, जाय क, पढ़ी क आदि। टवर्ग का प्रयोग द्रविड़ों की देन है; जैसे हय टा, हौ टा, तनि टा आदि। इस प्रकार कई शब्द आदि भाषा परिवार से आये हैं। जैसे–डोंगा (नाव), दीया (दीपक), छौड़ा (लड़का), छौड़ी (लड़की), काका (चाचा), आदि कुड़ख भाष से आए हैं। केला और चावल शब्द 'हो' भाषा से आये हैं।

किरातों ने घर के लिए 'कि' और रोकने के लिए 'वाड़' शब्द का प्रयोग किया, जिससे किवाड़ शब्द बना अर्थात् घर में प्रवेश को जो रोके, वह किवाड़ है। नीर शब्द द्रविड़ से एवं तोय शब्द किरातों की देन है। पिल्लै शब्द तमिल से आया है, जिसका अर्थ तमिल में पुत्र होता है, पर अंगिका में कुत्ते का बच्चा।

अंगिका भाषा की यह विशेषता है कि इसके साहित्य में चोरी, भूखमरी आदि की चर्चाएँ नहीं हैं। सभी लोक कथाओं में सुख और सम्पन्नता की बातें कही गई हैं। इससे यह विदित होता है कि अंगिका के समाज में लोग सुखी थे और घरों में अनाज तथा सोने–चांदी से भरे हुए थे। यही कारण है कि अंग के राजा कर्ण सोने का दान प्रतिदिन दिया करते थे। न्याय की प्रधानता इन कथाओं में भरी पड़ी है। हत्यारों को मृत्युदंड अवश्य दिया जाता था। समाज में विजातीय विवाह का प्रचलन था, तभी तो ब्राह्मण कन्या शुभद्रांगी का विवाह वैश्य राजा बिंबिसार से हुआ था, जिनका पुत्र अशोक चक्रवर्ती सम्राट बना। लोककथाओं में जानवरों की सहायता का भी वर्णन है। जैसे अझोला बन की कथा में नाग लकड़ी को बांधने में मदद करता है।

लिपि : प्राचीन ग्रंथों में 64 लिपियों का वर्णन है, जिनमें आंगी लिपि का चौथा स्थान है। ब्रह्मलिपि का आधार आंगी लिपि ही है। आंगी लिपि की यह विशेषता है कि इसके अक्षरों को मानव अंग के आकार के अनुरूप लिया गया है; जैसे–अ को अंतड़ी (3) से, क को (ɕ) कान से, न को (न) नाक से, ल को पुरुष लिंग (द) से तथा ञ को नारी की योनि (ञ) से। बंगला, मैथिल, असमिया आदि भाषाओं की लिपि भी आंगी लिपि पर ही आधारित है।

अंगिका में शून्य को आत्मा कहा गया है। इसलिए अंगिका के प्रत्येक अंक में शून्य को स्थान दिया गया है। जैसे–1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10। अंकों की गिनती मानव अंग से करने की प्रथा आज भी अंगिका में चली आ रही है। हाथ की अंगुलियों एवं उनके पोरों से बच्चों को एक से दस तक की गिनती, जोड़ और घटाव सिखाया जाता है। मानव शरीर में जगह–जगह पर जोड़ है, जिनसे प्रेरणा लेकर (+) का चिह्न बनाया गया। जोड़ के क्षैतिज लकीर से घटाव (–) का चिह्न बनाया गया। सिरा से गुणा (ग) का चिह्न बना। मानव शरीर के गर्दन के ऊपरवाले भाग से एक भाग एवं नीचेवाले भाग सेदूसरे को लेकर भाग (ह्न) का चिह्न बनाया गया। ऊपरवाला भाग शक्ति एवं नीचे भाग शिव कहलाता है। इसीलिए किसी भिन्न के ऊपरवाले भाग को अंश और नीचे वाले भाग को हर कहते हैं। इस प्रकार विदित होता है कि अंगिका भाषा भारतवर्ष की मूल भाषाओं में से एक है। संभवत: यह संस्कृत से भी पुरानी भाषा है। प्राचीनकाल में इस भाषा में विपुल साहित्य लिखे गये, पर वे सारे साहित्य विदेशी आक्रमणों के कारण नष्ट कर दिये गये। कुछ साहित्य को कुटिलता से दूसरे साहित्य में मिला दिया गया, जैसा कि छल से विद्यापति को बंगला का साहित्यकार कहा जाता है, जबकि वे मूलरूप से मैथिली के कवि थे। जो भी हो आज अंगिका में पुन: श्रेष्ठ साहित्य की रचना हो रही है। इसके साहित्यकार है–सुमन सूरो, डॉ. डोमन साहू समीर, तेज नारायण कुशवाहा, परमानंद पांडेय, नरेश पांडेय चकोर, डॉ. रमेश मोहन शर्मा 'आत्मविश्वास', डॉ. अमरेन्द्र, आमोद कु. मिश्र आदि।

प्राचीन समय में अंगप्रदेश में साहित्य लिखकर चपटे खड़े जिसे थपुआ कहा जाता था, में छेद करके डोरी से बांध कर संजोया जाता था। इसे विश्व की पहली पुस्तक की संज्ञा दी गई है। ऐसी ही एक पुस्तक लंदन के म्यूजियम में आज भी देखी जा सकती है।

स्वतंत्रता संग्राम में भी अंग के लालों ने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। 1750 में जन्मे तिलकामांझी एक उबलता हुआ लावा के रूप में उभरे और अंग्रेजों के दाँत खट्टे कर दिये थे।। किसी कवि ने उनकी प्रशंसा करते हुए लिखा है–

शंभु धनुष पर तना हुआ अकर्ण काल सा तीर हुआ
तिलकामांझी जैसा तो दुनिया में विरले ही वीर हुआ।

इसके अलावे महेशी के सियाराम सिंह भागलपुर के दीपनारायण सिंह, शुभकरण चूड़ीवाला, बनारसी प्रसाद झुनझुनवाला आदि सपूतों ने अंग्रेजों के नाक में दम कर दिया था, जिससे चांद–सा दीखनेवाला अंग स्वतंत्रता संग्राम के समय भैरव बन गया था। नाथनगर के आनंद मोहन सहाय ने सुभाष चन्द्र बोस के आजाद हिन्द फौज के मिलिट्री सेक्रेट्री थे। आज भी अंग के अनेकों लाल देश–विदेश में अपनी प्रतिभा से अंग का परचम लहरा रहे हैं।

इस प्रकार वैदिक, त्रेता, द्वापर, मौर्य, गुप्त आदि कालों में भारतवर्ष की संस्कृत के निर्माण में अंग का अनूठा योगदान है। इसकी महिमा का गुणगान जितना भी किया जाय कम ही होगा।

संदर्भ–

1. वेद
2. प्राचीन चम्पा–डॉ. ज्योतिषचन्द शर्मा
3. हमारा प्यारा भागलपुर–विजय वर्धन
4. बौद्ध धर्मग्रंथ
5. जैन धर्मग्रंथ
6. विभिन्न पत्र–पत्रिका।

–––––

आलेख

क्या है भारत, क्या है भारतीयता

डॉ. निरुपमा श्रीवास्तव
प्रबन्ध सम्पादक
अवध–अर्चना, फैजाबाद
(अयोध्या, उ.प्र.)

वर्ष 2019 के दिसम्बर माह में प्रकाशित एक नवीन कृति प्रकाश में आई है। शीर्षक है–'क्या है भारत, क्या है भारतीयता'। कृति विगत 25 वर्षों से गतिमान त्रैमासिक पत्रिका 'अवध–अर्चना' के सम्पादक श्री विजय रंजन द्वारा विरचित है।

कृति–विरचने का उद्देश्य भारत के निवासियों को मनसा आत्मसाक्षात्कार कराने का एक वैचारिक मंच प्रदान कर भारत और भारतीयता के मूल स्वरूप पर पड़ी उस धूल को साफ करने का एक सफल प्रयत्न है, जो काल की गति के चलते विदेशी आक्रमणकारियों ने और विदेशी इतिहासकारों ने डाली थी। ऐसा उन्होंने इस दुराशय से किया था कि भारत के मूल निवासियों की संस्कृति, धर्म–दर्शन आदि का मान–मर्दन, गौरव–पददलन, चरित्र–भंजन और उनके मूल चरित्र भारतीयता को ही विखण्डित किया जा सके और भारत को सर्वतोभावेन दास बनाकर उनका हर प्रकार का शोषण कर स्वयं अकूत, अविरल, अबाधित सत्तासुख भोगा जा सके। त्रासद है कि उस तरह की भ्रान्तियों के प्रसार–प्रचार का कार्य अभी भी थमा नहीं है। एक ओर तो बहुत–से मतिभ्रमों के द्वारा असत्य तथ्यों पर आधारित अपने कुतर्कों की धूल से सत्य को दृष्टि–ओझल करने का कुचक्र स्वतंत्र भारत में भी चलाया जा रहा है, दूसरी ओर लांछित, मान–मर्दित हो रहा पक्ष किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति में पड़ा हुआ है। 'क्या है भारत क्या है भारतीयता' कृति ऐसे किंकर्तव्यविमूढ़ों के मार्गदर्शन के लिए भी रचित है।

अपने उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए कृतिकार ने कृति में सर्वप्रथम भारत नाम की व्याख्या, भारत के निवासियों को भारतीय कहे जाने के कारण की व्याख्या, भारतीयों की भारतीयता की व्याख्या, भारत देश का नाम भारत रखे जाने के कारणों की व्याख्या सविस्तार प्रस्तुत की है।

कृति में देवी भारती के गुणों और ज्ञानोन्मुखता को 'भारतीत्व' कहा गया है। कृति में अनेक स्थानों पर देवी भारती, जिन्हें ही अनेक वाङ्मयों में देवी सरस्वती भी कहा गया है, के गुणों की चर्चा की गई है। ये गुण हैं–तितिक्षा, दकारत्व, चिन्मयता, ऋतम्भरिकता, दैवीयता, कृतज्ञता, वाक्–शक्ति, शम, दम, ज्ञानशीलता, सत्त्वशीलता, ऋतशीलता, सात्त्विक रागात्मक रचनाधर्मिता, शान्तिप्रियता, अहिंसा, उदात्तता, उदारता, श्रद्धा, आस्था आदि–आदि। कृतिकार के अनुसार ये वे गुण हैं, जिन्हें मन–वचन–कर्म से धारण करनेवाले मानव ही देवी भारती की मनस्–सन्तति 'भारती' अर्थात् भारतीय कहलाए। इस संदर्भ में सबसे अच्छी बात यह है कि देवी भारती के गुण–वर्णन में कृतिकार ने स्थान–स्थान पर उन गुणों के अन्तर्निहित व्यावहारिक अर्थ कोष्ठक में दे दिए हैं, जिससे पाठक को अप्रचलित–से लगनेवाले उन शब्दों का निहितार्थ ठीक–ठीक समझने के लिए शब्दकोशों का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं है। उदाहरणार्थ– तितिक्षा (त्याग, सहिष्णुता, क्षमा), दकारत्व (दत्त दयध्वं दमयत अर्थात् दान दया दमन=इन्द्रिय–दमन=इन्द्रिय–संयम=जितन्द्रियता)

कृति में बताया गया है कि भरतत्व, भारतत्व एवं भारतीत्व से समेकित आचरण ही भारतीयता है, जिसमें समय–समय पर भारत में अवतरित हुए महानुभावों (यथा महादेव, श्रीराम, श्रीकृष्ण, जैन तीर्थंकर इत्यादि) द्वारा आचरित और निर्देशित आदर्श भी साररूप में सम्मिलित होते गए। जैसे महादेव का सर्वकल्याणत्व, श्रीराम का अनृत–विनाशकत्व, श्रीकृष्ण का लोकसंग्रह, जैन तीर्थकरों की अहिंसा, महात्मा गौतम बुद्ध की करुणा आदि। इन महानुभावों के सदाचरण–इंगित निर्देशनों से आप्लावित भारतीयता (भरतत्व, भारतत्व भारतीत्व) को कृतिकार ने भारतीयता–समग्र का नाम दिया है और कहा है कि आधुनिक भारत में यही भारतीयता–समग्र आज भारतीय होने की कसौटी है। कृतिकार के अनुसार इस कसौटी पर आज के भारत का बहुसंख्यक समाज खरा उतरता है। लेखक कहता है–''वास्तव में यही भरतत्व, भारतत्व, भारतीत्व, शिवत्व, रामत्व, कृष्णत्व ही भारतीयता का मूलाधार है, जो युग–युगों तक भारत का राष्ट्रीय सांस्कारिक, सांस्कृतिक, चारित्रिक सम्बल बना रहा और न्यूनाधिक रूप में आज भी बना हुआ है।''(पृ. 99)

'भारतीय किसे कहा जाए?' 'भारतीय के कर्तव्य क्या है?' इन्हें स्पष्ट करते हुए कृतिकार का विचार है कि 'भारती की कीर्ति' का प्रसार करनेवाला ही भारतीय है और 'भारतान्वय का वर्धन' हर भारतीय का कर्तव्य है। इस सन्दर्भ में कृतिकार का स्पष्ट कथन है कि भारतीत्व से जुड़ाव के अभाव में कोई कुछ भी बन जाए, पर भारतीय नहीं माना जा सकेगा। आप वेदों में श्रद्धा नहीं रखते, न रखें; ईश्वर में भी श्रद्धा/भक्ति नहीं है आपकी, न सही; पूजा/उपासना नहीं करना चाहते आप, न करें; हिन्दू–धर्म को गर्हित मानते हैं आप, आपकी इच्छा; लेकिन? हाँ, ले...कि...न, देवी भारती से जुड़ाव को, देवी भारती के भारतीत्व से जुड़ाव (देवी भारती के उपरि–इंगित गुणों से जुडाव या कि मूल सहयुजन) से विच्छिन्न या वियोजित होने पर 'भारतीय' नहीं रहेंगे आप।''(पृ. 147)

हम देखते हैं कि स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद से ही नई पीढ़ी को बचपन से ही यह बताया जाता है कि यहाँ के राजा दुष्यन्त के पुत्र भरत के नाम पर भारत का नाम 'भारत' पड़ा, किन्तु बड़ा होने पर उसके मन में प्रश्न कुलबुलाने लगते हैं कि महाराज दुष्यन्त भारत के ही राजा कहे जाते हैं, तब उनके पुत्र भरत के नाम पर भारत–नामकरण क्यों माना जाए? यदि दुष्यन्त–पुत्र भरत के पूर्व भारत का नाम भारत नहीं था, तो फिर उस समय भारत का नाम क्या था? भारत का अस्तित्व कब से है? भारत का प्रथम शासक कौन था? आदि–आदि। इन जैसे सभी प्रश्नों का उत्तर कृतिकार ने वाङ्मयिक प्रमाणों के आधार पर तार्किक एवम् रोचक ढंग से कृति के 'भारत– नामकरण के मूलभूत आधार' एवं 'भारत नामकरण के अन्य आधार' नामक क्रमशः प्रथम व द्वितीय

अध्यायों में दिया है।

इसके अतिरिक्त द्वितीय अध्याय में कृतिकार ने इस गुत्थी को भी सप्रमाण सुलझाया है कि भारत में अनेक प्रथम राजा कहे जाने के पीछे आधार क्या है? द्वितीय अध्याय में ही भारत में प्रचलित वर्ण–व्यवस्था के उद्‌भव सम्बन्धी एक अन्य तलस्पर्शी तथ्य का भी उद्‌घाटन हुआ है। इस विवरण को हृदयंगम करने के बाद इस सम्बन्ध में जनमानस में व्याप्त अनेक भ्रान्तियों का न केवल निवारण होता है, वरन् इन भ्रान्तियों से उत्पन्न सामाजिक द्वेष का भी शमन है; परन्तु और अच्छा होता यदि प्रभासम्पन्न कृतिकार 'ब्राह्मणो मुखमासीत्...' उक्ति की भी प्रभासम्मत, ऋतसम्मत यथार्थपरक व्याख्या प्रस्तुत करता, जिसके अभाव के कारण दीर्घकाल से समाज में कथित, उच्च वर्णों द्वारा कथित निम्न वर्ण के ऊपर जो अनाचार, शोषण, उत्पीड़न आदि–आदि थोपे गए, आज भी थोपे जा रहे हैं और जो सामाजिक वैषम्य के वृक्षों को पोषण प्रदान कर रहे हैं; ऐसी विषमताओं के निवारण करने के लिए भी एक सबल आधार समाज को प्राप्त हो जाता।

कृति का भारतवर्ष के अन्य नाम शीर्षक अध्याय भी अनेकानेक अप्रचलित जानकारियों से भरा है; जैसे–भारत कहलाने के पूर्व भारत के कौन–कौन से नाम किन–किन कारणों से प्रदान किए गए? उत्कर्षवान् भारत विदेशियों की दृष्टि में कैसा था? वे उसे किन नामों का सम्बोधन देते थे? कृति में जो नाम बताए गए हैं, उनमें सबसे रोचक और मर्मस्पर्शी नाम हैं प्राचीन चीनियों द्वारा भारत को प्रदत्त नाम– 1.'थि–एन्–चु–को' जिसका भारतीय भाषा में अर्थ है–देवों का देश। 2.'इन्तु को' जिसका अर्थ है–'अपने उत्कृष्ट ज्ञान–विज्ञान, दार्शनिक– आध्यात्मिक ज्ञान, मानवतापूर्ण दैवीय संस्कृति और भौतिक ऐश्वर्य से प्रदीप्त पूर्णिमा के पूर्ण चाँद सदृश देश'। इससे यह भी ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत में आधुनिक भारत के आस–पास देशों की भूमि भी शामिल थी। ये तथ्य भारत को 'अपना देश' माननेवाले भारत–निवासियों के मन–मस्तिष्क को आत्मा की गहराइयों तक स्पर्श कर गौरव से दीप्त करनेवाले और उनके शीश को गर्वोन्नत कर देनेवाले हैं। इसी अध्याय में भारत के 'हिन्दुस्थान' नाम की रोचक उत्पत्ति का भी उल्लेख किया गया है, जिसकी व्याख्या तत्कालीन भारत के भौगोलिक विस्तार को प्रत्यक्ष कर देती है। इतना ही नहीं, इस अध्याय में 'हिन्द' शब्द और 'इण्डिया' नामवाची शब्दों की तर्कपूर्ण व्याख्या से उन लोगों को दर्पण दिखाने का प्रयास किया गया है, जो इन शब्दों से नामकृत किए जाने में गौरव अनुभव करते हैं।

'भारतवर्ष और आर्यभूमि' अध्याय में लोकप्रचलित और निरन्तर दुहराव के कारण जबरन जनमानस में बैठाई गई 'आर्य' सम्बन्धी उन सभी भ्रामक तथ्यों की यथार्थपरक, शोधपरक प्रमाणों पर आधारित व्याख्या की गई है, जिन्होंने समाज में न केवल विषमता के बीज बोए, वरन् भारतीयों का मान–मर्दन भी किया। इसी अध्याय में अनेकानेक प्रमाणों द्वारा यह भी भलीभाँति पुष्ट किया गया कि देवी भारती के गुणों से सम्पन्न भारती–सन्तति कहे जानेवाले आर्यों ने ही प्रागैतिहासिक काल में विश्व के अन्यान्य स्थलों पर जाकर भिन्न–भिन्न देश बसाए और मानवों को पशु–आचरण (भोजन, निद्रा और यौनाचरण) से ऊपर उठकर भारती–कीर्ति के श्रेष्ठ, उदात्त, ज्ञानोन्मुखी आदि आचरणों को अपनाने की प्रेरणा दी। लेखक लिखता है–''भारतीय संस्कृति, भारतीय सभ्यता के प्रसार के समय आव्रजित भारतीयों द्वारा कोई शत्रुतापूर्ण या घृणापरक कार्य निष्पन्न नहीं किया गया, न ही वहाँ कोई उपनिवेश स्थापित किया गया और न ही वहाँ औपनिवेशिक लूट/शोषण/उत्पीड़न ही कारित किया गया, अपितु किया गया तो केवल यह कि वहाँ उन देशों में उन्नत समाजों के निर्माण एवं विकास में आव्रजक भारतीयों द्वारा सात्त्विक रचनाधर्मी सहयोग ही अवदानित किया गया।'' (पृ.69)

इसी अध्याय के अन्त में लेखक ने पूर्व दिशा में स्थित भारतीय भू–भाग में बर्बर जनजातियों के (विशेषकर इन स्थलों के वर्तमान निवासियों के) मन को ठेस पहुँचानेवाली हो सकती है, इस बात का ध्यान लेखक को रखना चाहिए था, जो उसने नहीं रखा।

'भारतवर्ष का प्राचीन क्षेत्र–विस्तार' नामक अध्याय में निष्कर्षित निष्कर्ष अपनी संस्कृति के निरन्तर किए जाते मान–मर्दन से छीजते और विभाजित भारत को देख–देखकर क्षुब्ध होते भारतीयों के मन को अति प्रभावी औषधि सदृश प्रभाव प्रदान करनेवाले हैं। कृतिकार ने बताया है कि प्राचीन भारत 160 नदियों, 7 कुल पर्वतों और 9 द्वीप–द्वीपान्तरों तथा उनके मध्य के समुद्रों तक विस्तृत था। लेखक ने लिखा है कि– ''प्रकटतः वैश्विक वाङ्मय को ही साक्ष्य मानें तो भारतीयों द्वारा यूरोप, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, अमेरिका महाद्वीप के अधिकांश देश भारतीयों द्वारा ही बसाए जाने सम्बन्धी कथाएँ वैश्विक इतिहास में विद्यमान हैं। इन कथाओं से भी 4000–5000 ई.पू. की अवधि तक के उन्नत सभ्यता, संस्कृति, कला–कौशल के देश/राष्ट्र के रूप में भारत की श्रेष्ठ अवस्थिति स्वतः सिद्ध हो जाती है।''(पृ.78)

अध्याय 'भारत एक प्राचीन राष्ट्र' में 'राष्ट्र' और देश के विन्यास परास के भेद को स्पष्ट करके निष्कर्ष प्रदान किया गया है कि ''प्राचीनकाल से भारत एक देश भी है और एक राष्ट्र भी।'' कृति के अध्याय 'भारत का विशिष्ट राष्ट्रीय चरित्र' में पुनः भरतत्व, भारतीय, भारतीयता और भारतीयता–समग्र की और अधिक विस्तृत व्याख्या की गई है। यह विवरण इन प्रचलित किन्तु निहितार्थ अनजान शब्दों के निहितार्थों को प्रकट करके भारतीयों को आत्मसाक्षात्कार हेतु अधिक स्पष्टता प्रदान करता है।

इसी अध्याय के उपशीर्षक 'विशिष्ट जीवन–दर्शन' में भारत एवं भारत–इतर देशों की जीवन–दृष्टि और भौतिकवादी दर्शन का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसी अध्याय में धर्म के भारतीय दृष्टिवाले उदात्त वास्तविक स्वरूप का भी दर्शन कराया गया है। विश्व के अन्य रिलीजन या मजहब (वास्तव में पंथ) से भारतीय दृष्टिवाले धर्म की तुलना करते हुए भारत के बहुसंख्यक समाज के आचरण और अन्य समाजों के
आचरण के मूल कारणों की भी गहन, गम्भीर विवेचना प्रस्तुत की गई है। उदाहरणार्थ–

''भारतीय धर्म चाहे वह 'आर्य (वैदिक)' धर्म हो या सनातन धर्म (वैष्णव धर्म) या शैव या जैन धर्म या बौद्ध धर्म या सिक्ख धर्म आदि–इन सभी के अनुयायियों की धार्मिक आस्था सघन होने पर 'भक्ति' में बदल

जाती है और सघन धर्मालु यहाँ 'भक्त' बन जाते हैं। भक्ति सघन होने पर भक्त अपने आराध्य से सायुज्य की कामना करने लगता है, फलतः अंततः उसका मन निर्विकार/त्रिगुणातीत हो जाता है। दूसरी ओर, अन्यान्य देश–समाज में धार्मिक आस्था सघन होने पर उनमें 'कट्टरतावाद' पनप जाता है। अन्य धर्म का धर्मालु कट्टरतावाद के फलित से अपने कथित धर्म/आस्था को अन्य मानव समाजों में येन– केन–प्रकारेण (हिंसा से भी) फैलाने/थोपने पर कटिबद्ध (प्रत्युत् उसी पर आमादा) हो जाता है, यहाँ तक कि इसके लिए वह घोर तमस्शील होने से भी गुरेज नहीं करता! 'निर्विकार सात्त्विक धर्मालुता बनाम तमस्शीलता' का यह अन्तर एक बहुत बड़ा अन्तर कारित करता है 'भारतीय धर्मालुता' और 'भारतीयेतर धर्मालुता में। भारतीय धर्मानुयायी/भक्त में धीरे–धीरे सात्त्विकता, (अपना–पराया के भाव) से विमुख होता जाता है। भारतीय धर्मालु भक्त चरम अवस्था में भक्ति में इतना डूब जाता है कि उसे अपने आराध्य के सिवा कुछ और दीखता ही नहीं, यह सिवा अपने इष्ट/आराध्य से सायुज्य के अतिरिक्त कुछ और देखना/सोचना चाहता भी नहीं। यत्र–तत्र–सर्वत्र अपने आराध्य को देखनेवाली दृष्टि के फलस्वरूप कामनाशील होने पर भी भारतीय भक्त 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः' की ही कामना करता है।''(पृ. 115–116)

''यह सत्त्वशील सम्पृक्ति अन्य देश/समाज में प्रायः न के बराबर है, भले ही भारत–इतर देश/समाज भी देवी सरस्वती की पूजा विविध रूपों में करते हों। सारस्वत सात्त्विकता, सारस्वत तितिक्षा एवं सारस्वत चिन्मयता के अभाव के फलस्वरूप अन्य देश/समाज जहाँ नस्लीय दंभ और नस्लीय खून–खराबा आदि से आग्रस्त हैं, यहाँ तक कि उनका धर्म भी सर्वकल्याण की भावना से वंचित और कहीं न कहीं 'स्व' पर संकेन्द्रित है; वहीं, आम भारतीय ऐसी तामस वृत्तियों से मनसा–वाचा–कर्मणा सामान्यतया दूर ही रहता है–यह दूरी देवी भारती से सहयुजन का ही फलित है।''(पृ. 102)

''और उपरि–इंगित भारतीत्व से भारतीय जन–मन की कथ अनकथ सम्पृक्ति भारतीय जन के बहुलांशतया सत्त्वशील, ऋतशील, प्रज्ञाशील, तितिक्षाशील, विश्रान्तिप्रिय प्रकृति से भी स्वतः प्रमाणित है। देवी भारती से जुड़ाव का फलित ही मानना होगा, इसे भी कि सात्त्विकता, पावनता, चिन्मयता, तितिक्षा, उदात्तता, नैतिकता आदि के प्रति असामान्य लगाव के फलस्वरूप भारतीय जन की 'राष्ट्रीय चिति' सामान्यतया सत्त्वशील, उदात्त और उदार हो गई। इसी सत्त्वशीलता का फलित है कि 'सर्वे भवन्तु सुखिनः...' सदृश सर्वकल्याणक दैवीयता, समन्वयवादिता आदि सद्गुणों से कथ–अनकथ रूप में सदा आसक्त रहता है आम भारतीय।

और तमस्हीनता एवं वैदिक सारस्वत निर्देशन आदि के अनुपालनवाली निःस्पृह अलोलुप सात्त्विक भारतीयता का अतिरिक्त प्रमाण है, यह भी कि भारतीत्व के फलित से कारित विशिष्ट जीवन–दर्शन आदि के फलस्वरूप 11वीं सदी तक जब भारतीय भौतिक रूप से अति सशक्त थे, तब भी विश्व के किसी देश को किसी सामान्य भारतीय या भारतीय राजा या भारतीय व्यापारी द्वारा अपना उपनिवेश नहीं बनाया गया, और न ही कभी ऐसी कोई कामना ही की गई। ''वस्तुतः भारतीयों की सहिष्णुता, उदात्तता, उदारता और 'जियो और जीने दो' की सारस्वत सर्वकल्याणक भावना का ही प्रमाण है, यह भी कि भारतीयों ने कभी दूसरे धर्म/पूजा–पद्धति के अनुयायियों को लोभ या उत्कोच देकर या बलात् उनके धर्म/पूजा–पद्धति से विमुख नहीं किया, न ही उन्हें अपने धर्म में दीक्षित करने के लिए कोई कला–छला कभी अपनाई वरन अपनी दैनन्दिनि कठिनाइयों को बढ़ानेवाली विदेशी विपरीत मान्यताओं/कार्यों को भी सहिष्णुतापूर्वक सहन कर ऐसी मान्यताओं के अनुनायियों/ कार्यों के कर्ताओं को यहाँ अपने ढंग से जीवन–यापन का अवसर दिया।''(पृ. 103–104)

निज के वर्ग–विशेष और समुदाय विशेष तक के लिए सीमित हैं। देश–काल से परे, निजी जातीय धर्म से परे, सर्वजन एवं सर्वप्राणी तक विस्तारित और कल्याणकामी नहीं हैं, अन्य धर्मावलम्बी अपने पंथ/मत/विचार से असहमत की 'हत्या' तक का निर्देश कारित करनेवाले भारतीयेतर धर्म/ सम्प्रदाय/पथ के पंथी स्व से सम्बन्धित के कल्याण की कामना से आगे नहीं बढ़ पाते। वे वस्तुतः 'सर्व' के कल्याण की कामना कर ही नहीं सकते, क्योंकि 'सर्व' का कोई अस्तित्व कैथोलिक, प्रोटेस्टेंट, यहूदी या इस्लाम आदि धर्म/सम्प्रदाय में स्वीकार्य नहीं है। 'सर्व' के कल्याण की कामना और सर्वहितरतः का आदर्श वही चरितार्थ कर सकता है, जो 'सर्व' में 'परम आत्मन्' का (ब्रह्म/परब्रह्म का) वास देख सकता हो और 'सर्व' को 'परम–आत्मन्' का (ब्रह्म/परब्रह्म का) अंश मानता हो। ऐसे सद्भाव भारत–इतर जगत् में प्रायः अलभ्य हैं।''(पृ. 109–110)

कृति में दिए गए भारतीय धर्म और गैरभारतीय धर्मों से सम्बन्धित उपर्युक्त तथ्य तत्सम्बन्धी विभ्रमों का नीर–क्षीर विवेकजनित पूर्ण स्पष्ट चित्र साक्षात् कर देते हैं। यह चित्र देश–विदेश के उन मनस्वियों का वस्तुस्थिति से यथार्थपरक साक्षात्कार करा देता है, जो विश्व में शान्ति, सौहार्द और सर्वत्र मानवीयता तथा मानवता का प्रसार देखना चाहते हैं। इस प्रकार मानवीय तथा मानवतावादी दृष्टि से भारतीय धर्म और गैरभारतीय धर्मों के श्रेष्ठत्व–अश्रेष्ठत्व के निर्णय के अप्रकट को प्रकट–सा करते हुए भी निर्णय का 'बहुत–कुछ' पाठकों की मति पर छोड़ दिया गया है।

कृति के अन्तिम अध्याय भारत का वास्तविक स्वरूप को दिग्दर्शित कराने में भारतीय आध्यात्मिक दृष्टि का उपयोग
कर भारत राष्ट्र का जो मूर्तिमान चित्र लेखक द्वारा खींचा गया है, वह अप्रतिम है। लेखक लिखता है–विशेष प्रकृति का तत्त्वाभिनिवेशित अन्वेषण करें तो स्पष्ट होगा कि विशिष्ट ऋता और विशिष्ट शील वाले हमारे वर्तमान भारत का नदी, पर्वत, वन–सम्पदा, खनिज–सम्पदा, पशु–पक्षी आदि जैविक सम्पदा और विशाल जनसंख्या के सहयुजन वाला भू–क्षेत्र, जो हिमालय से आसमुद्र, कामरूप से कच्छ, कन्याकुमारी से कश्मीर तक विस्तृत है, वह प्राकृतिक सम्पदायुक्त समस्त भू–क्षेत्र भारत का 'अन्नमय कोश' है, जिसे 'मृण्मय भारत' कहा जा सकता है। यहाँ का भारतत्व (भा+रतत्व अर्थात् ज्ञान रूपी प्रकाश प्रत्यक्ष करनेवाली सतत निरतता वाली प्रवृत्ति) भारत का 'प्राणमय कोश' है। इसी प्रकार यहाँ का 'भारतीत्व' (भारतीत्व अर्थात् 'भास्वद् सारस्वत चिन्मयता') भारत का 'मनोमय कोश' है और वेदोपनिषद्, दर्शन–योग–अध्यात्म से आच्छादित शिवत्व+ .रामत्व+कृष्णत्व वाली विशिष्ट ऋता वस्तुतः भारत का 'विज्ञानमय कोश' है।''(पृ. 131)

''प्राचीनकाल से अद्यतन विद्यमान 'चिन्मय भारत' की बीजरूपीय विद्यमानता और तद्गत शाश्वतता के सम्बल से कह सकते हैं कि 'मृण्मय भारत' के साथ ही भा+रतत्व सह भारती+त्व से सम्पृक्त चिन्मय भारत और भारत की शाश्वत चिन्मयता से सम्पृक्त 'शाश्वत भारत' भी सदा अस्तित्ववान रहा है यहाँ जिसमें राष्ट्रत्व के प्रायः सभी वांछनीय तत्त्व समेकित
रहे हैं।''(पृ. 132)

अनेकानेक विभ्रमों और फर्जी मनस्वियों, राजनेताओं आदि के न्यस्त गर्हित स्वार्थों के चलते आज निरपेक्षता की आड़ में विघटनकारी तत्त्वों को बढ़ावा देने, प्रकारान्तर से देश–राष्ट्र–बहुसंख्यक समाज को खण्ड–खण्ड करने के उद्देश्य से एक वैचारिक आँधी–सी चल रही है। इस आँधी को रोकने और कुत्सित मानसिकता भरी कुचालों को खण्ड–खण्ड करने के लिए और सत्य वस्तुस्थिति की रक्षा करने के लिए लेखक ने इस कृति में अपनी पूरी शक्ति, अपनी पूरी प्रज्ञा–क्षमता लगा दी है। साथ ही ऐसी दुःस्थिति में क्या करना उचित होगा, इस कर्तव्य–दिशा का भी संकेत कर दिया है–

''परिस्पष्टतः भारत को यदि पुनः गुलाम नहीं बनने देना है, यदि उसे श्रेष्ठ उत्कर्षवान् राष्ट्र बनाना है तो हमें उपरि– इंगित भारतीयता–समग्र को पुनः वाचाल करना होगा। भारत के कण–कण में, प्रत्येक भारतीय के मन–वचन–कर्म में। प्रत्युत् भारतीय के लिए तो अपरिहार्य है देवी भारती के गुणों से अविच्छिन्न जुड़ाव। शब्दान्तर से कह सकते हैं, वरन् कहना ही होगा कि भरतत्व+भारतत्व+ भारतीत्व+शिवत्व+रामत्व+कृष्णत्व +जिनत्व+बुद्धत्व से सम्यक् जुड़ाव के अभाव में अर्थात् भारतीयता–समग्र के आजमाए जुड़ाव के अभाव में भारत उत्कर्षवान् राष्ट्र नहीं बन सकेगा।''(पृ. 147)

इसी अध्याय में लेखक ने 'भारत को बहुसंस्कृतियों का खिचड़ी जैसे स्वरूप वाला देश स्थापित करने की पुरजोर कोशिशों को मूलतः निरस्त करते हुए अपना स्पष्ट मत स्थापित किया है कि अवश्य भारत में अनेक संस्कृति वाले सहवासी हैं, किन्तु वे पकी खिचड़ी के समान समरस, समवाय के रूप में सहनिवास करते हैं, कच्ची खिचड़ी के अलग–अलग दानों वाले, मिश्रण के रूप में नहीं। अपनी बात को पुष्ट करते हुए कृतिकार लिखता है–

''तितिक्षाशील समन्वयवादिता से संपोषित विशिष्ट समन्वयवादी सामासिकता चूँकि विश्व के अन्य देशों में लभ्य नहीं है, अतएव वहाँ सैकड़ों वर्षों से साथ–साथ रहने के बावजूद, प्रायः एक उद्भव या एक सदृश उद्भव होने के बावजूद सामी जगत् में यहूदी, ईसाई, इस्लामी आज भी क्रमशः यहूदी, ईसाई, इस्लामी ही हैं और/या इसी तरह जर्मन संस्कृति–समाज आज भी जर्मन है, फ्रेंच फ्रेंच है, स्लाव स्लाव है और अंग्रेज–समाज आज भी अंग्रेज। यदि आपस में मिल जाएँ वे, तो भी वे सब अनपकी खिचड़ी के दानों की तरह अलग–अलग दिखते हैं।(पृ. 144)

कृति में भारतीयता और भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्वों की भूरि–भूरि प्रशंसा की गई है, किन्तु क्या वे प्रसंगित अच्छाइयाँ आज भी बहुसंख्यक भारतीयों में विद्यमान है? भारत के समाज में आज जो वस्तुस्थिति दिखती है, वह लेखक के दावों के विपरीत प्रतीत होती है। इस आपत्ति को भाँपते हुए लेखक ने तत्सम्बन्धी तथ्यों की विवेचना यथावसर प्रस्तुत करते हुए यह मत प्रस्तुत किया है कि आज भी वे सारी विशेषताएँ भारत में विद्यमान हैं, भले ही उस विद्यमानता का स्वरूप बीजरूपीय हो। इस संदर्भ में लेखक का कथन है–

''और, भारत के संदर्भ में लोक–सत्य यह है कि भारत की शाश्वतता, भारत की चिन्मयता, 'भारतत्त्व', 'भारतीत्व', 'भारतीयत्व'– समग्र और भारत का 'राष्ट्रत्व' आदि ऐसे स्वयंतथ्य हैं, जो विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा किए जाने वाले अकूत विनाश के बावजूद भारतीय जनमानस में गहरे पैठे हैं। वे पूर्णतया समाप्त होनेवाले भी नहीं है, भले ही ऊपरी तौर पर भारतीयता उसकी नसों में बहनेवाले लहू में भारतीयता के उपरि–वर्णित संस्कार (सुषुप्तावस्था में ही सही) विद्यमान रहते हैं, मानों उनके गुणसूत्रों के डी.एन.ए. में प्रविष्ट हो गए हों वे।(पृ. 145)

कृति का प्रारूप–स्वरूप ऐसा है, जिससे यह भ्रम हो सकता है कि प्राचीनकाल के बहाने भारत के मात्र बहुसंख्यकों के पक्ष की ही बात इस कृति में की गई है अन्य लोगों की नहीं। किन्तु ऐसा करना कृति–लेखक की यथार्थपरक विवशता प्रतीत होती है। सच तो यह है कि जब प्राचीनकाल में अन्य लोगों का अस्तित्व ही नहीं था, तब उनकी बात कैसे की जाए? दूसरे, जब भारतीय बहुसंख्यक समाज से इतर समाज की जीवन– दृष्टि, जीवन–दर्शन, सृष्टि और सम्पूर्ण मानवता के हित में नहीं है, तब उसका महिमामण्डनकारी असत्य चित्रण कैसे और किसलिए किया जाए?

यद्यपि कृति के सभी तथ्य अनेक भ्रान्तियों का निवारण कर देश में सामाजिक समरसता, एकता, अखण्डता को बढ़ावा देनेवाले हैं। वे राष्ट्रीय गौरव, राष्ट्रीय सौहार्द और विश्व शान्ति को सशक्त आधार प्रदान करानेवाले भी हैं। भारत और इसके निवासियों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में भी कृति–समग्र पूर्ण सक्षम है। इसी कारण यह एक अमूल्य थाती के रूप में स्थापित होने योग्य है और सर्वथा प्रशंसनीय है।

तथापि कृति उन लोगों को नापसन्द होगी, जो भारत को टुकड़े–टुकड़े देखना चाहते हैं। कृति उन लोगों की भी आँख की किरकिरी सिद्ध होगी, जो अपनी पीत दृष्टि से भारत के अतीत, वर्तमान और भविष्य को देखते हैं। कृति उन लोगों की भी घृणा और उपेक्षा का पात्र बनेगी, जिन्हें देश के बहुसंख्यक
समाज के गुणगान में दुर्गन्धित असहनीय 'बू' अनुभव होती है। लोकतंत्र में जिस बहुसंख्यक को सम्मान और वरीयता का अधिकार मिलना चाहिए, भारत के उस बहुसंख्यक के लोकतंत्र –प्रदत्त अधिकार का निरन्तर गला घोंटने के लिए जो लोग सत्ता के लालच में सफल प्रयासरत रहते हैं, कृति उन्हें भी अरुचिपूर्ण और असहनीय लगेगी।

किन्तु, कृति उन्हें अत्यन्त सुखद, प्रेरणास्पद, दिशावाहक और तपती दुपहरी में दग्ध लू के थपेड़ों से बचा कर शीतल छाया प्रदान करनेवाले विराट वृक्ष–सी अनुभव होगी, जो स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी अपनी संस्कृति, धर्म, दर्शन, ज्ञान, अध्यात्म, धर्मग्रन्थ, पूजा–पद्धति, पूजास्थल, गौ आदि पूज्य जीव, आदर्श महान् व्यक्तित्व, जीवन–शैली आदि–इत्यादि के सम्बन्ध में कुत्सित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए बलात् थोपी गई अनेक अयथार्थपरक प्रवचनाओं से त्रस्त हैं।

आलेख

अंग्रेजी मानसिकता से मुक्त हों

आचार्य बलवन्त
ग्राम जूड़ी पोस्ट–तेंदू, राबर्टसगंज
सोनभद्र–231216 (उ.प्र.)
मो. 07337810240

मनुष्य अपने विचारों की अभिव्यक्ति किसी–न–किसी भाषा के माध्यम से ही करता है। भाषा के अभाव में किसी सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय प्रगति की कल्पना नहीं की जा सकती। साहित्य, संगीत, कला, विज्ञान और इतिहास का आधार भाषा ही है। भाषा केवल विचारों के आदान–प्रदान का माध्यम ही नहीं, वह नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की संवाहिका भी होती है। प्रत्येक भाषा की अपनी प्रकृति होती है। उसके शब्द परिवेश की आशाओं–आकांक्षाओं एवं आवश्यकताओं से संपृक्त होते हैं। भाषा की प्रकृति को पहचान कर ही उसके प्रवाह को अक्षुण्ण रखा जा सकता है।

लार्ड मैकाले भाषा की प्रकृति एवं व्यक्तित्व निर्माण में उसकी भूमिका को भलीभाँति समझता था। इस तथ्य की पुष्टि 2 फरवरी, सन् 1835 ई. को ब्रिटिश संसद में दिए गए उसके व्याख्यान से हो जाती है, जिसमें उसने कहा था–''मैंने भारत के ओर–छोर का भ्रमण किया है और मैंने एक भी आदमी नहीं पाया, जो चोर हो। इस देश में मैंने ऐसी समृद्धि, ऐसे सक्षम व्यक्ति तथा ऐसी प्रतिभा देखी है कि मैं नहीं समझता कि इस देश को विजित कर लेंगे, जबतक कि हम इसके सांस्कृतिक एवं नैतिक मेरुदण्ड को तोड़ न दें। इसलिए मैं यह प्रस्तावित करता हूँ कि हम भारत की प्राचीन शिक्षा–पद्धति एवं संस्कृति को बदल दें। क्योंकि यदि भारतवासी यह सोचने लगे कि जो विदेशी और अंग्रेजी में है, वह उनके आचार–विचार से अच्छा एवं बेहतर है, तो वे अपना आत्मसम्मान एवं संस्कृति खो देंगे तथा वे एक पराधीन कौम बन जाएँगे, जो हमारी चाहत है।''

'मैकाले की शिक्षानीति' भारतीयों को उनकी भाषा से पृथक् कर वैचारिक रूप से उन्हें पंगु बनाने की थी, उनके आत्मविश्वास को कमजोर करना था, जिसे हम नहीं समझ सके।

देश के गणतंत्र बनने के बाद भाषा की अहमियत हमें समझाने की कोशिश सोवियत रूस ने भी की थी। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को दृढ़ करने के उद्देश्य से एक भारतीय राजनयिक को सोवियत रूस में भारत का राजदूत बनाकर भेजा गया, जहाँ उसने अपना कार्यभार ग्रहण–पत्र अंग्रेजी में सौंपा। भारतीय भाषा में न होने के कारण वहाँ की सरकार ने उस पत्र को स्वीकार करने से मना कर दिया और याद दिलाया कि अंग्रेजी
गुलाम भारत की भाषा थी, अंग्रेजी में पत्र प्रस्तुत करना उसी गुलामी का प्रतीक है। फिर किसी गुलाम देश के साथ अंतर्राष्ट्रीय संबंध स्थापित करने का कोई औचित्य ही नहीं बनता। भाषा के सवाल पर सोवियत रूस की यह फटकार भाषा के प्रति हमारी उदासीनता पर करारा प्रहार है।

भाषा के प्रति उसके निवासियों के गहरे लगाव को फ्रांस की एक घटना के माध्यम से भी समझा जा सकता है– प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान फ्रांस का कुछ भूभाग जर्मनी के अधीन हो गया था। जर्मनी की महारानी उस क्षेत्र के एक स्कूल का दौरा करने गई। उन्होंने विद्यार्थियों से जर्मनी का राष्ट्रगान सुनाने को कहा। केवल एक बच्ची ही राष्ट्रगान सुना सकी। यह देखकर महारानी प्रसन्न हो गई और उस बच्ची से कुछ माँगने के लिए बोली। बच्ची के मुँह से अचानक ही ये शब्द निकल पड़े–'हमारी शिक्षा का माध्यम हमारी भाषा फ्रेंच बना दीजिए।' इसे कहते हैं अपनी भाषा के प्रति अनुराग।

भाषा की अस्मिता का प्रश्न आज भी अनुत्तरित है। अंग्रेजी शिक्षानीति के चलते न केवल हिंदी, अपितु अन्य सभी भारतीय भाषाएँ हाशिए पर आ गई हैं। इन दिनों भारतीय जीवन में व्याप्त पाश्चात्य प्रभाव को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, जो अंग्रेजी की देन है। खान–पान, रहन–सहन, पठन–पाठन एवं विचार–विमर्श ही नहीं, आज संबोधन एवं अभिवादन की भाषा भी अंग्रेजी हो गई है। बाजारवादी शक्तियाँ विज्ञापन के माध्यम से हमारे संस्कार को बिगाड़ने पर तुली हैं। किसी समाज के संस्कार को बिगाड़ने के तमाम कारणों में व्यक्ति की बोलचाल व व्यवहार की भाषा को बिगाड़ देना भी मुख्य है। आजकल के
विद्यार्थियों के मन में अपनी भाषा के प्रति जो अनुराग होना चाहिए, उसका अभाव है। प्रायः देखने में यही आता है कि अध्यापक और अभिभावक भी हिंदी भाषा पर ध्यान कम ही देते हैं। आज के युवा कैरियर बिल्डिंग के नाम पर अपनी भाषा से विमुख होकर संस्कृति और सभ्यता से भी दूर होते जा रहे हैं।

हिंदी के प्रति नवयुवकों के मन में जो उदासीनता है, उसका एक कारण हिंदी को रोजगार की भाषा न बनाया जाना भी है। हिंदी को रोजगार से जोड़े बिना वर्तमान युवा पीढ़ी के मन में हिंदी के प्रति वह भाव नहीं जाग्रत किया जा सकता, जिसकी हम आशा करते हैं।

भाषा के प्रश्न को गंभीरता से लेते हुए उच्चतम न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश एम.एन.बैंकटचलैया और न्यायमूर्ति एस. मोहन की खण्डपीठ ने यह निर्णय दिया था कि प्रारंभिक स्तर पर बच्चों को शिक्षा केवल मातृभाषा में ही दी जानी चाहिए। इसलिए कि मातृभाषा में दी गई शिक्षा ही संस्कृति
एवं परंपराओं पर गर्व करना सिखाती है। संविधान के अनुच्छेद 350 (ए) के अनुसार प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा के लिए

पर्याप्त सुविधाएँ जुटाने का उत्तरदायित्व राज्यों तथा स्थानीय निकायों का है। कर्नाटक सरकार ने उच्चतम न्यायालय के आदेश को स्वीकार कर एक साहसिक व सराहनीय कार्य किया, हालाँकि इसके क्रियान्वयन का अंग्रेजी मानसिकता के अभिभावकों ने जोरदार विरोध किया था, पर सरकार की दृढ़ इच्छा शक्ति के सामने उनकी चल न सकी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त यह महसूस किया गया था कि एक संविधान, एक राष्ट्रध्वज एवं एक राष्ट्रगान की ही भाँति देश की एक राष्ट्रभाषा का होना भी आवश्यक है, क्योंकि राष्ट्रभाषा के अभाव में राष्ट्र गूँगा होता है। हिंदी को राष्ट्रभाषा का स्थान दिलाने के लिए जिन राष्ट्रीय नेताओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, उनमें महात्मा गाँधी प्रमुख हैं। हिंदी को संपूर्ण भारत की व्यावहारिक भाषा बनाने के अभियान में गाँधीजी का योगदान अद्वितीय है। राष्ट्रीय एकता के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रभाषा के प्रति अपने निश्चय को उन्होंने इन शब्दों में प्रकट किया है–''मैं हमेशा यह मानता रहा हूँ कि हम किसी भी हालत में प्रांतीय भाषाओं को नुकसान पहुँचाना या मिटाना नहीं चाहते। हमारा मतलब सिर्फ यह है कि विभिन्न प्रान्तों से पारस्परिक संबंधों के लिए हम हिंदी सीखें। ऐसा करने से हिंदी के प्रति हमारा कोई पक्षपात प्रकट नहीं होता। हिंदी को हम राष्ट्रभाषा मानते हैं। वह राष्ट्रीय होने लायक है। वही भाषा राष्ट्रीय बन सकती है, जिसे अधिक संख्या में लोग जानते–बोलते हों और जो सीखने में सुगम हो। सन् 1910 में गाँधीजी ने कहा था–''हिंदुस्तान को अगर सचमुच राष्ट्र बनाना है, तो राष्ट्रभाषा हिंदी ही हो सकती है।''

सन् 1916 में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में गाँधीजी ने हिंदी में भाषण देते हुए स्पष्ट घोषणा कर दी थी–''हिंदी का प्रश्न मेरे लिए स्वराज्य के प्रश्न से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।'' एक भाषा एक लिपि विषयक इसी अधिवेशन में सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पारित हुआ था कि हिंदी भाषा और देवनागरी का प्रचार–प्रसार देश हित एवं राष्ट्रीय एकता की स्थापना हेतु होना चाहिए। इस प्रस्ताव का समर्थन तमिल भाषा के मूर्धन्य साहित्यकार रामास्वामी अय्यर ने किया था। राष्ट्रीय एकता एवं सांस्कृतिक समरसता को बनाए रखने में राष्ट्रभाषा की महत्ता को गाँधीजी ने अच्छी तरह से निरूपित किया है–''हिंदी को राष्ट्रभाषा घोषित करने में एक दिन भी खोना देश को भारी सांस्कृतिक नुकसान पहुँचाना है। जिस प्रकार हमारी आजादी को जबरदस्ती छीननेवाले अंग्रेजों की सियासी हुकूमत को हमने सफलतापूर्वक इस देश से निकाल दिया, उसी तरह हमारी संस्कृति को दबानेवाली अंग्रेजी भाषा को भी यहाँ से निकाल बाहर करना चाहिए। देवनागरी के समान सरल, जल्दी सीखने योग्य और तैयार लिपि दूसरी कोई है ही नहीं। उर्दू और रोमन
में भी वैसी सम्पूर्णता और ध्वन्यात्मकता नहीं है, जैसी देवनागरी लिपि में।''

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन राष्ट्रभाषा को राष्ट्रीयता का स्रोत मानते थे। उनका कहना था–''कोई विदेशी भाषा हमारे देश की रक्षा नहीं कर सकती। राष्ट्र के विकास के लिए स्वभाषा अनिवार्य है।'' उनके स्वभाषा का आशय हिंदी से ही था। टंडनजी न केवल हिंदी, अपितु अन्य सभी भारतीय भाषाओं के व्यावहारिक बनाए जाने के प्रबल पक्षधर थे। भाषा के साथ–साथ उसके सांस्कृतिक विकास पर भी उनका बल था। क्योंकि भाषा की संस्कृति ही उसे अपनी परंपराओं पर गर्व करना सिखाती है। भाषा का उसकी संस्कृति से गहरा संबंध है, संस्कृति शरीर है, तो भाषा उसका प्राणतत्त्व।''

इस बात को पुनः दोहराना चाहूँगा कि राष्ट्रीय एकता के लिए राष्ट्रभाषा की आवश्यकता का अनुभव स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही किया जाने लगा था। कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी के प्रयासों से ही सितंबर 1949 में संविधान सभा में राजभाषा के विषय पर विचार–विमर्श हुआ। 12, 13 एवं 14 सितंबर, 1949 में संपन्न इस तीन दिवसीय सम्मेलन में उपस्थित 71 सदस्यों ने हिंदी को राजभाषा बनाए जाने के प्रस्ताव को सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया एवं शासकीय प्रयोग हेतु भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप को अपनाने की बात तय हो गई। हिंदी को राजभाषा बनाने का प्रस्ताव श्री गोपाल स्वामी आयंगर ने रखा और उसका समर्थन श्री शंकर राव ने किया, जो अहिंदी भाषी थे।

26 जनवरी, 1950 को भारत का संविधान लागू हुआ। संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार संविधान लागू होने के दिन से 15 वर्षों तक हिंदी के साथ अंग्रेजी को भी संघ की सह राजभाषा के रूप में जारी रखने और उसके बाद हिंदी को पूरी तरह से राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की योजना थी, पर ऐसा हो
नहीं सका। नेताओं की व्यक्तिगत स्वार्थपरता के चलते भाषा– प्रेमियों की हिंदी को राष्ट्रभाषा के आसन पर बिठाने की चाहत भेदभाव की भेंट चढ़ गई। मतों के गुणा गणित के आधार पर अपनी महत्वाकांक्षाओं को साधने के लिए देश के तथाकथित कर्णधारों ने जातिवाद, धर्मवाद, संप्रदायवाद एवं क्षेत्रवाद की भाँति भाषा को भी वाद–विवाद का विषय बना दिया, जिसमें उलझकर हिंदी को उसका गौरव दिलाने का चिर–प्रतीक्षित स्वप्न, स्वप्न बनकर ही रह गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के उनहत्तर वर्ष बाद भी देश की एक राष्ट्रभाषा का न होना देश की अस्मिता एवं उसके आत्मगौरव के साथ खिलवाड़ नहीं तो और क्या है?

वह भाषा जो 'वन्दे मातरम्' एवं 'भारतमाता की जय' के उद्घोष की उत्प्रेरिका रही हो, जिस भाषा ने भारतवासियों की सुप्त चेतना को झंकृत कर उनकी विलक्षणता का उन्हें बोध कराया हो, वह भाषा जो स्वतंत्रता सेनानियों के अधरों का क्रांति–गीत बनकर व्यवस्था के आमूलचूल परिवर्तन का आहवान करती रही हो। वह भाषा जो देश के विभिन्न भाषा–भाषियों के बीच समन्वयात्मक समझ विकसित कर उन्हें आपस में जोड़कर रखने में समर्थ हो, जो भाषा

देशवासियों के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति का मूलाधार हो, जो भारत में ही नहीं, बल्कि विश्व के अनेक देशों में लिखी–पढ़ी, समझी एवं सराही जा रही हो, जो निकट भविष्य में विश्व की संपर्क भाषा बनने की ओर अग्रसर हो, उस हिंदी का अपनी ही भूमि पर अंग्रेजी के अनुवाद की भाषा बनकर निर्वासन की जिंदगी जीना दुखद ही नहीं, चिंताजनक भी है। राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद का उद्‌गार दर्शनीय है– ''राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र का बोध हो ही नहीं सकता। जहाँ राष्ट्र है, वहाँ राष्ट्रभाषा का होना लाजमी है। अगर संपूर्ण भारत को एक राष्ट्र बनाना है, तो उसे एक भाषा का आधार लेना पड़ेगा।''

अंग्रेजों ने भारत को कई स्तरों पर कमजोर करने की साजिश रची थी। हिंदी और उर्दू के सवाल को हवा देकर सांप्रदायिक वातावरण को बिगाड़ने की उनकी कूटनीतिक चाल सफल भी हुई। सन् 1948–49 में भारत की 14 भाषाओं में 'हिंदुस्तानी' का प्रवेश उनकी कुटिल मंशा का ही प्रतिफल था। वह हिन्दुस्तानी समझौते की भाषा बनकर रह गई, जो बोलचाल के लिए उपयुक्त तो थी, पर उसमें साहित्यिक सामर्थ्य का अभाव था।

भारतीय संविधान लागू होने पर हिंदी को राजभाषा के रूप में मात्र घोषित कर 15 वर्षों की अवधि तक अंग्रेजी को राजभाषा का मान देते रहना और आशा रखना कि एक–न–एक दिन हिंदी राजभाषा का गौरव प्राप्त कर लेगी, कितना हास्यास्पद है। केंद्रीय गृहमंत्रालय द्वारा बनाए गए राजभाषा अधिनियम की धारा 3/1 के अंतर्गत शासकीय प्रयोजनों में हिंदी के साथ–साथ अंग्रेजी को सहभाषा के रूप में आगे भी जारी रखने का निर्णय लिया गया, फिर राजभाषा अधिनियम की धारा 3/2 के अन्तर्गत यह व्यवस्था दे दी गई कि जबतक भारत के एक भी राज्य की सरकार हिंदी को अपने राज्य की राजभाषा के रूप में स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होगी, तब तक हिंदी संघ की राजभाषा के रूप में क्रियान्वित नहीं हो सकती। राजभाषा अधिनियम के
इस सशर्त समझौते ने हिंदी को संघ की सशक्त राजभाषा बनने के सारे रास्ते ही अवरुद्ध कर दिए। इसलिए कि दक्षिण
भारत का एक राज्य तमिलनाडु हिंदी का प्रबल विरोधी है ही और पूर्वोत्तर स्थित नागालैंड अंग्रेजी को ही अपनी राजभाषा के रूप में अपना चुका है।

मैकाले द्वारा अपने होम सेक्रेटरी को लिखे गये पत्र की कुछ पंक्तियों को यहाँ उद्धृत करना प्रासंगिक होगा, जिसमें उसने कहा था–''मैं नहीं कह सकता कि भारत राजनीतिक रूप से आपके अधीन रह पायेगा, लेकिन इतना मैं अवश्य करके जा रहा हूँ कि यह देश राजनीतिक स्वतंत्रता पा लेने के बाद भी अंग्रेजी मानसिकता, अंग्रेजी सभ्यता और अंग्रेजी भाषा के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकेगा।'' उसका कथन अक्षरशः सत्य सिद्ध हुआ। आजादी के इतने वर्षों बाद भी हम अंग्रेजी मानसिकता से मुक्त नहीं हो सके।

दुर्भाग्य की बात है कि हिंदी को राजभाषा बनाए जाने के प्रश्न पर देश की अन्य प्रान्तीय भाषाओं को इसके समानान्तर खड़ा करने की धृष्टता बार–बार की जाती रही है। बार–बार यह झूठी दलील दी जाती रही है कि हिंदी के राजभाषा बनने से देश की अन्य भाषाओं की अस्मिता खतरे में पड़ जाएगी, जबकि अस्मिता के संकट का खतरा देश की अन्य प्रांतीय भाषाओं को हिंदी से नहीं, बल्कि हिंदी और अन्य प्रांतीय भाषाओं व उनकी बोलियों को अंग्रेजी से है।
हिंदी राष्ट्रीय स्वाभिमान की भाषा है। समय की माँग है कि हम अंग्रेजी की मानसिकता का परित्याग कर भारतीयता के आदर्शों को अपनाएँ तथा हिंदी को भारतीय संस्कृति के विकास का संसाधन बनाएँ। भारत को उसका खोया हुआ गौरव तभी प्राप्त हो सकेगा, जब यहाँ का हर पढ़ा–लिखा व्यक्ति अपने कार्य, चिंतन–मनन व आपसी संवाद अपने ही देश की भाषा हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं में करे। अपना हस्ताक्षर तो वह अपनी भाषा में ही करे एवं हिंदी को अपनी पहचान की भाषा बनाएँ। हिंदी के प्रति हीन भावना से मुक्ति का मार्ग हिंदी से निकलेगा। हिंदी हमारे राष्ट्र के सर्वांगीण विकास के लिए वरदान सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। हिंदी के माहात्म्य से संबंधित कविता की कुछ पंक्तियाँ यहाँ प्रस्तुत हैं–

जन सामान्य की भाषा हिन्दी
जन–मन की जिज्ञासा हिन्दी
जन जीवन की अभिलाषा हिन्दी
सेवा भाव सिखाती हिन्दी
जन–जीवन में रची बसी
सबके मन को भाती हिन्दी
सबका दिल बहलाती हिन्दी
सबके दिल की बातें करती
स्नेह, शील, सद्‌भाव, समन्वय
संयम की परिभाषा हिन्दी, जय हिन्दी!

संदर्भ–

1. आजकल (मासिक पत्रिका), सितंबर 2015
2. राजभाषा भारती (त्रैमासिक पत्रिका) 2015–2016
3. आधारशिला (मासिक पत्रिका) अगस्त 2015 एवं सितंबर–2016
4. राजभाषा विमर्श, लेखक डॉ. पन्ना प्रसाद

लघु शोध

संपूर्ण नारीत्व की तलाश नारी के लिए मृगतृष्णा

सुभाषचन्द्र झा
बिहार प्रशासनिक सेवा
सरकार के विशेष सचिव
क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकार, भागलपुर प्रमंडल
भागलपुर–812002
मो0–9431208428

क्या सचमुच नारी परमात्मा की छाया है, प्रतिबिम्ब है, विराट प्रकृति है? सचमुच स्त्री में सृष्टि समाहित है? सबसे ज्यादा सृष्टि के नजदीक तो स्त्री ही है। स्त्री का प्रेम जितना बड़ा और गहरा है, उतना पुरुष का हो नहीं सकता। स्त्री–पुरुष दोनों अपने–अपने ध्रुवों पर है। एक उत्तर ध्रुव में है, एक दक्षिण ध्रुव में जबतक दोनों एक धरातल पर नहीं आएँगे, जबतक दोनों के बीच अंडरस्टैंडिंग नहीं होगी, तबतक कोई सरगम नहीं उत्पन्न हो सकेगी। स्त्री और पुरुष दोनों एक युग्म है। स्त्री अपने आप में ही सम्पूर्ण है, स्त्री की दुनिया अपने सच को पाने की दुनिया है। जीवन के आंतरिक सच का अनुभव है। एक विराट की अनुभूति है।

स्त्री में कुछ जादू जरूर भरा है, जिससे क्षण–भर में बिजली की तरह स्पर्श करती निकल जाती है और वह स्पर्श जैसे ठह कर रह जाता है सारी उम्र। स्त्री में एक तरह की विचित्र उन्मादकता और अंतरंगता होती है। पुरूष को अनुमान व कल्पना के भरोसे छोड़कर वह जाने कहाँ पलायन कर जाती है। पुरुष यदि चाहे कि इस सर्वोच्च आनंद का उपभोग मैं पूर्णरूप से करूँगा, तो वह ऐसा कभी नहीं कर सकता। किसी
एक भाव को हृदयंगम कर या किसी एक प्रसंग की मधुरता का आस्वादन करके ही उसे संतोष मानना पड़ेगा। संपूर्ण स्त्री का पूरा–पूरा स्वाद वह कभी ले ही नहीं सकेगा। साथ ही उसकी यह आनंदानुभूति स्थायी नहीं हो सकती, क्योंकि स्त्री का सहज स्वभाव बिजली की तरह लुकने छिपने का है। स्त्री में तारतम्य और जवां माधुर्य का ऐसा स्रोत बहता है कि उसमें पुरुष तल्लीन होकर रह जाता है। सौंदर्य का जादू अपने जाल में बेतरह समेट लेता है। स्त्री एक मायापुरी की सृष्टि है, स्त्री का रहस्य धीर–धीरे ही मालूम होता है और अंत में मालूम होता है– किसी सुख–स्वप्न की तरह।

संसार के सारे प्रसिद्ध महाकाव्यों, ऐतिहासिक कथाओं, पुराणों के मूल में प्रेरक प्रेरणा–सूत्र या कारण के रूप में कोई–न–कोई स्त्री ही विद्यमान है। सुन्दर, सुलक्षणा सच्चरित्र स्त्री एक मानव की सर्वश्रेष्ठ कामना होती है। स्त्री के रूप सौन्दर्य आकर्षण में बंधा कोई पुरुष उसे प्राप्त करने, अपनाने और सहवास के लिए कुछ भी कर सकता है।

प्रत्यक्ष रूप से स्त्री साहित्य, संगीत, कला, चित्रकला व मूर्तिकला की सजीव साकार स्वरूप होती है। स्त्री का लावण्य
नजाकत, सौन्दर्य, माधुर्य तथा आकर्षण मनुष्य को सौ–सौ बार जीने व मरने को उद्यत करता है। स्त्री इस असार संसार का एकमात्र सार तथा विधाता की सर्वोत्तम कृति है। स्त्री के नयनों में मदिरा, अमृत तथा विष तीनों ही भरे पूरे होते हैं, जिसका जैसा भाग्य हो, वैसा फल मिलता है। स्त्री की आँखों की तुलना हिरण, मछली, खंजन, बादाम, कमल आदि से की जाती है तथा गहराई को समन्दर कहा जाता है। स्त्री अपनी आँखों की मौन भाषा में हजारों की भीड़ में भी चुपके–चोरी से बहुत कुछ कह जाती है। स्त्री का पूरा चेहरा चंद्रमा जैसा, गर्दन हंस एवं शंख जैसी, वक्षों में मंदिर के स्वर्णकलश, पके अनार सोने के नोकदार कटोरे, छोटी पहाड़ी, टीले, हिरणी के नये नुकीले सींगों और सीने में छिपे कबूतरों के रूप में तुलना की जाती है। स्त्री अपने रूप–गुण–सौन्दर्य–यौवन कलात्मकता, आचरण, व्यवहार से सारी दुनिया को सहज ही अपने नियंत्रण में कर सकती है।

स्त्री के यौनांगों में उसका सारा शरीर ही सुख, आनंद और आकर्षण की खान तथा अमृतरस भरा कलश है। उसके कपोल, अपरोष्ठ, उरोज, नाभि, योनिप्रदेश, कमर, जघनप्रदेश, कंधे, कलाई, केशराशि तथा नितम्बप्रदेश कामरसिकों के सर्वाधिक आकर्षण के क्षेत्र हैं। स्त्री का स्वर संगीत की झंकारयुक्त मीठा व धीमा, कपोलों तथा होठों का रसपूर्ण होना, लोमविहिन तन, अंगभीरु तथा उन्मुक्त स्वभाव, भावना प्रधान होना, उरोजों तथा नितम्बों की पृथुलता खासियत लिए होती है। हावभाव, नाज़ोअदा, रूपसौंदर्य का लावण्य, संकेतपूर्ण कामचेष्टायें, लुकाछिपी, लजाने, इतराने का स्वभाव विशेष रूप से आकर्षित करता है।

नीतिशास्त्र के अनुसार–रूपं नास्ति वयं नास्ति प्रार्थयिता नरः। एकांते च गृहं नास्ति तेव नारी पतिव्रता। स्त्री अगर रूपवती न हो, युवती न हो, कोई चाहनेवाला प्रेमी पुरुष न हो, एकांत में मौके की जगह न हो, तो ही नारी पतिव्रता रह सकती है। स्पष्ट है कि स्त्री प्रेम के लिए उपयुक्त निरापद वातावरण तथा निर्भयता और निश्चिता का होना जरूरी है।

स्त्री के लिए शुद्ध और सात्विक प्रेम में कुछ भी अप्रिय, गलत या असंगत नहीं होता। हाव–भाव, अनुभाव सहित कुल 27 प्रकार के मधुर रागात्मक और कामोत्तेजक संचारी भाव के दर्शन स्त्री में रति–समागम के अवसर पर कामातुरा अवस्था में स्वतः परिलक्षित होने लगते हैं। एक ब्रह्मचारी गुह्यज्ञान अभिषेक को नहीं प्राप्त कर सकता। स्त्री अपना वास्तविक सत्य खुलकर किसी को नहीं देती। सिर्फ इशारे मात्र ही कर सकती है और अपनी इच्छा एवं स्थिति को संकेतों में उघाड़कर रख सकती है। नारी घनी छाया से भरी है, लेकिन पुरुष ही उसके नीचे विश्राम न करें, तो छाया कुछ भी न कर पाएगी। छाया स्वयं चलकर पथिक के पास नहीं पहुँचेगी। सरोवर में जल भरा है, लेकिन प्यासे की प्यास बुझाने को सरोवर स्वयं चलकर नहीं पहुँच सकता, प्यासे को ही चलकर सरोवर के पास पहुँचना होता है। प्रेम और सौन्दर्य का घनिष्ठ संबंध है, प्रेम के बिना सौन्दर्य की
परिणति संभव नहीं। प्रेम बाँधता है, पर यह बंधन सुखद होता है, जिसमें बँधने के लिए हृदय व्याकुल होते हैं। प्रेम अपनी जगह है और दुनिया के सारे गोरखधंधे अपनी जगह। अपनी– अपनी प्रकृति का सहज स्वाभाविक स्वाद तो किसी प्रकार किसी भी नर–मादा से छूट ही नहीं सकता है। सच है कि समय पलटने से परिस्थिति, देश, काल, पात्र के अनुरूप नर–मादा की स्वाभाविक प्रकृति–प्रवृत्ति भी पलट जाती है और ऐसे में कौन अपनी प्राकृतिक चाल नहीं त्याग देता।

स्त्री का प्रेम गहरे सागर जैसा और पुरुष का प्रेम छोटे चम्मच

जैसा। चम्मच से सागर नहीं नापा जा सकता। इतने छोटे–से चम्मच से इतना बड़ा सागर नाप नहीं सकते। कोई नाप नहीं सका। नापने की जरूरत नहीं है। सागर में डुबकी लेना, सागर की लहरों पर तैरना–यही आवश्यक है। नौका सागर में छोड़ना है। सागर की पुकार अज्ञात की पुकार है। जितना समझ सकता है कोई, उतना ही ज्यादा शेष है समझने को। समझा तो नहीं जा सकता है, मगर जीया जा सकता है। जीने का रास्ता है, समझने का नहीं और प्रेम का जानने से क्या संबंध? प्रेम जानता नहीं, प्रेम निर्दोष है। प्रेम ज्ञान से मुक्त है। ज्ञान का कचरा प्रेम नहीं होता। जो ज्ञान का कचरा ढोते हैं, उनके जीवन में कभी प्रेम के फूल नहीं खिलते, बुद्धि तो ऊपर–ऊपर है, क्योंकि कचरा है। हृदय बहुत गहरे में है। पुरुष मन है और स्त्री हृदय। तय करना मन की क्षमता नहीं। मन कभी तय नहीं कर पाता। मन तो सोचता ही रहता है, संशय में डावाँडोल रहता है। मन सोचने–विचारने में ही समय गँवा देता है। अगर मन की आँख से कोई प्रेम करने चले, तो प्रेम होगा ही नहीं। निर्णय सदा हृदय से आते हैं। मन तो ऊँची है, काटता है। हृदय सुई–धागा है, जोड़ता है। मन है संदेह, जो खंड–खंड करता है। हृदय है परिपूर्ण छलांग, सोच–विचार का समर्पण। मन तो सदा भिखारी है, हृदय है दाता। पुरुष है उपद्रव, स्त्री है परम शांति–संतोष प्रगाढ़ आनंद।

स्त्री कैसे और किन–किन रूपों में हमारे जीवन, प्रेम और सहज संतुलन के लिए अनिवार्य है। यह जीवन पर फैली हुई मसृण चांदनी और स्वप्नों की प्रतिमा है। कोमल मृदुल मोहिनी आकर्षक ही सदैव बनी रहती है। नारी प्रकृतिमयी और प्रकृति नारीमयी है। उसमें प्रेम की पवित्रता है, पावनता है, जो गंगाजल में होती है। त्रिवेणी की लहरों में जो संगीत है, वही संगीत नारी की वाणी में है। स्वतंत्रता और समानता का कोई संबंध सौदर्य से नहीं। सच ही कहा गया है कि सौंदर्य नहीं, तो नारी नहीं! त्याग, स्वाभिमान, सौंदर्य प्रणय से परिपूरित है। जीवन में वैयक्तिक, सामाजिक, पारिवारिक संदर्भों से जुड़ी होती है स्त्री। स्त्री के बिना पुरुष अधूरा, अल्प, अपूर्ण, अतृप्त–सा कुछ प्राप्त करने की तलाश में भटकता रहता है। आधुनिक समय में संस्कार, मूल्य, संबंध, चरित्र सब अपना अर्थ खो चुके हैं। आदमी अक्सर पशु के क्षेत्र में प्रवेश करता नजर आता है, जहाँ प्रेम की नहीं, वासना की सत्ता होती है।

स्त्री अपने आपमें ही पूर्ण–परिपूर्ण–सम्पूर्ण और तृप्त होती है। उसका होना ही स्वयं में पर्याप्त है। प्रणय की खुशबू में नहाई स्त्री आकाश–पाताल के बीच की दूरी पलभर में लांघ सकती है।

स्त्री–पुरुष दोनों की भाषा शब्दावली, एप्रोच व्याकरण बड़ी अलग है। क्रिया–प्रतिक्रिया, तन–मन की बुनावट, सोच–विचार, व्यवहार–आचरण बड़ी विपरीत है, एक–दूसरे से एकदम भिन्न! दोनों चुम्बक के दो विपरीत ध्रुवों की तरह होते हैं। प्रकृति ने दोनों की भूमिकाएँ अलग–अलग निर्धारित की हैं–एक–दूजे के सहयोगी और परस्पर परिपूरक रूप में। इसलिए अंतिम परिणति में ही महारास या महोत्सव संभव है।

वेदों में नारी को तमोगुण प्रधान अर्थात् अविद्या (अज्ञान) माना गया है तथा पुरुष (भोक्ता) को रजोगुण प्रधान विषयवासना प्रधान। रजोगुण के संपर्क में काम (इच्छा) उत्पन्न होता है। गीता में कहा है–'स्त्री दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्ण संकरः।' अधर्म के प्रमुख होने पर स्त्रियाँ दूषित हो जाती हैं और स्त्रीत्व के पतन से अवांछित संतान उत्पन्न होती है। स्पष्ट है कि कुल में अच्छी संतान स्त्रियों के सतीत्व और उनकी निष्ठा पर ही निर्भर करती है। जैसे बालक सरलता से कुमार्गी बन जाते हैं, वैसे ही स्त्रियाँ भी पतनोन्मुखी होती हैं। अतः बालक एवं स्त्री दोनों को पारिवारिक बुजुर्गों का संरक्षण आवश्यक हो जाता है। गृहस्थ जीवन अर्थात् विवाहित जीवन में ही स्त्री सर्वाधिक सुरक्षित होती है, ऐसा शास्त्रों का वचन है। चाणक्य ने कहा है–सामान्यतया स्त्रियाँ अधिक बुद्धिमान नहीं होतीं, अतः वे विश्वसनीय नहीं हैं। इसलिए उन्हें विविध कुल–परंपराओं तथा कुल–धर्मों के पालन में व्यस्त रखना चाहिए। धर्म–कर्म एवं सरकारों में अधिक रहना चाहिए। स्त्री की स्वतंत्रता से व्यभिचार को प्रश्रय मिलेगा। पुरुष का अर्थ भोक्ता माना गया है और स्त्री को भोग्य सामग्री। विशेषकर आज के कलियुग में जहाँ कलह तथा दिखावे का बोलबाला है, अधर्म अमर्यादा, अनैतिकता, स्वार्थ और घोर भौतिकता का आडम्बर है। ऐसे में जारकर्म (परगमन) की वृद्धि अधिक होने से वंश की शुद्धता पर ही प्रश्नचिह्न लग जाता है। उपनिषद् का मानना है कि स्त्रियाँ तन–मन और भावना से कमजोर होती हैं, पर–आश्रित होती हैं, फलतः कमजोर क्षणों में उनके भटक जाने, कुमार्गी हो जाने और पतनोन्मुखी हो जाने की प्रबल संभावनाएँ बनी रहती हैं। कहा गया है–'वीर भोग्याः वसुंधराः' वीर्यवान ही वसुंधरा का भोग कर सकता है अर्थात् सामर्थ्यवान, शक्तिसम्पन्न और पौरुषवान के लिए ही भोग्य सामग्री होती है। जिस पुरुष ने मन पर शासन करना जान लिया, वही समर्थ होता है।

स्त्री और पुरुष के बीच यौन–संबधों में भी एकमात्र प्रेम की ही सबसे अहम् भूमिका होती है। प्रेम के अभाव में यौन–संबंधों में परिपूर्णता माधुर्य–मिठास, परितृप्ति सम्पूर्ण संतुष्टि असंभव घटना है। प्रेम के प्रबल और चरम उफान पर ही यौन–संबध सफल होते हैं। यही वजह है कि दो विपरीतलिंगी के मध्य यौन–संबंध प्रेम की कमी के कारण अधिकांश मामलों में संतुष्टिदायक साबित नहीं होते। अक्सर अतृप्ति, बेचैनी, असंतुष्टि, अप्रसन्नता, खिन्नता, मायूसी, अपूर्णता, अधूरापन, खालीपन, लिज़लिजापन, रिक्तता, अस्थिरता, असहजता, धोखा खाने का बोध, ठगे जाने की अनुभूति बीच रास्ते में ही पुरुष द्वारा छोड़ दिये जाने का कटु अनुभव ही यौन–संबंधों में अधिकांशतः हर स्त्री के हिस्से में आता है। यथेष्ठता की कमी और सम्पूर्णता के अभाव के संग–संग प्रेम की अंतरंगता व समर्पणशीलता का स्पष्ट अभाव इसके मूल में होता है। भावनात्मक उष्मा के साथ आत्मीय लगाव के बिना कोई भी यौन–संबंध चरमोत्कर्ष तक नहीं पहुँच पाता। पुरुष यहाँ कमियों का प्रतीक होता है और स्त्री खूबियों का खजाना होती है।

स्त्री हो या पुरुष हर किसी का सत्य और असलियत तो अंत में प्रकट हो ही जाता है, जब जोर का तूफान स्वतः आता है! सबके अपने–अपने तूफान होते हैं, अपनी–अपनी प्रचंड आँधी होती है, स्वाभाविक भूकंप होता है, जो अपने समय पर स्वतः प्रकट हो जाता है। चाहे लाख कोई काबू में रखने का प्रयास करें।

सच तो सच है कि यौन–संबंधों में दैहिक सुख, मानसिक प्रसन्नता और आत्मिक तृप्ति का विषय स्त्री के लिए पुरुष की तुलना में अधिक आवश्यक है; क्योंकि स्त्री बराबर की साझीदार और सहयात्री होती है, शह–मात के इस शतरंज़ी खेल में। यहाँ रतिक्रिया में स्त्री पुरूष–वर्चस्व के अधीन नहीं, बल्कि सह–अस्तित्व का समान घटक होती है। इस कार्य में स्त्री अपनी भावनाओं, मर्यादाओं, अपनी शोभा और सौन्दर्य के साथ सदैव सहयोगी रूप में उपस्थित होती है और ऐसा सिर्फ ज़ायज, नैतिक और धर्मसंगत संबंध से ही संभव है। एक स्त्री के लिए यौन–शुचिता की अनिवार्यता कहाँ तक नैतिक है। जिन्दगी यौनिक पवित्रता और अपवित्रता से बड़ी होती है। परस्पर सहमति या बलात् के यौन–संबंधों के बाद भी वह समाप्त नहीं होती, चलती ही रहती है। यह सही है कि स्त्री–पुरुष संबंध शुचिता और शुद्धता में उन्हें बाँधने अनादिकाल से चले आ रहे हैं। लेकिन इस संबंध में स्त्रियों की इच्छाओं की सीमा–रेखा खींचने के प्रयास भी कम

नहीं हुए हैं। परकीया प्रवेश एक दुर्गम, किन्तु साध्य सच है। सत्य के कई आयाम हैं, उसके और अंधेरे–उजाले के बीच का। आज बाजार में शहरे–ज़ाना में बा– सफ़ा कौन है? बा–दफ़ा कौन है? लम्बी पारी खेलकर भी इसे समझा नहीं जा सकता!

भारतीय समाज में नारी की सामाजिक और वैयक्तिक परिस्थिति को उसके शरीर से जोड़कर देखे जाने की मानसिकता अनादि काल से चली आ रही है। वैदिक युग से आधुनिक युग तक स्त्री को उसकी जैविक बनावट के दायरे तक ही सीमित करके देखा गया। नैतिकता, शुद्धता और शुचिता की अपेक्षा सदैव उनसे रखी जाती रही है। उसे सिर्फ एक शरीर समझे जाने का आग्रह वर्तमान युग में भी समाप्त नहीं हुआ है। स्त्री के शरीर की सुरक्षा एवं पवित्रता का भय संपूर्ण समाज को आक्रांत किये रहता है। पुरुष की अपेक्षा स्त्री अपनी देह में ज्यादा कैद है। वह अपने शरीर से ऊपर उठना या उसे भूलना भी चाहे, तो न प्रकृति उसे ऐसा करने देगी, न समाज। उसका सारा सामाजिक मूल्यांकन सबसे पहले उसके शरीर का मूल्यांकन है। गुण तो बाद मे आते हैं। वह एक ऐसी 'दृश्य वस्तु' है, जिसे अपनी सार्थकता पुरुष की निगाह से सुन्दर और उपयोगी लगने में ही मानी है।

नारी की परतंत्रता के प्रमुख कारणों में एक है यौन–शुचिता का सामाजिक दबाव। सामाजिक एवं आर्थिक भागीदारी के अवसर शारीरिक पवित्रता के नष्ट हो जाने के भय से कई बार उससे छीन लिये जाते हैं। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में यौन–शुचिता को नारी अस्मिता का समानार्थी शब्द बना दिया गया है। नारी को पवित्र होना ही चाहिए, यदि किसी कारण वह शुचिता के इस आग्रह को पूरा नहीं कर पाई, तो घोषित रूप से चरित्रहीन कही जाएगी। नारी के लिए अपनी शारीरिक इच्छाओं को व्यक्त करना भी सर्वथा वर्जित माना गया और शारीरिक संबंधों में भी स्त्री की इच्छा या अनिच्छा का प्रश्न कभी महत्त्वपूर्ण नहीं रहा; क्योंकि वह हमेशा एक 'पैसिव पार्टनर'
मानी जाती रही है। यौन–संबंधों में भी नारी के प्राकृतिक सहयोग को उसका उत्तदायित्व नहीं माना जाता है, इसलिए समागम की सफलता या विफलता के लिए पुरुष मात्र को ही जिम्मेदार ठहराया जाता है।

परंपरागत नैतिक मूल्य स्थापित मापदण्डों के इतर यौन–संबंधों को वर्जित मानते हैं। आज की उन्मुक्त जागृत नारी न केवल शारीरिक आवश्यकताओं का खुलासा करती है, बल्कि शारीरिक संबंधों में समानता की भी मांग करती है। वह चाहती है कि पुरुष उसकी संतुष्टि–असंतुष्टि को भी उतना ही महत्त्व दे, जितना स्वयं की संतुष्टि को। सिर्फ अपने चाहने से दूसरे को पा नहीं लिया जाता। पाने के लिए दोनों को एक–दूसरे को चाहना होता है। अपनी जरूरतों का खुलासा करने में अब स्वतंत्र स्त्री को कोई झिझक, हिचक, संकोच, शर्म, भय, टैबू नहीं। प्रेम में शरीर की अनिवार्यता और सहज स्वाभाविक आवश्यकताओं का इजहार तथा देहधर्म को पूरा करने के लिए सभी नैतिक वर्जनाओं को लांघ जाना आज के बदलते दौर में आधुनिक स्त्रियों के लिए कोई मुश्किल काम नहीं रहा। आवश्यकता है पवित्र नहीं, चरित्र बनाने की। वह अपनी इच्छाओं को पूरा करना चाहती है, खुलकर जीना चाहती है। फिर भी क्षणिक आवेश में आकर ऐसा कोई निर्णय नहीं लेती, जो कि उसका भविष्य खराब कर दे।

आधुनिक युग की नारी अपने नारीत्व को तलाश रही है, समाज द्वारा प्रदत्त परंपरागत भूमिकाओं से परे एक पहचान खोज रही है, जो है उसके नारीत्व की पहचान। जो घर–परिवार में अपने लिए भी एक अलग कोना तलाशती है। अपना हक माँग रही है। इसमें अनर्गल कुछ नहीं है। जो कुछ है बहुत सधा हुआ है, अनूभूत है, बहुत गौरतलब है। बंधन और उन्मुक्तता दोनों के साथ आज आधुनिक स्त्री खड़ी हुई है।

स्त्री–पुरुष के संबंधों के सवाल तो अनादिकाल से चले आ रहे हैं और अधिकांश साहित्य उसी पर केन्द्रित है सारी दुनिया का। घर का अर्थतंत्र भी स्त्री चलाती ही रही है अनादिकाल से, लेकिन अब बाहर का भी। आवेग और हुलास से छलकते हुए इस जीवन का मूलभाव है निडरता और निश्चितता। आवेग भावनाओं को हमेशा जीवन की सतह पर झलकाता हुआ और हलचल मचाता हुआ दिखाई देता है। जीवन की सीधी सरल सपाट गति भी लगातार एक घटनापूर्ण हलचल से भरी हुई दिखती है। मिट्टी और पानी आप उठ बोलते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि दोनों के बीच कोई दरार या फांक नहीं। केन्द्र और परिधि के बीच अंतर तो होता ही है। सत्य किसी की जेब में पड़ा पैसा नहीं है। कई आयाम है उसके और अंधेरे तथा उजाले के बीच का। जो विपुलता–बोझ और भार–मुक्ति के आनंद से भी पैदा होता है। हमाम में सभी नंगे हैं या एक ही थैली के चट्टे–बट्टे हैं। किसी भी संक्रमणशील समाज में नैतिक सिसमोग्राफी का प्रबल सूचकांक माने जा सकते हैं। स्त्री–पुरुष के आपसी संबंध। आज पुरुष ही अधिक असंयत और पारदर्शी हो चले हैं और उन्हें सँभालने के लिए स्त्रियाँ अधिक प्रौढ़ हुई हैं–उद्याम नदी–सी खुली ढली। प्रवेश के लिए अलग–अलग दरवाजे और अलग अलग गुप्त सुरंगें हैं। भोगने की प्रक्रिया जितनी जटिल है, भोग आत्मसात् करके एक दृष्टि के रूप में विकसित कर पाना उससे भी दुरूह। कुछ यौन–तंत्रियों के पूरे शरीर में प्रायः समरूप
फैलाव के कारण भी स्त्रियों की दैहिक भाषा बहुकेन्द्रीय हो जाती है। इस लिहाज से स्थिर, जड़ या गतिहीन यौनिकता का प्रतीक उसे कहा जाता रहा है। यह कभी अधीर नहीं होती। आत्मगर्व से भरी होती है। अभिमान से परिपूर्ण। गुमान से भरीपूरी। जिसकी अपनी इच्छाएँ होती हैं। देह की आकांक्षाएँ और स्व की अत्यावश्यकता एक साथ जुड़ जाती है। शारीरिकता अगर ठिकाने लग जाये, तो सार्थक हो जाये। स्त्री के लिए इस बात का अहम् महत्त्व है एक ऐसी सच्चाई, जो नैतिक रूप से पूर्णतः दोषरहित होती है। आनंद को चरम–सीमा तक ले जाने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त व्यक्ति, परिस्थिति या स्थान कौन–सा है, स्त्री के लिए यही मायने रखता है। जहाँ दोनों ही एक दूसरे की अन्यता को 'अदरनेस' को न सिर्फ समझते हैं, बल्कि आदर भी करते हैं। बहुत गहरे उतर कर उस अवस्था की खोज में तल्लीन होते हैं, जहाँ स्त्री–पुरुष एक दूसरे से सचमुच बराबरी के स्तर
पर मिलजुल सकते हैं। अगर उनमें कोई भिन्नता है भी, तो वह जीव वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सही है। स्त्री और पुरुष में कोई फर्क नहीं होता और दोनों अपनी वैयक्तिकता के साथ पहचाने जाने का समान व्यवहार और इच्छाएँ रखते हैं। सच तो यह है कि स्त्री सशक्तिकरण देह की राह होकर आता है। देह है तो वह है। बाकी सब तो हवाहवाई बातें हैं। जिनके भरोसे जीवन की गति है, वह है देह।

सच यही है कि स्त्री कमजोर है, उसे प्रेम चाहिए, ऐसा प्रेम जो उसे पूर्ण कर दे, उसमें पूर्णत्व का अहसास करा
दे। जो उसे उसकी देह से अलग और फिर देह में शामिल होने का एहसास करवा सके। उसे उसके पूर्णत्व में चाहने और उसके डूबते एहसासों को फिर से जगाने के लिए उसके मन को सहलाते हुए त्वचा से नीचे हृदय को चूमकर ऊन के गोले की तरह खुलती चली जाने के लिए विवश करा सके। ऐसा जैसे पहले कभी नहीं। उसके पास एक भरी पूरी देह है, जिसका सही मेल एक पूर्ण पुरुष के साथ ही संभव है। परवाह होनी आवश्यक है कि स्त्री–देह अपने भोग के लिए भी तैयार है कि
नहीं। हर बार पुरुष जैसे उसके अधूरेपन के अहसास को और गाढ़ा करता

और इस अंतहीन सुरंग को और लंबा करता हुआ स्त्री–पुरुष में स्थापित होनेवाले शारीरिक संबंध के बारे में कहा जाता है कि स्त्री की भूमिका वहाँ निष्क्रिय है। यानी स्त्री उस पूरी प्रक्रिया में ऑबजेक्ट है यानी वस्तु और सुख का भोग करने वाला पुरुष सब्जेक्ट यानी कर्ता। आदि से अन्त तक अधूरेपन को महसूस करती और हर प्रेम में पूर्णत्व की तलाश करती हुई स्त्री निःस्वार्थ और खालिस प्रेम की गंध महसूस कर लेना चाहती है। प्रेम की उफनती नदी में कूद जाने से पहले उसकी गहराई नापने की क्षमता भी रखती है। दरसल पुरुष जानता ही
नहीं कि स्त्री को प्रेम की दरकार होती है, उसपर या उसकी देह पर अधिकार की नहीं और पुरूष प्रेम की खोल में स्त्री और उसके पूरे अहसास पर अधिकार चाहता है। प्रेम की चाह में स्त्री पुरूष को अपनी देह सौंपती चलती है और जबतक इस बात का अहसास होता है, बहुत देर हो चुकी होती है।

देह–संबंधों की आत्यंतिक पराकाष्ठा अद्वैत की स्थिति होती है, जिसका सहज ही अनुमान आँखों की बदलती रंगत, मुख–मुद्रा और हावभाव, व्यवहार से लगाया जा सकता है। प्रेम संबंधों में नारी का सच है असीम होना। जो असीम है, विराट है प्रकृति की तरह, उसका न प्रारंभ है, न अंत है–पुरुष उसको पूरा–पूरा कैसे जान सकता है। उसका रहस्य तो रहस्य ही रहेगा, अज्ञेय। कोई पूर्णविराम नहीं, समाप्ति नहीं, सब कुछ होकर भी अभी होने को शेष रहेगा। अंतहीन है उसकी संभावना वहीं–की–वहीं आत्यंतिक गहराई में यथावत् बनी। चाक घूमता है, कील नहीं घूमती। कील अपनी जगह पर वैसी–की–वैसी। जिसपर घूमता है, वह नहीं घुमती। अगर कील घूम जाए, तो फिर चाक गिर जाए। प्रकृति का यही स्वभाव है, जड़वत् अक्रियाशील, निष्कर्म स्थिति। जो होता है, प्रकृति में होता है। सबसे बड़ा कृत्य करने से नहीं होता, अपने–आप होने से होता है। पुरुष के लिए यहाँ कर्ताभाव और उसके मन की मौजूदगी ही छेद है, जिससे सब बह जाता है, बिखर जाता है, चूक जाता है। मन का यहाँ विश्राम में होना ही सुख की झलक का कारण है। प्रकृति वही देखना चाहती है, जो वह है, अपनी ही प्रतिछवि। पुरुष ऊपर–ऊपर है और स्त्री बहुत गहराई में। नौका को सागर में छोड़ना होता है, सागर की पुकार अज्ञात की पुकार है। जीने का रास्ता है, उसे समझने का नहीं। जितना समझेंगे, उतना ही ज्यादा शेष है समझने को।

और प्रेम का जानने से क्या संबंध? प्रेम कुछ जानता ही नहीं, प्रेम निर्दोष है, ज्ञान से मुक्त है। जो ज्ञान को ढोता है, वह प्रेम नहीं कर सकता। इसलिए प्रेम पुरुष के वश की बात ही नहीं। प्रकृति कभी हायतौबा नहीं मचाती, हाहाकार नहीं करती. आपाधापी में नहीं होती–उसमें परिपूर्ण ठहराव होता है, सहजता
स्थिरता होती है, सम्पूर्णता होती है। कशमकश में होना प्रकृति का स्वभाव नहीं। प्रकृति संग तालमेल तो ठहर जाने से ही संभव है, भागदौड़ से नहीं। ठहरे पाँव तो मिले गाँव। ऐसे चलना होता है, जैसे अनंतकाल मिला हुआ हो, कोई जल्दी नहीं, कहीं से उतावलापन–अधीरता नहीं। प्रकृति के लिए आनन्द तो लयतालबद्ध संगीत की तरह कतारबद्ध शृंखलाबद्ध खड़े होते हैं। वहाँ सिर्फ एक आनन्द नहीं है, एक आनंद के बाद दूसरा, तीसरा... शिखर–पर–शिखर, शिखरों से शिखर, शिखर के बाद शिखर और एक–से–एक बड़ा शिखर, वहाँ तो बस आनंद– ही–आनंद है, अंतहीन आनंद है समय के विस्तृत फैलाव में। इसे पाना कम, आविष्कृत ज्यादा करना होता है। प्रकृति के लिए धीमी रफ्तार की भी कोई सीमा नहीं होती और प्रचण्ड रफ्तार की भी कोई सीमा नहीं होती। पर्याप्तता और पूर्णता प्रकृति की माँग है।

यौनतंत्रियों के पूरे शरीर में ही समरूप फैलाव के कारण स्त्री की देहभाषा बहुकेन्द्रीय होती है। सर्वाधिक उपयुक्त व्यक्ति परिस्थिति स्थान विशेष अर्थ रखते हैं। पुरुष वही जो उसे पूर्ण कर दे, पूर्णत्व का अहसास करा दे। स्त्री का सही मेल एक पूर्ण पुरुष के साथ ही समय है। पूर्णता पाकर ही स्त्री में सौन्दर्य का संचार होता है। यही कारण है कि वीमन लिव एवं स्त्री–सशक्तीकरण यौनउन्मुक्त दौर में पश्चिम में स्त्रियाँ आज ऑर्गेज्म प्राप्ति को अपना मौलिक अधिकार समझ रही हैं। इतना ही नहीं, इसके लिए पर पुरुषगमन से भी उन्हें गुरेज नहीं है। उनकी सोच है कि अगर पुरुष बेवफा हो सकते हैं, तो वो ही बा–वफा क्यों रहे? यौन में चरमसुख पर बराबर का अधिकार माँग रही है। विलम्ब करना नारी का स्वभाव होता है। सब्र, धैर्य, इत्मीनान से भरी पूरी होती है। यौन–संबंधों में अत्यधिक विलंब से ही उत्तेजना की पराकाष्ठा पर पहुँच पाती है और पर्याप्त समय तक चरमानंद की अवस्था में कई बार आगे–पीछे होती रहती है और बार–बार अनगिन परमानंद प्राप्त करती रहती है। ऑर्गेज्म प्राप्त करने के बाद भी पूर्णतः श्रान्त–क्लान्त और शिथिल नहीं पड़ती और कई बार चरमसुख प्राप्त करती है। पुरुष समान उसे तुरंत ही स्खलन और शिथिलता का सामना नहीं करना पड़ता है। उत्तेजना और सुख को हजम करते रहने के लिए उसका तंत्रिका तंत्र पूर्णत सबल होता है। पुरुष इसमें सब्जेक्ट होता है और स्त्री ऑब्जेक्ट, पुरुष कर्ता और स्त्री कर्म की भूमिका में। पुरुष एक्टिव और स्त्री पैसिव रोल में। पुरुष डोनर और स्त्री रिसीवर के रोल में। स्त्री मार्ग जैसी और पुरुष बटोही जैसा। मार्ग कहीं आता–जाता नहीं। स्वयं से गति नहीं करता, मुसाफिर ही मार्ग से यात्रा करते हैं, रास्ते से आते–जाते रहते हैं। राह का कभी कुछ नहीं बिगड़ता। राह से सफर करने वाले राही ही थकते हैं, उन्हें ही विश्राम की जरूरत पड़ती है। बटोही को जल्दी होती है पहुँचने की। रास्ते को पहुँचाने की कोई शीघ्रता नहीं होती। स्त्री में प्रेम स्वर, संगीत, सुगंध है, मिठास और स्वाद की बड़ी गहरी प्रतीति है, एक प्रकार की उसमें समतुल्यता है, गोलाई है। स्त्री अपने होने से ही परम तृप्त है। कुछ डेग मात्र चलकर ही पूरी पृथ्वी को नापा नहीं जा सकता। स्त्री पूर्ण है। पूर्ण से पूर्ण को निकाल लें, फिर भी पीछे पूर्ण शेष रह जाता है। पूर्ण को पूर्ण में डाल दें, फिर भी पूर्ण उतना का ही उतना है।

पुरुष के साथ समस्या यह है कि बिना दौड़े प्रतियोगिता में प्रथम आना चाहता है। मुकदमा दायर करने के पूर्व ही उसे डिग्री पा लेने की बेताबी होती है और जहाँ होना चाहिए सम्पूर्ण ठहराव के साथ, वहाँ पूरी तरह उपस्थित नहीं होता, कहीं और होता है, अभी में मौजूद नहीं होता। जबकि नारी जहाँ होती है, सिर्फ वहीं होती है, अभी में सम्पूर्ण उपस्थित। पुरुष की तरह कहीं और नहीं होती। यही वजह है कि पुरुष तो तुरंत ही वापस लौट जाता है, मगर स्त्री शीघ्रता में लौट नहीं पाती, वहीं– की–वहीं ठिठकी रह जाती है। स्त्री के लिए सम्पूर्ण नारीत्व का
अहसास पुरुष या प्यार की जरूरत के अहसास से कहीं गहरी और जटिल चीज है। लंबी छलांग और चारे को प्राप्त करने के तौर–तरीके के संग ताकत को महसूस कराया जाना अति आवश्यक होता है। मगर पुरूष पास नहीं देखता दूर ही देखता रहता है। आशंकित तथा भयभीत, चिंतित ही अधिक होता है, मानसिक उधेड़बुन में ही उलझा रह जाता है, स्वयं को कर्ता और भोक्ता समझने के कारण असफल हो जाता है। उसमें साहस, आत्मविश्वास एवं धैर्य की ऐसे समय में प्रायः कमी पायी जाती है। इसलिए

चूक जाता है।

सच तो यही है कि पुरुष जबतक स्त्री की संपूर्ण देह–वीणा के तारों को धीरे–धीरे पूरी तरह छोड़कर झंकृत करते हुए उसमें काम की राग–रागिनियाँ उत्पन्न नहीं भरता, सुर–लय– ताल–छंद में पिरोकर संगीत सरगम उत्पन्न नहीं कर देता, तब तक स्त्री की देह सोयी हुई निष्क्रिय ही रह जाती है, बिना पुरुष के जगाये अपने–आप नहीं जागती। पुरुष की सक्रियता, क्रियाशीलता और शक्ति के बदले ही स्त्री को विभिन्न प्रकार के आनंद और सुख की प्राप्ति हो पाती है। इस मामले में वह पूरी तरह पुरुष पर ही निर्भर करती है, उसी के अधीन होती है। पुरुष के पहल की बाट जोहती रहती है। अपने से न तो आरंभ कर सकती है और न ही समापन। स्त्री के लिए इसमें कभी पूर्णविराम नहीं आता, सदा होने को शेष रहता है, अंतहीन होती है उसकी संभावना, पुरुष समान वह चूक नहीं जाती। छोटे–से चम्मच से सुविस्तृत सागर को नहीं नापा जा सकता। इस दिशा में पुरुष का सारा प्रयास नन्हीं–सी चोंच में चुटकी भर मिट्टी लिए विशाल समन्दर के अंतहीन विस्तार को पाटने के क्षुद्र प्रयास जैसा ही साबित होता है। सम्मोहित कर देनेवाली समाप्ति के बाद भी स्त्री की झंकृत देहवीणा का गहन अनुनाद देर तक बना ही रह जाता है। प्यास बची ही रह जाती है। इस मामले में पुरुष की सारी कोशिशें अपर्याप्त, अधूरी, बनावटी तथा हास्यास्पद मात्र ही होकर रह जाती है और स्त्री का भिक्षापात्र कभी भर नहीं पाता, इसमें कोई तलहटी नहीं होती। जरूरी होता है शरीर–शरीर के बीच संवाद, मन–मन के बीच वार्तालाप, धीमी प्रक्रिया और जल्दी भी देर से करना। इसके बगैर सम्पूर्णता का अहसास नहीं कराया जा सकता। पूर्णता का अनुभव होना स्त्री के लिए अनिवार्य होता है, क्योंकि उसमें काम की मात्रा पुरुष की तुलना में कई गुना अधिक पायी जाती है तथा कामावेग पुरुष की तुलना में काफी कम होता है। चरमावेग प्राप्त करने में भी पर्याप्त समय लग जाता है। चरमावेग की स्थिति में दीर्घ कालावधि तक यथावत् ही बनी रह जाती है। चरमोत्तर स्थिति के बाद भी उसे सहज सामान्य पूर्ववत् स्थिति प्राप्त करने में अत्यधिक समय लग जाता है। कारण स्पष्ट है कि विलंब करना नारी का यौन–स्वभाव है, क्योंकि समागम में वह अंगविशेष द्वारा नहीं, बल्कि समूचे शरीर से ही सक्रिय रूप से संलग्न होती है। अतः पुरुष यही सोचकर सारे उपाय, प्रयास, उपचार, प्रयोग, वैज्ञानिक अनुसंधान करे कि स्त्री को पूर्णता प्राप्त करने में काफी समय लग जाता है, तभी वह स्त्री को चरम नारीत्व का अहसास करा सकता है। इसके लिए पुरुष के मन में भय का न होना, मन का
प्रसन्न निश्चिंत रहना और प्रेमपूर्ण होना आवश्यक है। जब पुरुष गंभीर नहीं हो, मन से भारी–बोझिल न हो और जल्दी में तो हो ही नहीं। जो पुरुष अतीत और भविष्य में नहीं होता, वही वर्तमान का आनंद ले सकता है। सभी सामर्थ्य, क्षमता और दक्षता से पूर्ण होता है। काम भले ही पुराना हो, मगर हरबार नये एप्रोच के साथ, पहले का सब भूलकर। सिर्फ उपभोग की कला में निपुण होकर एक लंबी यात्रा का मुसाफिर होकर और ऐसा कभी होता ही नहीं। चूँकि बहुत लंबे समय तक कोई भी नारी लैंगिक संसर्ग का आनन्द प्राप्त करते रहने में पूरी तरह सक्षम और सहशील होती है और समय के विस्तृत फैलाव में ही उसमें मनोदैहिक प्रतिक्रियाएँ अनुकूलता प्राप्त कर पाती हैं, अतः नारी के लिए यह मायने रखता है कि पुरुष कौन–सा है (पात्र) परिस्थिति कैसी है? पूर्ण पुरुष से ही सम्पूर्ण नारीत्व की तलाश पूरी हो सकती है।

टॉल्सटाय ने कहा है– ''और अंत तक भी मैं यह जानकर नहीं जान सका कि अंततः एक औरत चाहती क्या है?'' अगर औरत अपनी मादा–औकात पे उतर आये, तो उसके लिए कुछ भी असंभव नहीं होता। अगर ठान ले, तो उसकी मरजी को पूरा होने से कोई नहीं रोक सकता। यह स्त्री का सहज प्राकृतिक शांत स्त्रैण–स्वभाव होता है कि वह प्रेम में अपना कदम पहले आगे नहीं बढ़ाती और मजबूर अगर दिल से न हो तो पास कभी नहीं आती। जिस तरह पुरुष स्त्री का प्रेम पाने के लिए उसका पीछा करता है, अगर कोई स्त्री भी उसी प्रकार प्रेम के लिए पुरुष का पीछा करना शुरू कर दे, तो फिर पुरुष खुद ही भाग खड़ा होगा। कोई पुरुष बच भी सकेगा, अगर स्त्री उसके पीछे लग जाये तो? स्त्री स्वयं अपने लिए प्रगाढ़ आनंद में होती है, पुरुष समान बेचैन और अस्थिर नहीं होती। यही कारण है कि स्त्री में असीम संभावनाएँ सदा मौजूद होती हैं। पुरुष स्त्री के अनंत गहरे सागर में कुछ दूरी मात्र तक ही तैर सकता है, पूरे सागर को तैर पाना उसकी सीमा से बाहर की बात होती है। शीघ्र ही पुरुष समान पराकाष्ठा का स्पर्श का लेना स्त्री का स्वभाव नहीं, इसलिए पूर्ण तैयारी के बिना प्रकृति के नियमों से खेलना पुरुष के लिए महँगा साबित होता है। प्रकृति पूर्ण से कम कुछ भी नहीं लेती है। इसलिए यहाँ संघर्ष नहीं, समर्पण, आभार अहोभाव चाहिए। धारा के विरुद्ध नहीं, धारा के संग–संग, धारा की मरजी पर ही स्वयं को छोड़ना होता है, जिधर ले जाए धारा उधर ही।

कृतकृत्य होकर धन्यता कृतज्ञता आभार बोध से भरकर ही सान्निध्य की संपूर्णता का अनुभव किया जा सकता है, मन और अहंकार को त्याग कर, स्वयं को छोड़कर, अन्यथा कुछ होने को विस्मृत कर। प्रकृति जब पूर्ण जाग्रत अवस्था में होती है, तो उसकी शक्ति का अंदाजा ही नहीं लगाया जा सकता। कठोर–से–कठोर पर्वत और मजबूत–से–मजबूत सम्पूर्ण दृढ़ता और पूरी ऊँचाई में खड़े पेड़ उसके सामने पल–भर नहीं टिक
पाते, समूल उखड़कर धराशायी होकर रह जाते हैं।

'भोगा न भुक्ताः वयमेव भुक्ताः' हम भोग को नहीं भोगते, भोग द्वारा स्वयं ही भोग लिये जाते हैं। उपनिषद् के अनुसार–'तेन त्यक्तेन भुंजीथा।' जिसने त्यागा, उसी ने भोगा।

हर स्त्री प्रेम चाहती है। सिर्फ प्रेम, जिसमें स्वयं को भुला सकें और प्रेम के रास्ते ही देह के सुख को भोगना चाहती है। आहत मन पर एक प्रेम–भरा चुम्बन चाहती है। स्त्री को पाने की अपनी बेसब्री के चलते पुरुष स्त्री के बारे में जल्दबाजी करते चलते हैं। पुरुष के संसर्ग से प्रायः हर बार निराश ही लौट जाना स्त्री की जैसे नियति होती है। समाज में प्रेम के अनाम संबंध की अपेक्षा वैवाहिक जीवन का प्रेम ही अन्ततः सत्य पाया जाता है। तन का धर्म मन के धर्म से अलग नहीं होता। हर बंदिश में भी अपनी एक स्वर लहरी होती है देह को झंकृत करती हुई। अब असली सवाल यह होता है कि हम आखिर देखना क्या चाहते हैं? अपने सम्पूर्ण चरम नारीत्व की तलाश करती आज की नारी किसी असमंजस में नहीं दिखती, चाहे प्रेम के मामले हों या यौन के प्रसंग। आधुनिक नारी समझने लगी है कि संवेदनशील होना उपद्रव में बढ़ना है। इसलिए कशमकश, हायतौबा, हाहाकार, अनिश्चय की स्थिति से अब तेजी से बाहर निकलने लगी है। समसामयिक परिवेश में तेजी से बदलते सम्बन्धों के समीकरण में तथा निरंतर भावशून्य एवं संवेदनहीन होते समाज में सम्पूर्ण नारीत्व की तलाश आज भी नारी के लिए मृगतृष्णा ही प्रमाणित हो रही है।

आलेख

संगति और कुसंगति

डॉ. अमर सिंह बधान
प्रोफेसर एमरिट्स, डी.लिट्., चंडीगढ़
मो. 9876301085

तारीख गवाह है कि मानव जाति के अस्तित्व काल से ही मनुष्य परिवार या कबीले के रूप में एक साथ मिलकर रहते आए हैं। अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने के लिए तथा जीवन निर्वाह के साधन एकत्रित करने के लिए यह मिल–जुलकर रहने की व्यवस्था जरूरी समझी गई। ऐसी संगति या इकट्ठे रहने की तह में सदैव एक धार्मिक भावना कार्यरत रही है, भले ही वह धर्म कितना भी प्रारंभिक अवस्था में था। इसमें दो राय नहीं कि सामूहिक प्रवृत्ति मनुष्य के सामाजिक व्यवहार में एक विशेष स्थान रखती है। इसीलिए वह अपनी खास रुचि एवं आवश्यकतानुसार कुछ व्यक्तियों का चयन करता है। इस तरह अपनी इच्छानुसार स्थायी या अस्थायी साथ के लिए चयनित संग को संगति कहते हैं। मोटे तौर पर संगति का भाव साथ अथवा सोहबत है। संगति का सही अर्थ भी भले लोगों के साथ से ही माना जाता है।

अच्छी संगति में जाकर एक खास किस्म की मानसिक शांति मिलती है। मनुष्य के अन्दर सत्यवादी बने रहने के कारण परमात्मा का अहसास करने की प्रवृत्ति जन्म लेती है। उत्तम संगति में व्यर्थ के विचारों से छुटकारा मिलता है और मनुष्य सत्य मार्ग की ओर अग्रसर होता है। एक अन्य कोण से देखें तो उच्च संगति व्यक्ति के पाप, बुरे कार्य, अपराध बोध, दोष, धोखा, गलती, जुर्म आदि से बचाती है। उल्लेखनीय है कि व्यक्तिगत रुचियाँ, प्रवृत्तियाँ एवं सामाजिक जरूरतें सदैव समान्तर नहीं होती। सामाजिक जीवन व्यक्ति से कुर्बानी माँगता है और वह हमेशा आशाप्रद मूल्यों पर पूरा नहीं उतरता है। व्यक्ति की जरूरतें उसे चोरी, ठगी और दुश्मनी की ओर प्रेरित करती हैं। नतीजतन, व्यक्ति के मन में दोष भावना पैदा होती है। प्रत्येक धर्म इन बुरी भावनाओं एवं गुनाहों से मनुष्य को रोकने के लिए प्रायश्चित के ढंग सुनिश्चित करता है। अच्छी संगत में आकर मनुष्य के अवगुण धुल जाते हैं और वह हमेशा गुणों की ओर ही प्रेरित होता है।

दार्शनिक दृष्टि से देखें तो पाँच तत्त्वों की तरह (आकाश, वायु, जल, मिट्टी, अग्नि)–ये पाँच विकार (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार) भी शरीर के पाँच तत्त्व हैं। शरीर का कायम रहना इन पर निर्भर है। प्रकृति के जिस भाव को लेकर इन्हें शरीर में रचा है, यदि ये अपनी निर्धारित सीमा में रहें तो शरीर के रक्षक एवं उपकारी हैं; परन्तु यदि इनमें से कोई एक तत्त्व विलोम दिशा में अग्रसर होकर प्रकृति के नियम से बाहर चला जाता है, तो वह प्राकृतिक गुण–अवगुण के रूप में परिवर्तित होकर दोष का भागीदार बन जाता है।

'गीता' में पाँच विकारों की उत्पत्ति और इनके द्वारा मानवीय हस्ती के विरुद्ध होनेवाले भयानक परिणामों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इंद्रियों के विषयों को याद रखने वाला उनके साथ अनुराग पैदा कर लेता है। अनुराग के कारण काम पैदा हो जाता है, काम से क्रोध, क्रोध से मोह, मोह से स्मृति का भ्रम और उससे बुद्धि का विनाश होता है। जब बुद्धि नष्ट हो जाए, तो व्यक्ति बरबाद हो जाता है। पाँच विकार काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार मनुष्य के आवागमन के लिए जिम्मेदार हैं, जिनपर नियंत्रण पाने के लिए सभी लोग साधना करते हैं। अच्छी संगति इन विकारों को वश में करने में सहायक होती है। इनके गुलाम मनुष्य का छुटकारा परिष्कृत संगति में ही हो सकता है। किसी एक क्षेत्र में कुछ उपलब्धियाँ प्राप्त कर लेने से अथवा गलत सोच के कारण व्यक्ति में अहंकार आ जाता है। वह अपने–आपको बहुत बड़ा समझने लगता है तथा अन्य लोगों को नीचा समझकर घृणा करता है। यदि वही व्यक्ति उत्तम संगति में आ जाए, तो उसे पता चलता है कि उसकी प्राप्ति कोई अलौकिक वस्तु नहीं है। उसकी तरह और उसकी प्राप्तियों जैसी उपलब्धियाँ प्राप्त करनेवाले अन्य लोग भी बहुत हैं। ऊँची संगति मनुष्य के बहिर्मुखी होने और उसका अहंकार तोड़ने में सहायता करती है।

यह कहना सही है कि अच्छी संगति में उठने–बैठनेवाले व्यक्ति के निजी जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। वह संगति में रहते सभी लोगों को एक ही परमात्मा का अंश समझकर प्यार करता है और इससे सभी में बराबर समझने का विचार भी दृढ़ होता है। अच्छी संगति में सभी जीव आपस में मित्र होते हैं। सुसंगत एवं सुसंस्कृत व्यक्ति समाज में जाति–पाँति के वर्ग विभाजन से ऊपर उठ जाता है। वह दूसरों से सद्‌गुण ग्रहण करता है। संगति में जाकर शांति, अमन–चैन एवं सजीवी आनंद की प्राप्ति होती है। मनुष्य सत्यवादी बनने लगता है, उसे समझ आ जाती है कि सत्य तो कभी मैला ही नहीं होता। वैसे कोई भी मनुष्य पूर्ण रूप में बेसमझ नहीं होता; लेकिन मनुष्य के ज्ञान की अवस्था में अंतर होता है तथा आम सूझ–बूझ का निर्धारण व्यक्तिगत होता है। सामूहिक सोच सदैव व्यक्तिगत सोच से ऊँची होती है और संगति इस उत्तम ज्ञान की प्राप्ति का साधन है।

मनुष्य जब श्रेष्ठ संगति में जाता है, तो उसके विभिन्न भय खत्म हो जाते हैं, क्योंकि संगति में रहते मनुष्य की कमजोरी ताकत में बदल जाती है और मनुष्य उद्यमी बन जाता है। उत्कृष्ट संगति में व्यक्ति 'मैं' और 'तू' के झगड़े से ऊपर उठकर सभी को एक ही दृष्टि से देखता है। भली संगति मनुष्य को गुनाह करने से रोकती है और पाँच विकारों को नियंत्रण में लाना आसान हो जाता है।

जहाँ संगति मनुष्य को उच्च और शुद्धाचार प्रदान करने की साक्षी है, वहीं कुसंगति इंसान को हैवान और शैतान में परिवर्तित कर देती है। यही वजह है कि दर्द का अहसास करनेवाले महापुरुषों ने जहाँ मनुष्य को अच्छी संगति के लिए प्रेरित किया है, वहीं कुसंगति से दूर रहने की सलाह दी है। लेकिन मनुष्य एक सामाजिक जीव है और वह

चाहे या न चाहे साथियों की अच्छी–बुरी संगति का प्रभाव अवश्य स्वीकारता है। जर्मनी के महान दार्शनिक गेटे का कहना है– ''मुझे यह बता दो कि आप किन लोगों में बैठते, उठते और विचरण करते हैं। मैं आपको बता दूँगा कि आप कौन हैं, कैसे हैं?''

ध्यान देने की बात है कि अच्छी संगत में अच्छे गुणों को प्राप्त करना किसी पर्वत की चोटी पर चढ़ने के समान है; लेकिन बुरे प्रभावाधीन नीचता की ओर गिरना पहाड़ की उतराई की तरह आसान है। यही वजह है कि वर्षों की कठिन तपस्या द्वारा मन को साधनेवाले मुनिजन कुसंगति के कारण चरित्रहीनता की खाई में गिरते पल भी नहीं लगाते। मानव का स्वभाव है कि वह दूसरों की अच्छाइयों से बुराइयों की ओर जल्दी प्रेरित होता है। संगति के प्रभाव का यह आलम है कि यदि किसी मनुष्य का बच्चा प्रारंभ से ही जंगली जानवरों में पले, तो वह उनका ही साथी बनकर उन्हीं की आदतें सीख जाएगा। ऋग्वेद के अनुसार

दुष्ट कार्य मत करो और ना ही प्रतिष्ठित एवं धर्मात्माओं में अनाचार करो; क्योंकि दुष्टों–अनाचारियों के लिए दूसरी तरह का विधान है, जिससे वे दुःख पाते हैं।

यह कहना भी सही है कि जिस व्यक्ति ने बुरे आचरण का त्याग नहीं किया, जो अशांत है, जिसका मन बेचैन है, वह ज्ञान से वास्तविक तत्त्व को प्राप्त नहीं कर सकता। दूसरी तरफ जिसका शुद्ध आचारयुक्त अन्तःकरण है, वह अपने आदर्शों को प्राप्त कर लेता है। इसलिए मूर्ख की संगति से अकेले विचरण करना ज्यादा ठीक है। सभी धार्मिक ग्रंथों में मायाधारी, अहंकारी, विकारी एवं दुराचारी से दूर रहने की सलाह दी गई है। माया का पुजारी प्रभु के बिना प्यासा ही मर जाता है। उसे सत्य अच्छा नहीं लगता, क्योंकि उसने झूठ का पल्ला पकड़ लिया है। इसलिए उसकी बुनियाद भी झूठी होती है। माया को प्रेम करने वाले जीव काल के शिकार होते हैं। ऐसी कुसंगति में फँसकर साधारण जीव परमात्मा को पहचानता नहीं।

'विकार' वह दोष है, जिसे ग्रहण करने से मनुष्य के मन और शरीर में बिगाड़ पैदा होती है। काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार की संगति से मनुष्य को बचना चाहिए। इन पाँचों विकारों के प्रभावाधीन मनुष्य लोभी, कपटी, पापी एवं पाखंडी हो जाता है। कामी व्यक्ति की संगति से भी दूर रहना चाहिए। क्रोध काम से मिलकर मनुष्य की शक्ति को नष्ट कर देता है। इनमें फँसे व्यक्ति को इनसे तृप्ति नहीं मिलती। सांसारिक पदार्थों का मोह मनुष्य को दोषी एवं दागी बना देता है। कुटुंब और इससे संबंधित सभी झूठे कार्य मोह के घेरे में आते हैं। मोह के कारण मनुष्य डूब रहा है और जन्म–मृत्यु के चक्र में फँसा हुआ है। सारी दुनिया झूठे मोह के भ्रम में प्रभु को भुलाए बैठी है। अहंकार के कारण मनुष्य ईश्वर से दूर रहता है। संसार को अहंकार ने ठगा है। वह विद्वान मूर्ख है, जो अपनी विद्वत्ता का अहंकार करता है। गुणहीन अहंकारी की संगति से दूर रहना चाहिए। विषय–विकारों से तृप्ति नहीं होती। अपनी अज्ञानता के कारण मनुष्य इन विकारों की तृष्णा से मुक्त नहीं हो सकता और आवागमन के चक्र में भटकता रहता है। परमात्मा से जुड़ने के लिए इन विकारों को त्यागना बेहतर है। अच्छी संगति में परमात्मा भी उपस्थित रहता है। कुसंगति का द्वार विनाश की ओर ही खुलता है।

कविता

सूरज की पहली किरण

देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
ग्राम–केतहा, पो.–भवानीपुर,
जिला–बस्ती (उप्र.)–272124
मो.–7355309428

लाल देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
सूरज की पहली किरण जब धरा पर पड़ती है
मिट जाता है निशा का अंधकार
हो जाता है प्रकाश का विस्तार
नये स्फूर्ति का करती है नव संचार
उत्पन्न होती है नित नई आस
जीवन के प्रति दृढ़ होता है
एक नया विश्वास...

सच में सूरज की पहली किरण
कितना कुछ बदल देती है
हमारे जीवन के भी
तिमिर को भी हर लेती है
अतीत में हुई गलतियों से
हम सबक सीखते हैं
उसपर करते हैं चिंतन–मनन
फिर सफल होकर जीतते हैं
हममें हो जाता है कितना उत्साह
और खुशी से हम जीवन जीते हैं
सूरज की पहली किरण की तरह
दूजों के जीवन में भी
हम प्रकाश भर सकते हैं...

जिस तरह सूरज जाड़ा,गर्मी व वर्षा में
वर्ष के हर महीने में, हर दिन
बिना रुके सतत धरा पर
नित दिन प्रकाश फैलाता है
उसी तरह हमें भी जीवन में
सुख–दुख में सम रहते हुए
जीवन में आगे बढ़ते रहना चाहिए
जितना हो सके उतना दूजों को
हमें आगे बढ़ाने के लिए
सहयोग, समर्थन व संबल देते रहना चाहिए...।

आलेख

कैसे–कैसे रावण जीवित हैं अब भी

डॉ. अमर सिंह बधान
प्रोफेसर एमरिट्स, डी.लिट्.
मो. 9876301085

हमारे यहाँ रावण की परिकल्पना अहंकारी एवं कपटी के रूप में जितनी शाश्वत है, शायद दुनिया के किसी अन्य व्यक्ति की नहीं है, भले ही उसने अपने बुरे कर्मों से रावण के मुकाबले में अतिविकराल एवं आतंकित रूप धारण कर लिया हो। रावण की सबसे बड़ी गलती यह थी कि उसने राम–लक्ष्मण की अनुपस्थिति में छल करके, भिक्षु बनकर और चोर की भाँति सीता का हरण किया। यह कार्य न तो धर्मसम्मत था और न ही वीरोचित। अशोक वाटिका में सीता ने अपनी तीखी मुद्रा में रावण को खबरदार करते हुए कहा था–''क्या आपने मेरे पति को युद्ध में जीतकर मेरा हरण किया है? आपने मुझे धोखे से चुराया है। यदि आपकी सुमति न जगी तो निश्चय ही आपकी मृत्यु होगी।'' पर आगे चलकर लोगों के दिलों में रावण का यह कुकर्म इतनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया कि वे रावण से घृणा करने लगे और प्रकारान्तर में उन्होंने प्रतिवर्ष रावण का पुतला जलाने की परंपरा
दाग दी।

हर वर्ष रावण का पुतला जलाया जाता है; लेकिन यहाँ ये सवाल भी खड़े होते हैं कि क्या इस परिधि में रावण का प्रतिनिधित्व करनेवाले आधुनिक रावण नहीं आते हैं? क्या हर परिवार, समुदाय, समाज, गाँव, शहर एवं नगर–महानगर में बसनेवालों एवं भ्रष्ट राजनीतिज्ञों के दिलों में रावणत्व का प्रतिशत नहीं है? क्या हम स्वयं ही रावण को एक बड़ा आकार नहीं देते जा रहे हैं? पहले के रावण की पहचान सरल थी, क्योंकि एक विशिष्ट शारीरिक बनावट के कारण वह सिद्ध था, स्पष्ट था। उसके शरीर में शुद्ध आर्य और दैत्यवंश का रक्त था। उसका पिता पौलस्त्य विश्रवा शुद्ध आर्य और विद्वान वैदिक ऋषि था और माता दैत्यराजपुत्री थी। लेकिन हर रोज निर्दोषों का अपहरण करने, शारीरिक ज्यादतियाँ करने, अधर्माचरण करने, दासी कर्म कराने एवं मानव वध तक करने के लिए जिम्मेदार कौन हैं? अब लंका से छलांग लगाकर रावण यहाँ आकर यह कुकर्म तो नहीं करता है। फिर भी पुतला रावण का ही जलता है। कुकृत्यों के आरोप लगने, अखबारों में उछलने एवं सिद्ध हो जाने के बाद भी कुकृत्यकारियों के पुतले बनाने एवं जलाने के लिए कौन–से आदेश की प्रतीक्षा बाकी है? रावण पर लगे आरोप के सिद्ध हो जाने के बाद श्रीराम ने तत्काल कार्रवाई की थी एवं सोने की लंका के सुल्तान को मिट्टी में मिला दिया था। यह तत्काल कार्रवाई आधुनिक रावणों के विरुद्ध संभव क्यों नहीं?

आज खेतों में, घरों में, कार्यालयों में और अन्यान्य संस्थाओं–संगठनों में काम करने वाले व्यक्ति सुरक्षित नहीं है। वे वीभत्स शोषण, अत्याचार एवं अन्याय के शिकार हैं। जनप्रतिनिधियों ने तो अनैतिक संबंधों को प्रतिष्ठा का पर्याय बना रखा है। बेईमानी, वादाखिलाफी, सिद्धान्तशून्यता, दुराचार, भ्रष्टाचार आदि चारित्रिक और व्यावहारिक गुण माने जाते हैं। क्यों समूचे प्रकरण पर मोटा पर्दा डाल दिया जाता है? और क्यों आधुनिकतम रावण कानून से ऊपर है? उसके विरुद्ध अदालतों की आवाज क्यों नहीं उठती? समाजशास्त्री एवं अर्थशास्त्री निष्कर्ष निचोड़ सकते हैं कि यह सब कुछ हमारी व्यवस्था के कारण है। फिर सवाल उठता है कि हमारी व्यवस्था का ढाँचा किसने तैयार किया और इस व्यवस्था रूपी भवन का असली वास्तुकार कौन है? क्या भारत को खाली करके व्यवस्था की आधारशिला रखी गई और इमारत मुकम्मिल की गई? अनिवार्यतः व्यवस्था के निर्माण में ईंट, पत्थर, गारा आदि ढोहने में हम भी बराबर के सहभागी हैं।

आज का मनुष्य घर से बाहर रहते हुए, काम करते हुए अपने घर के बारे में ही सोचता है। वह बाहर की सोच ही नहीं सकता। कारण यह कि उसे अधिक–से–अधिक अधिकारों की लिप्सा है, न कि दायित्वों के अहसास की। इसी बिन्दु से रावण के पैदा होने की जमीन तैयार होती है और रावण को अंकुरित होने, प्रस्फुटित होने एवं विकसित होने का सुनहरा मौका मिलता है। यह स्थिति की विवशता है और विवशता रावण की जननी है। चूँकि विवशता किसी–न–किसी रूप में मनुष्य के अंदर है, तो फिर उससे यदि रावणत्व विकसित हो जाए तो इसमें आश्चर्य ही क्या? तब की व्यवस्था ने केवल एक ही रावण पैदा किया था। ऐसा रावण जो अजेय, सामर्थ्यवान, प्रबल प्रतिज्ञावान, नीति और वेदों का प्रकाण्ड पंडित था। उसके साम्राज्य की सरहद के अंतर्गत यवद्वीप, सुमात्रा, मलाया, कुशदीप, मेडागास्कर महाद्वीप एवं अन्य अनगिनत छोटे–छोटे द्वीप समूह भी थे। उसने समुद्र लाँघकर भारत में प्रवेश भी किया था तथा दण्डकारण्य (नासिक) एवं नैमिषारण्य (शहाबाद) नाम से दो सैनिक सन्निवेश भी स्थापित किए थे।

यह भी कि रावण बुराईयुक्त होते हुए भी सर्वथा अच्छाईशून्य नहीं था। मिथिला के राजा सीरध्वज जनक के धनुष यज्ञ में श्रीराम ने धनुष को दृढ़ हाथों में पकड़कर अधर में उठा लिया। फिर ज्यों ही उसकी प्रत्यंचा को चढ़ाने लगे, वज्रपात की भाँति घोर शब्द करके बीच से टूट गया। यह सब कुछ रावण ने देखा था; लेकिन इसपर वह बिल्कुल तिलमिलाया नहीं। रावण ने अपना परशु कंधे पर रखा। वह धीर मन्दगति से वहाँ पहुँचा, जहाँ खंडित धनुष पड़ा था और सीता ने श्रीराम को जयमाला पहनाई थी। जयमाला के एकाध पुष्प, वहीं पृथ्वी पर सीता के चरण चिह्न के समीप पड़े थे। रावण ने झुककर उस चरण चिह्न की मृत्तिका जरा–सी उँगलियों के पोर में छूकर हृदय से लगाई। पुष्प की उन पंखड़ियों को यत्न से उठाया और

बिना इधर–उधर देखे अपने हृदय में राम की कोमल मूर्ति और सीता की अमलच्छवि को रक्त की प्रत्येक बूँद में भरकर अपने मार्ग पर चल दिया था। प्रश्न है कि यहाँ रावण के चरित्र का कौन–सा रूप उभरता है? याद इसे भी रखना है।

इसमें दो राय नहीं कि रावण, सीता पर सदय था और उसने सीता को स्पर्श तक नहीं किया था, भले ही अशोक वाटिका में सीता के साथ हुए संवाद में उसने पूरा गुस्सा उगल दिया था और उसका वध करने की धमकी भी दी थी। आज सबसे पहले इमानों, उसूलों एवं इंसानियत का अपहरण एवं वध होता है और बाद में व्यक्ति का। अपहरणकर्ता का एक विशेष लक्ष्य होता है, जिसकी सिद्धि के लिए कुछ शर्तें रखी जाती हैं और धमकियाँ दी जाती हैं। ये शर्तें और धमकियाँ जहाँ एक ओर कानून व्यवस्था को ललकारती हैं, उसे निर्बल असहाय बनाती हैं, वहीं दूसरी ओर राजनीतिक–सामाजिक ढाँचे की चूलों को अंदर तक हिला देती हैं। फिर भी हर वर्ष रावण का ही पुतला बनता है और जलता है।

सवाल खड़ा है कि रावण का पुतला जलाकर हम रावण का विनाश करते हैं या उसे जिन्दा रखते हैं। उसे निर्बल बनाते हैं या सबल, उसे सांसारिकता प्रदान करते हैं या सार्वभौमिकता। ताज्जुब नहीं कि मैदान में खड़ा 150 फुट का रावण हमारी सोच–समझ पर ठहाका मारकर कहता है कि लोगों ने मेरा पुतला जला–जलाकर मेरा ही कद कितना ऊँचा कर दिया है और भयंकर आतिशबाजी से मुझे कितना खतरनाक बना दिया है, क्या फिर भी रावण मरता है, शायद नहीं। वह जिन्दा है, हर जगह में, हर दिल में, हर मस्तिष्क में। चाहे रावणत्व का प्रतिशत कम हो या ज्यादा पर वह अपना अस्तित्व सर्वत्र जमाए हुए हैं। भोपाल इंदौर मार्ग पर आस्था में रावण की सीमेंट की एक प्रतिमा है। इसके इर्द–गिर्द घास–फूस का पुतला बनाकर उसे जला दिया जाता है। पुतला तो जल जाता है, पर रावण वैसे का वैसा ही रहता है। रावण की प्रतिमा ने सिद्ध कर दिया है कि उसे जलाया नहीं जा सकता है, वह तो अग्निसोख है।

आज रावण का पुतला जलाया जाना मात्र औपचारिकता बन गया है। इससे कोई प्रेरणा नहीं ली जाती है और न ही कोई सबक। मैदान में जल रहे रावण के पुतले को देखनेवाले अधिकांश जन समुदाय में रावणत्व का कुछ–न– कुछ प्रतिशत तो अवश्य होता होगा, जो चरित्र का कतई अच्छा लक्षण नहीं है। फिर उसी दिन से रावण के पुतले की तरह वह प्रतिशत बढ़ता है और साल भर बढ़ता रहता है। रावण, कुंभकरण और मेघनाथ के जलते पुतलों को देखकर लोग खुश होते हैं, क्योंकि पुतलों को जलते देखना उनका मनोरंजन है। सवाल है कि लोग वहाँ से क्या लेकर निकलते हैं। क्या वे इसपर कुछ सोचते हैं कि आज से रावणत्व का स्थान रामत्व लेगा। आज के बाद कोई कुकर्म एवं असामाजिक कार्य नहीं किया जाएगा और आज से इंसानियत हर हालत में हैवानियत व शैतानियत को पदच्युत करेगी। एक और स्वाभाविक सवाल है कि हम प्रतिवर्ष रावण का कद एवं रावणत्व का प्रतिशत अपने मन एवं मस्तिष्क में बढ़ा–चढ़ाकर कहीं अपनी बौद्धिक पराजय को परिलक्षित तो नहीं कर रहे हैं? आज के विखंडित समाज एवं दरकती व्यवस्था में रावण का जितनी आसानी से प्रवेश हुआ है, शायद उतनी आसानी से वह तत्कालीन सुसंगठित समाज एवं व्यवस्था में प्रवेश नहीं कर पाया था, यह एक अन्य आश्चर्यमयी वास्तविकता है।

अच्छाई और बुराई एक दूसरे के पूरक हैं। मनुष्य में इनका प्रतिशत घटता–बढ़ता रहता है। रावण में भी इनका प्रतिशत घटता–बढ़ता रहा था। हमें मूल्यांकन करना है कि आज के मनुष्य में अच्छाई और बुराई का कितना–कितना प्रतिशत है। रावण कभी भी समग्रतः बुराई का पर्याय नहीं रहा। उसके चरित्र का कुछ अंश अच्छा भी था, सबक लेने योग्य था। तभी तो दोनों लोकों के स्वामी श्रीराम ने रावण के मरते वक्त उससे शिक्षा ली थी और लक्ष्मण को भी सीख दिलवाई थी। इसका सीधा तात्पर्य यह है कि रावण के सुरक्षित प्रज्ञा कक्ष में कुछ देने के लिए बाकी था। यह निश्चित रूप से रावण का महत्त्वपूर्ण पहलू है। शायद इसी वजह से दक्षिण भारत के कई स्थानों में रावण की आज भी पूजा की जाती है।

आज चिंता की बात यह है कि जब हर व्यक्ति अपने कुकर्मों, दुराचारों, आतंकवादी गतिविधियों, भ्रष्टाचारों एवं बेईमानियों से रावण बन जाएगा, तब रावण का हश्र क्या होगा। जाहिर है कि जब हर व्यक्ति में बुराई का प्रतिशत तेजी से बढ़ता जाएगा, तो उस व्यक्ति में रावणत्व माना जाएगा। रामत्व वाले कुछ ही लोग बच पाएँगे, जो अच्छे सद्कर्मी एवं मर्यादा सम्पन्न होंगे; लेकिन भीड़ रावणों की होगी, उनके पुतलों की होगी और इतने पुतलों को जलाने के लिए उतनी जमीन नहीं बचेगी।

यह प्रश्न है कि हम हर साल दशहरे पर रावण का पुतला जलाकर उससे क्या सीख लेते हैं? क्या हम अपने अन्दर रामत्व की वृद्धि करते हैं या फिर रावणत्व की? क्या पुतला जलाने से रावण मरता है, उसका कद छोटा होता है और बुराई का अंत होता है? सच्चाई यह है कि दशहरे पर रावण पुतला दहन महज मनोरंजन का प्रतीक बनकर रह गया है। बुराई का ग्राफ बहुत ऊँचा उठ गया है और सीख, अच्छाई जैसी चीजें नेपथ्य में चली गई हैं। आज के संदर्भ में जिस व्यक्ति में शक्ति और बुराई है, उसमें रावणत्व अवश्य है। वह आधुनिक रावण है और उसके पास भी वह सब कुछ है, जो तत्कालीन रावण के पास था। यदि सचमुच गंगा में स्नान करने से पाप धुल जाते और रावण को जलाने से बुराई खत्म हो जाती, तो ऋषियों– मुनियों के इस देश का वर्तमान इतना वीभत्स एवं त्रासदीपूर्ण न होता। यदि हम बुराई को सचमुच खत्म करना चाहते हैं, तो हमें अपने अन्दर पल रहे रावण को मारना होगा; तभी दशहरे को मनाने और अच्छाई की बुराई पर विजय की सार्थकता सिद्ध होगी।

———

आलेख

अंधेरे से प्रकाश की ओर जाने का पर्व है दीपावली

आकांक्षा यादव
टाइप 5, निदेशक बंगला
पोस्टल आफिसर्स कॉलोनी
जोधपुर, राजस्थान
मो.–9413666599

मानव जीवन में प्रकाश की महत्ता किसी से छुपी नहीं है। दुनिया के कई देशों में भिन्न–भिन्न रूपों में प्रकाश पर्व मनाये जाते हैं। अंधकार पर प्रकाश की विजय का यह पर्व समाज में उल्लास, भाई–चारे व प्रेम का संदेश फैलाता है। भारतवर्ष में मनाए जाने वाले सभी त्यौहारों में दीपावली का सामाजिक और धार्मिक दोनों दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व है। इसे दीपोत्सव भी कहते हैं। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' अर्थात् 'अंधेरे से ज्योति अर्थात् प्रकाश की ओर जाइए'–यह भारतीय संस्कृति का मूल है। देश के विभिन्न क्षेत्रों में दीवाली मनाने के कारण एवं तरीके अलग हैं, पर सभी जगह कई पीढ़ियों से यह त्योहार चला आ रहा है। यह पर्व सामूहिक व व्यक्तिगत दोनों तरह से मनाए जाने वाला ऐसा विशिष्ट पर्व है, जो धार्मिक, सांस्कृतिक व सामाजिक विशिष्टता रखता है।

दीपावली शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के दो शब्दों 'दीप' अर्थात् 'दीया' व 'अवली' अर्थात् 'लाइन' या 'शृंखला' के मिश्रण से हुई है। इसके उत्सव में घरों के द्वारों, घरों व मंदिरों पर लाखों प्रकाशकों को प्रज्वलित किया जाता है। इस पर्व पर लोग अपने घरों का कोना–कोना साफ करते हैं, नये कपड़े पहनते हैं। मिठाइयों के उपहार एक दूसरे को बाँटते हैं, एक दूसरे से मिलते हैं। घर–घर में सुन्दर रंगोली बनायी जाती है, दिये जलाए जाते हैं और आतिशबाजी की जाती है। बड़े–छोटे सभी इस त्योहार में भाग लेते हैं।

दीपों के प्रकाशपर्व दीवाली की चर्चा भारत में तमाम पुराने ग्रंथों और साहित्य में प्राप्त होती है। दीवाली का पद्मपुराण और स्कन्दपुराण नामक संस्कृत ग्रंथों में उल्लेख मिलता है, जो माना जाता है कि पहली सहस्राब्दी के दूसरे भाग में किन्हीं केंद्रीय पाठ को विस्तृत कर लिखे गए थे। दीये (दीपक) को स्कन्दपुराण में सूर्य के हिस्सों का प्रतिनिधित्व करनेवाला माना गया है, सूर्य जो जीवन के लिए प्रकाश और ऊर्जा का लौकिक दाता है और जो हिन्दू कैलेंडर अनुसार कार्तिक माह में अपनी स्थिति बदलता है। कुछ क्षेत्रों में हिन्दू दीवाली को यम और नचिकेता की कथा के साथ भी जोड़ते हैं। नचिकेता की कथा–जो सही बनाम गलत, ज्ञान बनाम अज्ञान, साधन बनाम क्षणिक धन आदि के बारे में बताती है। पहली सहस्राब्दी ईसा पूर्व उपनिषद् में दर्ज की गयी है। 7वीं शताब्दी के संस्कृत नाटक नागनंद में राजा हर्ष ने इसे 'दीपप्रतिपादुत्लवः' कहा है, जिसमें दीये जलाये जाते थे और नव दुल्हन व दूल्हे को तोहफे दिए जाते थे। 9 वीं शताब्दी में राजशेखर ने काव्यमीमांसा में इसे दीपमालिका
कहा है, जिसमें घरों की पुताई की जाती थी और तेल के दीयों से रात में घरों, सड़कों और बाजारों सजाया जाता था। फारसी यात्री और इतिहासकार अल्बानी ने भारत पर लिखे अपने 11वीं सदी के संस्मरण में–दीवाली को कार्तिक महीने में नये चंद्रमा के दिन पर हिंदुओं द्वारा मनाया जानेवाला त्यौहार कहा है।

भारतीय संस्कृति में हर त्यौहार के पीछे कुछ मान्यताएँ छिपी हुई हैं। दीपावली मनाये जाने के पीछे मान्यता है कि दीपावली के दिन ही श्रीराम अपने चौदह वर्ष के वनवास के पश्चात अयोध्या लौटे थे। अयोध्यावासियों का हृदय श्रीराम के आगमन से प्रफुल्लित हो उठा था। अपने राजा श्रीराम के स्वागत में अयोध्यावासियों ने घी के दीपक जलाए। कार्तिक मास की सघन काली अमावस्या की वह रात्रि दीयों की रोशनी से जगमगा उठी। तभी से प्रति वर्ष प्रकाश पर्व को हर्ष व उल्लास से मनाये जाने की परम्परा आरम्भ हुई। एक अन्य मान्यतानुसार इस दिन भगवान श्रीकृष्ण ने अत्याचारी राजा नरकासुर का वध किया था। इस नृशंस राक्षस के वध से जनता में अपार हर्ष फैल गया और प्रसन्नता से भरे लोगों ने घी के दीए जलाए। एक पौराणिक कथा के अनुसार विष्णु ने नरसिंह रूप धारणकर हिरण्यकश्यप का वध किया था, तो इसी दिन समुद्रमंथन के पश्चात् लक्ष्मी व धन्वंतरि का प्रकट दिवस भी माना जाता है।

दीपावली दीपों का त्योहार है। दीपावली स्वच्छता व प्रकाश का पर्व है। यह सिर्फ समाज में प्रकाश ही नहीं फैलाता, बल्कि अंधकार बुराइयों को दूर भी करने का दिन है। यह इस विश्वास पर टिका है कि सत्य की सदा जीत होती है, झूठ का नाश होता है। दीवाली यही चरितार्थ करती है–'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय'। कई सप्ताह पूर्व ही दीपावली की तैयारियाँ आरंभ हो जाती हैं। लोग अपने घरों, दुकानों आदि की सफाई का कार्य आरंभ कर देते हैं। घरों में मरम्मत, रंग–रोगन, सफेदी आदि का कार्य होने लगता है। लोग दुकानों को भी साफ सुथरा कर सजाते हैं। बाजारों में गलियों को भी सुनहरी झंडियों से सजाया जाता है। दीपावली से पहले ही घर–मोहल्ले, बाजार सब साफ–सुथरे व सजे–धजे नजर आते हैं।

दीपावली सिर्फ एक दिन का पर्व नहीं, अपितु पर्वों का समूह है। दशहरे के पश्चात् ही दीपावली की तैयारियाँ आरंभ हो जाती हैं। लोग नए–नए वस्त्र सिलवाते हैं। दीपावली से दो दिन पूर्व धनतेरस का त्यौहार आता है। धनतेरस के दिन बरतन खरीदना शुभ माना जाता है। अतः प्रत्येक परिवार अपनी–अपनी आवश्यकता अनुसार कुछ–न–कुछ खरीददारी करता है। इस दिन तुलसी या घर के द्वार पर एक दीपक जलाया जाता है। इससे अगले दिन नरक चतुर्दशी या छोटी दीपावली होती है। इस दिन यम पूजा हेतु दीपक जलाए जाते हैं। अगले दिन दीपावली आती है। इस दिन घरों में सुबह से ही तरह–तरह के पकवान बनाए जाते हैं। बाजारों में खील बताशे,
मिठाइयाँ, खांड के खिलौने, लक्ष्मी–गणेश आदि की मूर्तियाँ बिकने

लगती हैं। स्थान–स्थान पर आतिशबाजी और पटाखों की दुकानें सजी होती हैं। सुबह से ही लोग रिश्तेदारों, मित्रों, सगे–संबंधियों के घर मिठाइयों व उपहार बाँटने लगते हैं। दीपावली की शाम लक्ष्मी और गणेश जी की पूजा की जाती है। पूजा के बाद लोग अपने–अपने घरों के बाहर दीपक व मोमबत्तियाँ जलाकर रखते हैं। चारों ओर चमकते दीपक अत्यंत सुंदर दिखाई देते हैं। रंग–बिरंगे बिजली के बल्बों से बाजार व गलियाँ जगमगा उठते हैं। बच्चे तरह–तरह के पदार्थों व आतिशबाजियों का आनंद लेते है। रंग–बिरंगी फुलझड़ियाँ, आतिशबाजियों व अनारों के जलने का आनंद प्रत्येक आयु के लोग लेते हैं। देर रात तक कार्तिक की अँधेरी रात पूर्णिमा से भी अधिक प्रकाशयुक्त दिखाई पड़ती है। दीपावली से अगले दिन गोवर्धन पर्वत अपनी अंगुली पर उठाकर इंद्र के कोप से डूबते ब्रजवासियों को बचाया था। इसी दिन लोग अपने गाय–बैलों को सजाते हैं तथा गोबर का पर्वत बनाकर पूजा करते हैं। अगले दिन भाई दूज का पर्व होता है। भाई दूज या भैया द्वीज को यम द्वितीया भी कहते हैं। इस दिन भाई और बहिन गाँठ जोड़कर यमुना नदी में स्नान करने की परंपरा है। इस दिन बहिन अपने भाई के मस्तक पर तिलक लगाकर उसके मंगल की कामना करती है और भाई भी प्रत्युत्तर में उसे भेंट देता है। दीपावली के दूसरे दिन व्यापारी अपने पुराने बहीखाते बदल देते हैं। वे दुकानों पर लक्ष्मी पूजन करते हैं। उनका मानना है कि ऐसा करने से धन की देवी लक्ष्मी की उनपर विशेष अनुकंपा रहेगी। कृषक वर्ग के लिये इस पर्व का विशेष महत्त्व है। खरीफ की फसल पक कर तैयार हो जाने से कृषकों के खलिहान समृद्ध हो जाते हैं। कृषक समाज अपनी समृद्धि का यह पर्व उल्लासपूर्वक मनाता है।

आज दीपावली का पर्व सिर्फ भारत तक ही सीमित नहीं रहा, अपितु दुनिया भर में बसे भारतीयों ने इसे ग्लोबल फेस्टिबल बना दिया है। कई देशों ने इस पर डाक टिकट जारी किये हैं, तो कुछेक देशों में इस दिन अवकाश भी होता है। आज यह पर्व अंधकार पर प्रकाश, अन्याय पर न्याय, अज्ञान और बुराई पर ज्ञान व अच्छाई की विजय का प्रतीक है।

आखिर क्यों

आखिर क्यों
मन से मन का विघटन
होता है
आदमी आदमी का दुश्मन होता है
एक ही छत के नीचे
रहने वाले
आपस में दूरियों के
पुल बना लेते हैं
आखिर क्यों?
पड़ोसी, पड़ोसी को फूटी आँख नहीं भाता
अपना बनकर है अपनों का
गला काटता
आखिर क्यों
मनुष्य ईश्वर अल्लाह के नाम पर लड़ता है
खुद के साथ ईश्वर को भी
ठगता है
आखिर यह जीवन पानी का बुलबुला है
समय के साथ जो निरंतर चल रहा है
यह जानकर भी आज लोग
भोगवादी लिप्त हैं
अन्याय और भ्रष्टाचार के
साये में गिरफ्त है
आखिर क्यों, आखिर क्यों?

मैंने जीना सीख लिया

मैंने जीना सीख लिया है
हाँ, मैंने जीना सीख लिया है
वर्षों गिरती रही धरा पर
उठ–उठ चलती रही धरा पर
किन्तु आज इस मरुभूमि पर
मैंने चलना सीख लिया है
मैंने जीना सीख लिया है
चहूँ ओर अनगिनत अंगारे
रहे तपाते हर पल सारे
अंगारों की इसी तपन को
मैंने सहना सीख लिया है
मैंने जीना सीख लिया है
हर पल छल और हर पल माया
जीवन दुख की काली छाया
आज दुखों की इस छाया से
मैंने लड़ना सीख लिया है
मैंने जीना सीख लिया है
ब्रह्म सत्य जगत है मिथ्या
जबसे सत्य समझ यह आया
निराकार उस परम सत्य से
मैंने नाता जोड़ लिया है
मैंने जीना सीख लिया है
हाँ, मैंने जीवन सीख लिया है।

–अशोक सिंह
दुमका (झारखंड)
मो.–9110072128

आलेख

हिन्दी की वीणा हैं गोपाल दास 'नीरज'

कृष्ण कुमार यादव
पोस्टमास्टर जनरल, वाराणसी परिक्षेत्र वाराणसी
मो. 09413666599

प्रख्यात कवि और गीतकार गोपाल दास 'नीरज' के नाम से भला कौन अपरिचित होगा! नीरज के गीत पढ़ते हुए पीढियाँ बड़ी हो गई। अपनी मर्मस्पर्शी काव्यानुभूति तथा सरल भाषा द्वारा हिन्दी कविता को उन्होंने एक नया मोड़ दिया। मंचों के बादशाह माने जानेवाले नीरज जी के गीत आज भी हिंदी कविता की लोकप्रियता की कसौटी है। नीरज का नाम सुनते ही सामने एक ऐसी शख्सियत उभरती है, जो स्वयं डूबकर कविताएँ लिखता और श्रोताओं व पाठकों को भी उनमें तल्लीन होने पर मजबूर कर देता। 'नीरज' की लोकप्रियता का सबसे बड़ा प्रमाण यह रहा कि वह जहाँ हिन्दी के माध्यम से साधारण स्तर के पाठक के मन की गहराई में उतरे, वहीं उन्होंने गम्भीर से गम्भीर अध्येताओं के मन को भी गुदगुदा दिया। जब नीरज मंच पर होते थे तब उनकी नवीनी कविता और लरजती आवाज श्रोता वर्ग को दीवाना बना देती थी। उनके काव्य में जहाँ शैली दृष्टिगत होती है, नहीं उर्दू जैसी सरल और सादी शब्दावली का व्यवहार भी देखने को मिलता है। काव्य–साधना के दीर्घ जीवन में नीरज जी को तमाम सम्मान पुरस्कार हासिल हुए, पर उनके गीतों ने लोकप्रियता का जो रंग बिखेरा, वह कम ही लोगों को मिलता है।

''अपनी बानी प्रेम की बानी घर समझे न गली समझे
या इसे नंदलला समझे जी या इसे नंदलली समझे
हिन्दी नहीं ये उर्दू नहीं ये है ये पिया की कसम
इसकी सियाही आँखों का काजल दर्द की इसकी कलम
लागे किसी को मिसरी–सी मीठी कोई नमक की डली समझे।

गोपाल दास सक्सेना 'नीरज' का जन्म (4 जनवरी, 1925 19 जुलाई, 2018) ग्राम पुरावली इटावा, उत्तर प्रदेश में बाबू ब्रजकिशोर सक्सेना के सुपुत्र रूप में हुआ। कॉलेज में अध्यापन, मंच पर कविता–वाचन और चित्रपट के लिये गीत रचना में लोकप्रियता उनके व्यक्तित्व के बहुविध आयाम रहे। पहचान की ख्वाहिश से अछूते इस साहित्यकार का यह सफर काफी संघर्षों भरा रहा, पर उनकी सदैव चाहत रही कि वह जब तक जिंदा रहे, अदब की खिदमत करते रहे। अपने गीतों में प्रेम को उन्होंने नए आयाम दिए, बकौल नीरज जी–

''आज भले भी कुछ कह तो तुम
पर कल विश्व कहेगा सारा,
नीरज से पहले गीतों में
सब कुछ था पर प्यार नहीं था।''

जीवन के विविध पक्षों को सहज भाषा में स्वर देने वाले 'नीरज' जी जीवन में भी उतने ही सहज रहे। कई बार बड़े आसान शब्दों में बड़ी बात कह जाते थे–''जितना कम सामान रहेगा/ उतना सफर आसान रहेगा।'' उनकी काव्य रचनाओं में कई बार जीवन का दर्द भी घुलकर निकलता है। जीवन के संघर्ष में उन्होंने जो तकलीफें उठायीं, कहीं–न–कहीं उनकी रचनाओं में भी प्रतिबिंबित हुई। जब वे मात्र 6 वर्ष के थे, तो पिताजी गुजर गये, पर उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। सन् 1942 में एटा से उन्होंने प्रथम श्रेणी में हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण की। जीवन के आरम्भिक दिनों में मुफलिसी के दौर में उन्होंने इटावा की कचहरी में टाइपिस्ट का काम करने से लेकर सिनेमाघर तक में नौकरी की। अंततः लम्बी बेकारी बाद दिल्ली जाकर सफाई विभाग में टाइपिस्ट की नौकरी की, पर वहाँ भी लम्बे समय तक नहीं टिक पाये। फिर दिल्ली से कानपुर आकर यहाँ के डी.ए.वी कॉलेज में क्लर्की की और उसके बाद बाल्कट ब्रदर्स नाम की एक प्राइवेट कम्पनी में पाँच वर्ष तक टाइपिस्ट का काम किया। नीरज आरंभ से ही जिजीविषा से भरे हुए थे। नौकरियाँ हाथ में आती गयीं और छूटती गयीं, पर उन्होंने जीवन के सफर को रुकने न दिया। नौकरी करने के साथ ही प्राइवेट परीक्षाएँ देकर 1949 में इण्टरमीडिएट, 1951 में स्नातक और 1953 में प्रथम श्रेणी में हिन्दी साहित्य से परास्नातक की डिग्री ग्रहण की। इसी बीच मेरठ कॉलेज, मेरठ में हिन्दी प्रवक्ता के पद पर भी कुछ समय तक अध्यापन कार्य किया, किन्तु कॉलेज प्रशासन द्वारा उनपर कक्षाएँ न लेने व रोमांस करने के आरोप से नाराज 'नीरज' ने स्वयं ही नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। उसके बाद से अलीगढ़ के धर्म समाज कॉलेज में हिन्दी विभाग के प्राध्यापक नियुक्त हुए और अंततः मैरिस रोड जनकपुरी अलीगढ़ में स्थायी आवास बनाकर रहने लगे। नीरज का आरंभिक सफर देखकर मुंशी प्रेमचन्द की याद आती है, जिन्हें बचपन से ही परिवार का सुख नहीं मिला और इसी तरह वे भी स्कूल–कॉलेजों में नौकरियाँ करते रहे, छोड़ते रहे, पर अपनी साहित्यिक जिजीविषा को बरकरार रखा। तभी तो कहते हैं कि सोना तपने के बाद ही खरा होता है और यह बात नीरज पर भी लागू होती है। नीरज सदैव फक्कड़ बने रहे और इसके बीच ही अपने गीतों से लोगों का मन मोहते रहे। नीरज जी की ये पंक्तियाँ इसकी गवाह हैं–

''मत उसे ढूँढ़िये शब्दों के नुमाइश घर में,
हर पपीहा यहाँ 'नीरज' का पता देता है।''

———

''अब के सावन में शरारत ये मेरे साथ हुई
मेरा घर छोड़कर सारे शहर में बरसात हुई।''

नीरज जी के काव्यात्मक व्यक्तित्व में हिन्दी संसार अच्छी तरह परिचित है। उनके गीतों का आवेग बरबस ही सभी को साथ बहा ले जाता है। जन समाज की दृष्टि में वह मानव प्रेम और दर्द के अन्यतम गायक है। प्रेम ऐसा जो पवित्र और शाश्वत है और दर्द ऐसा जो अव्यक्त है। तभी तो वह अपने गीतों में व्याप्त आध्यात्मिक अनुभूति को परत दर परत उकेरते और कहते थे–''प्रेम को न दान दो न दो दवा, प्रेम तो सदैव ही समृद्ध है।'' तभी तो लोगों को नीरज के गहरे गीतों में जन–जन के कवि कबीर के दर्शन होते हैं–

''छिप छिप अश्रु बहाने वालों
मोती व्यर्थ लुटाने वालों
कुछ सपनों के मर जाने से,
जीवन नहीं मरा करता है।''

नीरज की पहली काव्य–कृति 'संघर्ष' की भूमिका में प्रख्यात

समालोचक डॉ. गुलाबराय ने लिखा था–''नीरज जी के रुदनमय गानों में निराशा की अंतर्धारा स्पष्ट रूप से झलकती है और वह जीवन के कटु अनुभवों से निःसृत हुई प्रतीत होती है। जहाँ अमृत ही विष बन जाय, वहाँ निराशा का होना स्वाभाविक
ही है। अमृत को विष बनानेवाली कौन–सी घटनाएँ हैं और कहाँ तक वे सत्य हैं, यह उनके वैयक्तिक जीवन का प्रश्न है। किंतु इन कविताओं में एक ठेस का अनुमान होता है।'' कभी भदन्त आनन्द कौसल्यानन ने कहा था कि नीरज में 'हिन्दी का अश्वघोष' बनने की क्षमता है, तो दिनकर के अनुसार वे 'हिन्दी की वीणा' है। अन्य भाषा–भाषियों के विचार में वे 'सन्त–कवि' हैं और कुछ आलोचक उन्हें 'निराश–मृत्युवादी' मानते हैं। अपने बारे में उनका यह शेर मुशायरों में खूब फरमाइश के साथ गुना जाता रहा–

''इतने बदनाम हुए हम तो इस जमाने में
लगेंगी आपको सदियों हमें भुलाने में
न पीने का सलीका न पिलाने का शऊर
ऐसे भी लोग चले आये हैं मयखाने में।''

नीरज अपने दौर के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि रहे, जिन्होंने अपनी मर्मस्पर्शी काव्यानुभूति तथा सरल भाषा द्वारा हिन्दी कविता को एक नया मोड़ दिया। उनकी प्रमुख काव्य कृतियों में संघर्ष, अंतर्ध्वनि, दर्द दिया, प्राणगीत, आसावरी, दो गीत, नदी किनारे, विभावरी, नीरज की पाती, लहर पुकारे, मुक्तकी, गीत भी अगीत भी, इत्यादि का नाम लिया जा सकता है। आज अनेक गीतकारों के कण्ठ में उन्हीं की अनुगूंज है। कहना अतिशयोक्ति न होगा कि हरिवंश राय बच्चन जी के बाद नई पीढ़ी को उन्होंने सर्वाधिक प्रभावित किया। वैसे भी हिन्दी कवियों की नई पौध के लिये आदर्श रहे 'नीरज' के आदर्श प्रख्यात कवि हरिवंश राय बच्चन रहे। बकौल नीरज, "मैंने कविता लिखना किससे सीखा, यह तो मुझे याद नहीं, कब लिखना आरम्भ किया, शायद यह भी नहीं मालूम। हाँ इतना जरूर याद है कि गर्मी के दिन थे, स्कूल की छुटियाँ हो चुकी थीं, शायद मई का या जून का महीना था। मेरे एक मित्र मेरे घर पर आए। उनके हाथ में 'निशा निमंत्रण' पुस्तक की एक प्रति थी। मैंने लेकर उसे खोला। उसके पहले गीत ने ही मुझे प्रभावित किया और पढ़ने के लिए उनसे उसे माँग लिया। मुझे उसके पढ़ने में बहुत आनन्द आया और उस दिन ही मैंने उसे दो–तीन बार पढ़ा। उसे पढ़कर मुझे भी कुछ लिखने की सनक सवार हुई। इसी प्रकार बच्चन से जुड़ा एक अन्य किस्सा बयान करते हुए 'नीरज' जी ने कहा था कि उस वक्त मेरी उम्र करीब 17 बरस रही होगी। हम लोग बांदा में एक कवि सम्मेलन में शिरकत के लिये बस से जा रहे थे। बस खचाखच भरी थी और मुझे सीट नहीं मिली थी। उस वक्त बच्चन जी ने मुझे अपनी गोद में बैठने को कहा था। मैं बहुत खुशकिस्मत हूँ कि मुझे उनसे इतना स्नेह मिला। वर्ष 1944 में प्रकाशित अपनी पहली काव्य–कृति 'संघर्ष'
में नीरज ने लिखा, 'बच्चन जी से मैं बहुत अधिक प्रभावित हुआ हूँ। इसके कई कारण हैं, पहला तो यही कि बच्चन जी की तरह मुझे भी जिन्दगी से बहुत लड़ना पड़ा है, अब भी लड़ रहा हूँ और शायद भविष्य में भी लड़ता ही रहूँ। 'संघर्ष' में नीरज ने बच्चन जी के प्रभाव को ही स्वीकार नहीं किया, प्रत्युत् यह पुस्तक भी उन्हें समर्पित की थी।

साहित्यकारों का फिल्मी दुनिया की ओर आकर्षण आम बात है। कभी प्रेमचंद ने भी फिल्मी दुनिया में कदम रखना चाहा था। नीरज जी का भी फिल्मी दुनिया से अभिन्न संबंध रहा। साहित्य के उज्ज्वल नक्षत्र रहे 'नीरज' जी का मानना था कि अगर दुनिया से रुखसती के वक्त आपके गीत और कविताएँ लोगों की जबान और दिल में हों तो यही आपकी सबसे बड़ी पहचान होगी। इसकी ख्वाहिश हर फनकार को होती है। कवि सम्मेलनों में अपार लोकप्रियता के चलते नीरज को बम्बई के फिल्म जगत ने गीतकार के रूप में नई उमर की नई फसल के
गीत लिखने का निमन्त्रण दिया, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। पहली ही फिल्म में उनके लिये कुछ गीत जैसे ''कारवाँ गुजर गया गुबार देखते रहे'' और ''देखती ही रहो आज दर्पण न तुम, प्यार का यह मुहूर्त निकल जायेगा'' बेहद लोकप्रिय हुए, जिसका परिणाम यह हुआ कि वे बम्बई में रहकर फिल्मों के लिये गीत लिखने लगे। फिल्मों में गीत लेखन का उनका यह सिलसिला मेरा नाम जोकर, शर्मीली और प्रेम पुजारी जैसी अनेक चर्चित फिल्मों में कई वर्षों तक जारी रहा। देवानंद ने अपनी फिल्म 'चार्जशीट' के लिए उनसे 'सुफियाना' गीत भी लिखवाया था। फिल्मों में सर्वश्रेष्ठ गीत लेखन के लिए उन्हें लगातार तीन बार फिल्म फेयर पुरस्कार भी मिला। यद्यपि उनका फिल्मी जगत का सफर सिर्फ पाँच साल का ही रहा, लेकिन मरते दम तक लिखने के ख्वाहिशमंद इस अदीब को इस अवधि में लिखे गए 'कारवाँ गुजर गया गुबार देखते रहे' और 'जीवन की बगिया महकेगी' जैसे अमर गीतों के लिए अंत तक रॉयल्टी मिलती रही। 'लिखे जो खत तुझे', 'ए भाई जरा देख के चलो', 'दिल आज शायर है', 'फूलों के रंग में' और 'मेघा छाए आधी रात' जैसे सदाबहार नगमों के रचयिता नीरज का मानना था कि सचिनदेव वर्मन के संगीत ने इन गीतों को यादगार बनाया और इसी वजह से देश–विदेश में मेरे गीतों की रॉयल्टी बढ़ गई।

गोपालदास नीरज को अपने कृतित्व के लिए कई पुरस्कार व सम्मान प्राप्त हुए। वे पहले व्यक्ति थे, जिन्हें शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में भारत सरकार ने दो–दो बार सम्मानित किया, पहले पद्मश्री (1991) से, उसके बाद वर्ष पद्मभूषण (2007) से। उत्तर प्रदेश सरकार ने उन्हें 'यश भारती' (1994) और उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान ने उन्हें राज्य के सर्वोच्च साहित्य पुरस्कार 'भारत–भारती' (2012) से सम्मानित किया। उत्तर प्रदेश सरकार ने उन्हें भाषा संस्थान का अध्यक्ष नामित कर कैबिनेट मन्त्री का दर्जा भी दिया था। यही नहीं, फिल्मों में सर्वश्रेष्ठ गीत लेखन के लिए उन्हें लगातार तीन बार फिल्म फेयर पुरस्कार भी मिला।

जीवन के अंतिम दिनों में शारीरिक रूप से अस्वस्थ होने पर भी नीरज जी का मन बेहद जीवंत रहा–'विश्व चाहे या न चाहे, लोग समझे या न समझे आ गए हैं हम यहाँ तो गीत गाकर ही उठेंगे।'' आखिरकार 19 जुलाई, 2018 को उन्होंने इस दुनिया को अलविदा कह दिया। वे अक्सर कहा करते थे कि मैं तो अपने को जीवन का कवि मानता हूँ। क्योंकि जन्म भी है मृत्यु भी है। दोनों चीजें हैं। अगर जीवन का समग्र रूप दिखाना चाहते हो, तो जीवन और मृत्यु दोनों को लेना पड़ेगा। संसार में सुख भी है दुख भी है, जय भी है पराजय भी है, अंधकार–प्रकाश, गरमी–सर्दी इसी प्रकार जन्म–मृत्यु। आदमी जिस दिन जन्म लेता है, उसी दिन से वह मरना शुरू होता है। अगर पुराना नहीं मरेगा, तो नया कहाँ से पैदा होगा?

''प्रतिक्षण नूतन जन्म यहाँ पर
प्रतिक्षण नूतन मृत्यु है
देख आँख मलते–मलते ही
बदल गया सब दाँव है।''

वार्ता

नवगीत साहित्य का यथार्थ

(डॉ. जयशंकर शुक्ल से अनिल कुमार पाण्डेय की वार्ता)

जय शंकर शुक्ला
दिल्ली
मो0 9968235643

अनिल कुमार पाण्डेय : आपने अपने काव्य लेखन की शुरुआत कविता से प्रारंभ किया है, यह आपके साहित्यिक यात्राओं से स्पष्ट होता है। क्या यह पूर्णतया सत्य है?

अनिल जी! रचनाकार की शुरुआत देखने की प्रक्रिया में दो आयाम आते हैं–पहला प्रकाशन, दूसरा लेखन। आपने मेरी रचनाधर्मिता के क्रम को जानने के लिए प्रकाशन का सहारा लिया है और पाठक, शोधार्थी, आलोचक–ये सभी इसी तरह से अपना मंतव्य स्थापित करते हैं। अनिल जी! आपने इस वार्तालाप के माध्यम से मुझे वह सत्य सामने लाने का अवसर दिया है, जो शायद ही सामने आ पाता। भाई मेरे द्वारा लिखी गयी पहली पुस्तक गद्य विधा के उपन्यास रूप में रही है, जिसका नाम 'अधूरा सच' रहा तथा यह सन् 1986 की गर्मियों की छुट्टियों में लिखी गयी। इसका प्रकाशन अब यानी 2016 में लगभग तीस साल बाद संभव हो पा रही है। कवि बनने की चाहत, प्रकाशन की लिप्सा तथा गोष्ठियों में प्रस्तुतीकरण की अभिलाषा ने कविताओं को रचने तथा प्रकाशित करवाने की ओर प्रेरित किया, जिसके फलस्वरूप 2005 में प्रथम काव्य संग्रह 'किरण' के प्रकाशन के बाद काव्य विधा में प्रकाशित लगभग सात पुस्तकें मेरे प्रोफाइल में जुड़ चुकी हैं।

अनिल कुमार पाण्डेय : नवगीत की तरफ आपका रुख कैसे हुआ? कहीं ये भाव तो नहीं था कि इस नवीन विधा में अन्य विधाओं की अपेक्षा स्पेश अधिक है, प्रसिद्धि अधिक है?

मित्र! आपके प्रश्न मेरे अन्दर तक जाकर अतीत को एक बार पुनः साकार कर रहे हैं। मैं मूलतः गीतकार हैं और नवगीत गीत के परिष्करण की साक्षी है। प्रारंभिक तुकबंदियों में बड़े–बड़े बहर की लम्बी कविताएँ मैं लिखा करता था। वार्णिक और मात्रिक का भेद जानने के बाद उनकी गणना करने की प्रक्रिया को जाना व समझा। अब बहर अपेक्षाकृत छोटे और संतुलित होने लगे। मुखड़ा, अंतरा और टेक को अच्छी तरह जान व समझ लिया। इनमें अन्त्यानुप्रास हेतु शब्द अक्षर एवं ध्वनि की परिभाषा और भूमिका को आत्मसात करते हुए शिल्प की विविधिता व विलक्षणता से अच्छी तरह परिचित हुआ। अब मात्राओं की संख्या पूरे गीत में एक जैसी रखी, मुखड़े व अंतरे में अलग–अलग भी रखी। मित्र! ये रही रूप (बतंजि) की बात, जिसे शैल्पिक विधान भी कहा जाता है। शिल्प में मंझ जाने के बाद कथ्य (जमगज) की बात आती है, जहाँ विविधता रचनाकार की रचना प्रक्रिया को अलग आयाम प्रदान करती है। नई कविता की भाँति उसके उद्‌भव काल से ही (नई कहानी, नया नाटक नया निबंध एवं नवगीत–नए गीत) का भी उद्‌भव माना जाता है। ये बहस की बात है कि वे कौन–से कारण रहे, जिनके परिप्रेक्ष्य में विगत 70 सालों से नवगीत को हिन्दी काव्यधारा में हाशिए पर डाल दिया गया। अनिल जी, इस समय नवगीत अपने चौथे चरण में विकास की यात्रा कर रहा है। एक गीतकार द्वारा नवगीत को पकड़ना, साधना एवं रचना करना कठिन अवश्य है, असंभव नहीं। निराला जी के कथन–'नव गति नव लय ताल छंद नव' को युगबोध समकालीनता एवं रचनाधर्मिता के आधार पर गीतकार द्वारा साध लिया जाना, उसे नवगीतकार बनाता है। आश्वस्ति एवं प्रसन्नता का विषय है कि मैं ऐसा कर पाया हूँ। गीत नवगीत में एक रचनाकार अपने मंतव्य को मर्यादित ढंग से व्यक्त कर सकता है। मैंने नया शिल्प, नई शैली, नये रूपक, नया कथ्य, नये बिम्ब, नये प्रतीक, प्रस्तुत–अप्रस्तुत विधान की नयी परिणति के साथ नवगीत लिखे, जिनके लिए मेरी रुचि, रुझान, अभिवृत्ति जिम्मेदार है, न कि स्पेस या प्रसिद्धि को ध्यान में रखकर ऐसा करने का प्रयास किया है।

अनिल कुमार पाण्डेय : कविता से नवगीत में आगमन एक साहित्यिक यात्रा का दिग्दर्शन कराता है। यह युग छंदमुक्त कविता का था, यह जानते हुए भी आप छांदस कविता की तरफ क्यों उन्मुख हुए?

अनिल जी! मेरा लेखन मूलतः रागात्मक रहा है। मैं मूलतः छंद की अवधारणा का पोषक हूँ, आपका प्रश्न युग परिवर्तन को रेखांकित करनेवाला है। मित्र, उत्तर छायावाद के सामानांतर प्रगतिशील काव्यधारा, प्रयोगवादी काव्यधारा, नई कविता आन्दोलन या समकालीन काव्यधारा के प्रवर्तक कवि उत्कृष्ट गीतकार थे। उनके द्वारा न केवल हिन्दी साहित्य के काव्य रूप में एक नवीन आन्दोलन का सूत्रपात किया गया, जिसके माध्यम से उन्होंने हिन्दी साहित्य को विश्व साहित्य से जोड़ना चाहा, बल्कि उन्होंने गीत से नवगीत तक की विधा के प्रारंभिक दौर के सशक्त हस्ताक्षर थे। अगर उनका कहीं विरोध था, तो वह रूढ़ियों, परम्पराओं एवं मंच से था। जितना उन्होंने छांदस रचनाकारों व उनकी रचनाधर्मिता की अवहेलना की, प्रत्युत्तर में छंद धर्मी रचनाकारों ने उन्हें कोसने में कोई कसर नहीं रखी। हमें उस समय अपने वैयक्तिक हित, अस्मिता एवं

विभिन्नता को परे रखकर समग्र रूप से हिन्दी साहित्य की काव्यधारा का अमिट योग था, पर अफसोस हम ऐसा न कर सके। अनिल जी! यदि हम ऐसा कर पाते, तो नवगीत की जो ऊँचाई आज हम पाँचवें चरण में देख पा रहे हैं, वह ऊँचाई पहले या दूसरे चरण पचास या साठ के दशक में प्राप्त कर पाते।

अनिल कुमार पाण्डेय : नवगीत व नयी कविता में क्या भेद हो सकता है, क्या यही भेद पारंपरिक गीत व नवगीत में भी है? विषय व कथ्य के आधार पर स्पष्ट करें?

अनिल कुमार पाण्डेय : नवगीत व नयी कविता दोनों ही विधाएँ अपनी पारंपरिक मान्यताओं से मुक्त होने के लिए संघर्ष करती नजर आ रही हैं; भाव पक्ष से लेकर कला पक्ष तक के इस संघर्ष पर आपके क्या विचार है?

नई कविता एवं नवगीत हिन्दी काव्यधारा के नवीनतम परिदृश्य में बिल्कुल नये हैं। इनके प्रारंभ के साथ इनके लेखन एवं इनकी आलोचना के लिए विधान रचे गए, जहाँ लेखन के लिए विषम भाषा–शैली, शब्दावली, नए मुहावरे और बिम्बों प्रतीकों का नए परिवेश में दिग्दर्शन किया गया, वहीं इनकी आलोचना के लिए नए उपकरणों (जववसे) का भी निर्माण किया गया, जिनके आधार पर साहित्य समृद्धि की ओर अग्रसर हो सके। इसी तरह नवगीत में भी इसके कथ्य एवं रूप के विभिन्न विधानों की संरचना की गयी। आलोचना के उपकरण
(जववसे) यहाँ भी विकसित किए गए, लेकिन खेद का विषय रहा कि नवगीत ने अपने लिए आलोचकों की रिक्तता देखी। नई कविता के आलोचक अपनी बढ़ाई सीमा में ही कार्य–व्यापार करते रहे। नवगीत के विकास, शोध एवं विस्तार में अपेक्षाकृत संभावना नहीं देख पाने का सबसे बड़ा कारण इस विधा में आलोचकों का अभाव रहा है, जिसके कारण चर्चा–परिचर्चा प्रभावित हुई। सत्तर के दशक में विश्वनाथ द्वारा लिखे गए नवगीत पर सकारात्मक आलोचक–निबंध में बड़े पैमाने पर चर्चा–परिचर्चा की शुरुआत की। नवगीत में आलोचक न होने का एक बड़ा कारण और भी है कि नवगीतकार नवगीत विधा से भी ऊँचे हो गए। विधा की श्रेष्ठता की जगह पर रचनाकार श्रेष्ठता ने व्यक्ति–पूजा को आगे बढ़ाया, परिणामतः यह हुआ कि किसी रचना पर कोई टिप्पणी उस व्यक्ति पर टिप्पणी मान ली जाती थी और वो नवगीतकार गिरोह बंद होकर आलोचक के पीछे पड़ जाते थे। हारकर वह आलोचक अपने लिए नए ठाँव की तलाश कर लेता था। अनिल जी, इसका सबसे बड़ा शिकार में स्वयं हुआ हूँ।

हर विधा में समझ के साथ परिवर्तन आना आवश्यक है भाव पक्ष एवं कला पक्ष–दोनों एक दूसरे से अंतर–संबंधित हैं। ऐसे ही रचना और रचनाकार दोनों संबंधित होते हुए भी पृथक् अस्तित्व रखते हैं। यह अस्तित्व की लडाई है मित्र! आदिकाल से परिवर्तन समय की माँग है, जिसने अपने को जितने समय के अनुरूप बना लिया, देश काल व वातावरण द्वारा स्वीकार किया गया, अन्यथा पीछे छूट गया।

अनिल कुमार पाण्डेय : आज के गीत कवि भावुकता व स्वप्रियता के शिकार हैं; कमोबेश यही बात नवगीतकारों में भी देखी जा रही है। फिर रचना के स्तर पर इन्हें कैसे अलग करेंगे?

रचनाकार एवं रचना विधा दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। रचना विधा अपने सृजनकर्ता को पहचान, सम्मान, प्रतिष्ठा प्रदान करती है। इस तरह से ऐश्वर्य धारक से बड़ी ऐश्वर्य प्रदाता हुई, जबकि वास्तविकता इसके उलटे हैं। रचनाकार साधनावस्था से चलकर सिद्धावस्था तक पहुँचते–पहुँचते स्वयंभू बन जाता है। भले ही विधा ने उसे जन्म दिया हो, पाला हो, पोसा हो, नई उपाधियाँ प्रदान की हों, एक समय के बाद वह रचनाकार रचना विधा का जनक बन जाता है। ऐसे स्वनामधन्य स्वयंभू गीत ऋषि रचनाकारों का नाम मैं जानता हूँ, जिन्होंने अपने जीवन में चाहे जितने समझौते किए हो, परन्तु आज वे देवराज इंद्र के सिंहासन पर विराजमान हैं, जिनके खिलाफ या जिनकी रचना पर किसी भी तरह की टिप्पणी टिप्पणीकार के लिए आत्महत्या जैसा है। रचना के स्तर पर वे स्वयं–भू गीतकार, नवगीतकार स्वयं को दोहरा रहे हैं। ये स्वयं को शिखर पर होने की घोषणा करते हैं और प्रायोजित आलोचना लिखवाकर, छपवाकर अपने मुहीम को पुष्टि प्रदान करते हैं। इन्हें अलग करना किसी पराशक्ति के हाथ में हो सकता है, हमारे लिए यह कठिन है।

अनिल कुमार पाण्डेय : वैश्विक समस्याओं को लेकर नवगीतकार कितने सजग हैं, क्या यह प्रवृत्ति समय के साथ आगे बढ़ रही है अथवा हतोत्साहित हो रही है?

वैश्विक समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करना आज के रचनाकार को अति आवश्यक है, क्योंकि आज विश्वग्राम की अवधारणा साकार रूप ले रही है, जो इससे एकाकार नहीं कर पा रहे हैं, शायद कल को उन्हें याद रखना मुश्किल हो जाए। व्यक्ति की पहचान उसका काम है, न कि रुतबा। रचनाकर को उसके कथ्य में विविधता श्रेष्ठ बनाती है। आज का समाज समस्यामूलक समाज है। कवि का कार्य अनादिकाल से न सिर्फ समस्याएँ उठाना रहा है, बल्कि कई विश्व कवियों ने अपने–अपने ढंग से समस्याओं का समाधान भी दिया है। हम नवगीतकार इस विषय में बहुत पीछे हैं। हम सम्राट अशोक के वैभव का गायन तो करना चाहते हैं, पर पारमाणविक विभीषिका हमारे लेखन केंद्र में नहीं आती। हम चाँद पर जाना तो चाहते हैं, पर धरती की खुशबू हमारे लेखन के केंद्र में नहीं आ पा रही है।

अनिल जी! प्रवृत्ति का आगे बढ़ना या हतोत्साहित होना परिवेश निर्माण पर निर्भर है, जिसके लिए कोई भी प्रयास नहीं किया जा रहा है।

अनिल कुमार पाण्डेय : नवगीतकारों ने सदैव राजनैतिक चेतना व युग चेतना को अपने काव्य का हेतु बनाया है। यहाँ पर उनका स्वर विद्रोही होता है, ऐसा क्यों है?

जब भी कोई रचनाकार अपने मन के भावों को शाब्दिक परिणति देता है, तो ऐसी स्थिति में उसकी वैचारिक विभिन्नता उसके कथन का हेतु बनती है, ऐसे में एक रचनाकार अपने आस–पास हो रही घटनाओं से अप्रभावित रहे, ऐसा संभव प्रतीत नहीं होता। हर

व्यक्ति कुछ और होने से पहले एक व्यक्ति है, उसका एक समाज है, जहाँ वह अपने कार्य–व्यवहार निष्पादित करता है। जन चेतना इकाई के रूप में उस व्यक्ति के भी अधिकार प्रभावित होते हैं, अतः टिप्पणी स्वाभाविक है। इसीलिए राजनैतिक चेतना युग की माँग होती है। राजनैतिक चेतना में इसे प्रभावित करनेवाले कारक सामाजिक ताने–बाने से ही निकलते हैं, जिनका हर व्यक्ति एक सदस्य होता है। रचनाकार चूँकि ज्यादा संवेदनशील होता है, संवेदनशीलता व्यक्ति के व्यवहार में परिलक्षित होती है, जो रचनाधर्मिता को प्रेरित करती है। चूँकि विकृति और विद्रूपता के कारण क्षुब्ध मनःस्थिति से निकलनेवाली पंक्तियाँ विद्रोहजन्य होती हैं, इसलिए सुकरात को जहर का प्याला पीना पड़ा।

अनिल कुमार पाण्डेय : नवगीत विधा में नारी रचनाकारों की कमी पर आप क्या कहेंगे? क्या यह विधा पाने हेतु कथ्य व रूप में उन्हें आकर्षित करने की क्षमता नहीं रखती?

पारंपरिक शिल्प, शैली एवं कथ्य में गीत जितना मोहक व आकर्षक है, प्रयोगवादी शिल्प, शैली एवं कथ्य में नवगीत उतना ही प्रायोगिक। स्त्री रचनाकार, पुरुष रचनाकार वास्तव में हमारा भ्रम है। सच्चाई यह है कि रचनाकर रचनाकार होता है, वह स्त्री अथवा पुरुष नहीं होता। यदि ऐसा होता तो हमारे हिन्दी साहित्य में रचनाकर नायक अथवा नायिका के स्वर में एक साथ बात करते हैं। पुरुषवादी मानसिकता, उत्तर आक्रामकता स्त्री रचनाकारों में भी देखी जा सकती है और इसी तरह स्त्री जन्य कोमलता, मृदुलता, सहजता पुरुषों के कथ्य एवं भावों में भी महसूस की जा सकती है। नवगीत में रचनाकार स्त्री हो, वो कम हैं, शून्य नहीं।

अनिल कुमार पाण्डेय : ग्राम्य चेतना व ग्राम्य दर्शन आज के कवियों का प्रिय विषय है, जबकि लिखनेवाले कवि शहरी हैं, क्या वे गाँवों के चित्रण में वस्तुनिष्ठा रख पाते हैं?

भारत गाँवों का देश है, जो तेजी से कस्बों, शहरों एवं महानगरों के देश में बदलता जा रहा है। यहाँ गाँव के युवा रोजगार की तलाश में शहरों की ओर रुख करते हैं। यही युवा कालांतर में इंजीनियर, डॉक्टर, प्रशासक, प्रोफेसर, वैज्ञानिक आदि के साथ–साथ लेखक और कवि भी बनते हैं। अब चूँकि उनका बचपन, किशोरावस्था गाँव में बीता है, इसलिए वह यादें उसके साथ आजन्म रहती हैं। एक घटना बताऊँ आपको–2013 ई. में चैम्बर ऑफ कामर्स मेरठ शहर में एक पुस्तक लोकार्पण में मुझे विशिष्ट अतिथि के रूप में सम्मिलित होने का अवसर मिला। पुस्तक का शीर्षक था–'गाँव वाला घर' तथा रचनाकार थे शिवानन्द सिंह 'सहयोगी'। लगभग दो सौ विद्वान रचनाकारों के मध्य अपना आलोचनात्मक आलेख पाठ करते हुए मैंने 'सहयोगी' जी से कुछ प्रश्न पूछे। आप गाँव से बाहर आजीविका के सन्दर्भ में शहरों में कबसे प्रवास कर रहे हो, गाँव वर्ष में आपका कितनी बार जाना होता है? गाँव की पुरानी धरोहरों को आप किस रूप में पाते हो? क्या आज भी गाँव में कुँए, पनघट, तालाब, मन्दिर आदि उसी पुरानी स्थिति में हैं? खेतों, बागों की क्या स्थिति है? जवाब में उन्होंने प्रत्याशित अनभिज्ञता जाहिर की एवं अकस्मात् बोल उठे–मैंने तो इस तरह से सोचा ही नहीं था।

अब बारी मेरी थी, संवाद रोचक था और पराकाष्ठा पर था। महोदय! आपने जिस गाँव के विषय में लिखा है, वह आपमें जी रहा है, आपने कभी उसमें जिया था, आज गाँव का वह पुरातन स्वरूप या तो घुट–घुटकर जी रहा है अथवा दम तोड़ चुका है। चौपालों पर अब भजन, कीर्तन, प्रहसन, प्रवचन नहीं होते, बल्कि हर बच्चा अपने मोबाइल के साथ अपनी ही दुनिया में जी रहा है। व्यक्ति का अपना सम्मान बहुत बढ़ चुका है और वह किसी को भी कुछ नहीं समझता, रिश्ते बौने हो रहे हैं, सहयोग की भावना ख़त्म हो रही है, अपनत्व स्वार्थ की बेदी पर बलि चढ़ रहा है।

ऐसे में ग्राम चेतना या ग्राम उन्मुख रचनाओं या रचनाकारों की प्रतिबद्धता संदेह के घेरे में है।

अनिल कुमार पाण्डेय : आपने अपने नवगीत संग्रह 'तम भाने लगा' में विकृत होती महानगरीय संस्कृति पर कलम चलाई है। यह कैसे संभव हो पाता है?

एक रचनाकार के लिए अपने परिवेश से जुड़ाव जितना जरूरी है, उतना ही जरूरी घटनाक्रम व उसके परिणाम पर दृष्टिपात करना है। मैं पिछले बीस सालों से दिल्ली महानगरों में रह रहा हूँ। इसके पहले साढ़े छब्बीस साल जन्म स्थान जनपद इलाहाबाद के गाँव सैदाबाद में बिताए हैं। अब मेरे सामने अपने लिखने के केंद्र में वर्तमान और अतीत का कशमकश अक्सर चलता रहता है। हिंदी साहित्य की अन्य विधाओं, कविता, कहानी, लघुकथा, संस्मरण आदि में मेरे गाँव की मेरी यादें साकार रूप से चित्रित व अंकित हैं। नवगीत विधा में नवाचार के आग्रह को देखते हुए मैंने महानगरीय संस्कृति पर अपनी बेबाक कलम चलाई है। पेशे से शिक्षक होने के नाते मेरी दृष्टि त्रुटियों पर अधिक जाती है, अतः स्वाभाविक से विकृतियों को अपने काव्य का मूल स्वर बनाया है।

अनिल कुमार पाण्डेय : यथार्थ सम्प्रेषण व काल्पनिकता में समन्वय कैसे रख पाते हैं? कौन–सी विधा में आप यथार्थ को अधिक अच्छी तरह अभिव्यक्त कर पाते हैं?

साहित्य रचना यथार्थ व काल्पनिकता का संगम है। कोरा यथार्थ नीरस व उबाऊ होता है तथा काल्पनिकता आकाश कुसुम होती है। जीवन में दोनों का संतुलन व समन्वय आवश्यक है। हम रचनाकार हैं, सृजन हमारी पहचान है, जिसमें किसी के निजी व गोपन पलों को उद्घाटित करने का अधिकार हमें नहीं है, पर विषय चयन, परिवेश, नाम, घटना, व्यक्ति का नाटकीय रूपांतर देकर हम उस बात को सहजता से व्यक्त कर सकते हैं। अनिल जी! यथार्थ परंपरामूलक होता है, परिवर्तन इसका दूसरा नाम है। एक लेखक को इस बिंदु पर पूरी तरह सतर्क रहने की जरूरत है। उसे अपने व अन्य के जीवन से जुड़ी घटनाओं को उद्घाटित करने से बचना चाहिए। जहाँ यह बात सत्य है, वहीं यह भी ध्रुव सत्य है कि समष्टि की समस्याओं को सामने लाने के लिए घटनाक्रम का चित्रण वर्जित नहीं है।

मूलतः मैं नवगीतकार हूँ। प्रत्येक कवि अपने लिए विधा का

चयन स्वयं करता है, इसी प्रकार प्रत्येक विधा कथ्य केन्द्रित होती है। मैं अपने द्वारा रची जा रही समस्त विधाओं के सारे रूपों में स्वयं को सहज पाता हूँ।

अनिल कुमार पाण्डेय : समकालीन कविताओं व साहित्य की अन्य विधाओं में समकालीन विमर्शों पर खूब चर्चा–परिचर्चा हो रही है, क्या नवगीत विधा में भी यह चर्चा मूर्तमान है?

समकालीनता साहित्यिक चेतना का प्राण है। अतीत का महिमामंडन और भविष्य का कल्पित स्वरूप साहित्य को साहित्य नहीं रहने देता। समकालीनता समय सापेक्ष है। यह किसी एक युग का प्रतिनिधित्व नहीं करता, बल्कि यह वर्तमान का चित्र उपस्थित करता है, वहीं रचनाकार कालजयी एवं युग प्रवर्तक है, जो अपने युग को जीता है। समकालीनता हमें न केवल अद्यतन रखती है, बल्कि अतीत से परिचय कराकर भविष्य का खाका भी खींचती है, हमें विचार, व्यवहार, तुलना, कार्य, परिवेश व भाषा के स्तर पर समकालीन बने रहना होगा, तभी हम अपने रचनाकार धर्म को अच्छी तरह निभा पाएँगे ।

अनिल कुमार पाण्डेय : नवगीत, गीत की एक विधा है या भिन्न रूप से स्वतंत्र विधा, क्या स्वयंभू नवगीतकार अपने को विशेष दर्शाने के लिए नवगीत का आश्रय नहीं ले रहे हैं?

आपके इस प्रश्न का उत्तर हमें पूर्व में विस्तार से दिया है। हिंदी साहित्य की सारी विधाएँ एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। नवगीत में नव विशेषण के साथ गीत का जुड़ाव इसे गीत के अगली पंक्ति की रचनाओं में सम्मिलित कराता है। नवगीत बहुविधि होते हैं, नवीनता के परिचायक होते हैं। शिल्प, कथ्य एवं प्रवाह में नवता के आग्रही होते हैं। इतना सब होने पर भी यहाँ बोझिल भाषा, जटिल बिम्ब चमत्कार की प्रत्याशा वाले बिम्ब वर्जित हैं। खेद का विषय है कि कुछ तथाकथित नवगीत प्रवर्तक स्वयंभू कवि तत्सम शब्दावली के साथ बोझिल बिम्बों एवं चमत्कारिक प्रतीकों के माध्यम से स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने की जुगत में लगे रहते हैं।

अनिल कुमार पाण्डेय : हिंदी साहित्य की लगभग सभी विधाओं में आपने कुछ–न–कुछ लिखा व कहा है, नवगीत विधा में सक्रियता व शीर्ष नवगीतकार के रूप में आप कैसे स्वयं को स्थिर रख पाते हैं?

हिंदी साहित्य की विधाएँ हमारे लिए अपनी अभिव्यक्ति के लिए एक माध्यम के रूप में है। गद्य एवं पद्य दोनों प्रमुख विधाओं के अनेक रूपों में अभिव्यक्ति देने का अवसर मुझे नियति ने प्रदान किया है, मैं उसके लिए उसका आभारी हूँ। आभारी हूँ उन पाठकों का, आलोचकों का जिन्होनें आवश्यकतानुरूप मुझे मेरी कमियाँ व विशेषताएँ दोनों बताते हुए प्रेरित किया है। पाण्डेय जी, आपने मुझे इस अपने उन सत्यों के उद्घाटन का मंच प्रदान किया है, जिन्हें मैं कहीं और अभिव्यक्त नहीं कर सकता था। इसके लिए मैं आपका अति आभारी हूँ। अभ्यास करते करते विभिन्न विधाओं में अपनी बात कहने का हुनर विकसित किया जा सकता है और मैं अभी उस प्रक्रिया में चल रहा हूँ। नवगीतकार के रूप में मैंने लगभग दो दशकों का समयांतराल जिया है। अपने पूर्ववर्तियों को पढ़ा भी है और उनपर लिखा भी है। समकालीनों के साथ भी मेरी ऐसी ही भूमिका रही है। इस कार्य ने मेरी अन्दर सीखने की एक ललक पैदा कर दी तथा साथ ही साथ इस कृत्य ने मुझमें एक आलोचनात्मक दृष्टि का सूत्रपात भी किया है। मैं नवगीत विधा की पाठशाला का एक विद्यार्थी हूँ और अब भी सीख रहा हूँ, इससे अलग कुछ भी कहना मुझे संकोच में डाल रहा है।

अनिल कुमार पाण्डेय : 'तम भाने लगा' संग्रह की चर्चा परिचर्चा ने आपको एक उत्तम मुकाम दिया है, अपनी आगामी योजनाएँ एवं कृतियों के बारे में कुछ बताएँ?

'तम भाने लगा' मेरे नवगीत का नवीनतम संग्रह है। हालाँकि इस संग्रह का प्रकाशन 2015 में हुआ। 'तम भाने लगा' एक ऐसा संग्रह है, जिसपर अनेक मंचों पर चर्चा–परिचर्चा हुई है और अब भी हो रही है। आकाशवाणी दिल्ली के इन्द्रप्रस्थ स्टेशन पर शब्द संसार में इसकी समीक्षा की जा चुकी है। दूरदर्शन के राष्ट्रीय नेटवर्क पर भी डॉ अमरनाथ 'अमर' के निर्देशन में पत्रिका कार्यक्रम के अंतर्गत 'तम भाने लगा' की समीक्षा प्रसारित हो चुकी है। डेढ़ दर्जन से ज्यादा आलोचनात्मक आलेख इस पुस्तक पर अबतक लिखे जा चुके हैं, जिन्हें सम्पादित कर 'तम भाने लगा' के मौजूदा कलेवर से दुगने कलेवर का ग्रन्थ छापा जा सकता है। संपादक के रूप में यदि आप हों, तो मुझे खुशी होगी। विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में भी इसकी समीक्षाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। आगे की योजनाएँ नियति के अधीन है। मैं माध्यम हूँ, कर्ता नहीं।

अनिल कुमार पाण्डेय : नये रचनाकारों को आप क्या सन्देश देना चाहेंगे? आज का रचनाकार रातोंरात महान व श्रेष्ठ हो जाना चाहता है, क्या यह संभव है?

अनिल जी! मैं स्तब्ध हूँ, आपने मुझे पुराना कैसे मान लिया? भाई साहब! वो कौन–से मानक हैं, जिनके आधार पर आप नये–पुराने की पहचान करते हैं? मैं साहित्य रूपी उपवन का सबसे अदना पौधा हूँ। अब आप मुझे कैसे इतना वरिष्ठ बना रहे हैं, मेरी समझ से परे है। चलिए, इसपर एक बार फिर से विचार करियेगा।

आज का रचनाकार मेहनत पर नहीं, व्यक्ति पूजा पर विश्वास करता है। शार्टकट की तलाश में वह नए शीर्ष गढ़ने की ओर प्रयत्नशील होता है। यह अफसोस जनक है। संसार में परिश्रम ही एकमात्र सफलता की कुंजी है। इस बात को जितनी जल्दी मान लिया जाय, उतना ही भला साहित्य का भी होगा और साहित्यकार का भी होगा। मैं अपने साथियों से इतना ही कहना चाहूँगा कि वह सदैव सीखने को तत्पर रहें और जितना हो सके पढ़ें।

शेष अनिल जी! एक बार पुनः आपका आभार, आपने मुझे अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए समय व मंच दिया।

आलेख

साहित्य में अवसरवाद

ज्ञानीचोर शोधार्थी
कवि साहित्यकार
मु.पो.–रघुनाथगढ़, सीकर राजस्थान
मो. 9001321438

साहित्य में अनेक वाद–विवाद हुए, उनके निष्कर्ष से साहित्य में अनेक नये मानदंड भी स्थापित हुए, जो साहित्य के स्वरूप को एक निश्चित दृष्टिकोण भी देते रहे हैं। न जाने कितने साहित्यिक मनीषियों ने इस अनवरत चलनेवाले साहित्य–यज्ञ में अपनी लेखनी से हविष्य देकर साहित्य की अखंड ज्ञान अग्नि को प्रज्वलित रखा। उन सभी ज्ञात–अज्ञात कवीश्वरों को नमन करता हूँ। किन्तु सवाल ये हैं कि क्या कभी साहित्य में अवसरवाद जैसी परम्परा रही नहीं? या जो अवसरवादी शैली या कवि थे, उनको कभी पहचाना ही नहीं गया या उनको अवसरवादी कहने में हिचक या डर है।

अवसरवाद जैसी धारा राजनीति में चल गई और साहित्य में कभी आई नहीं, ऐसा हो ही नहीं सकता। क्योंकि साहित्य राजनीति के पीछे नहीं, बल्कि राजनीति से आगे चलता है। साहित्य में अवसरवाद राजनीति से पहले आया साहित्येति– हासकार इसे न तो निश्चित कर सके और न ही इसका नामकरण कर सके। साहित्य में अवसरवाद को स्वीकार न करना–इसकी प्रवृत्तियों को न खोजना इतिहासकारों की सबसे बड़ी भूल है। साहित्यिक अवसरवाद के बीज हमें हिंदी के आदिकालीन साहित्य में मिल जाते हैं।

साहित्यिक अवसरवाद राजनीति के अवसरवाद से ज्यादा भिन्न नहीं है। राजनीतिक अवसरवादी लोग विकासवादी होने का ढोंग रचते हैं; किन्तु साहित्यिक अवसरवादी अपना ढिंढोरा पीटने के साथ–साथ यश और धन दोनों प्राप्त करना चाहते हैं। राजनीति का तो ये सामान्य लक्षण है। अवसरवाद साहित्य में किस प्रकार पहचाना जाए, इसके क्या लक्षण हैं तथा इसका परिणाम क्या होता है, इसका निर्धारण आज तक किसी ने नहीं किया।

साहित्य में अवसरवाद की पहचान जटिल नहीं है। अवसरवादी साहित्य में वो सम्पूर्ण साहित्य आ जाता है, जिसकी रचना कवि ने स्वच्छंद रूप से न करके अपनी उदरपूर्ति के आर्थिक साधनों को प्राप्त करने लिए किसी का आश्रय प्राप्त किया। अपने आश्रयदाता की मनोवृत्तियों को दृष्टिगत कर खुशामदी के लिए काव्य रचा। जिन रचनाकारों ने साहित्य को अवसर के रूप में देखकर जीवन में सुख–सुविधा जुटाने का उद्योग किया, वे सभी साहित्यकार अवसरवादी साहित्यकार हैं। ऐसा नहीं है कि अवसरवादी होना साहित्यकार को शोभा नहीं देता। कालगत और देशकालीन परिस्थिति साहित्य और साहित्यकार दोनों को निचोड़ देती है। एक सीमा तक उदरवृत्ति के लिए साहित्य का सहारा लेना एकपक्षीय सत्य है, किन्तु जीवनभर इसी उद्देश्य को अपनाए रहना साहित्य को पतन की ओर ले जाना है। साहित्य अवसरवाद के प्रमुख लक्षण–

१. स्वच्छंद प्रवृत्तियों से दूर रहना।
२. आश्रयदाता की झूठी प्रशंसा।
३. जनता की चित्तवृत्तियों को दूर रखना।
४. व्यक्तिनिष्ठ साहित्य रचना।
५. साहित्य रचना को साध्य न मानना।
६. साहित्य को अर्थ प्राप्ति के हेतु मानना ।
७. निदृष्ट विषयों का चयन।
८. विचारों की प्रधानता।
९ भावों की बजाय शब्दक्रीड़ा।
१०. मार्मिक स्थलों की उपेक्षा।
११. परानुभूति का अवलम्बन।
१२. अप्रासंगिक विषयवस्तु ।
१३. कालजयी विषयवस्तु न होना।

साहित्य में अवसरवाद कलात्मकता की ओट में छिपा है। आदिकाल में जहाँ देशकालीन परिस्थितियों से बँधकर कवि समाज वीरोचित रचना से उत्साह भर रहा था, वहीं शांतिकाल में भी वे उसी प्रवृत्ति का निर्वाह कर रहे थे। युद्धकाल न होते हुए भी काल्पनिक युद्ध की घोषणाओं से राजा का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर अपने पर राजकृपा का अवसर नहीं गँवाना चाहते। राजा के इर्दगिर्द ही मँडराना, राजमनोवृत्ति को साहित्य से पोषित कर जनता पर थोपना, उस समय की कवि–मनोवृत्ति थी। जन साहित्य किंचित्मात्र रचा गया। जिन कवियों ने आश्रय ग्रहण नहीं किया या आश्रय नहीं मिला, वो लोकजीवन में स्वतंत्र काव्य रचना करते और जनता का मनोरंजन करते। आश्रयदाता न मिलने से उनका साहित्य सुरक्षित नहीं रह सका। कवियों की जो रचनाएँ अवसरवादी नहीं हैं, उनको ही साहित्य इतिहास में उचित सम्मान मिला है।

भक्तिकाल का साहित्य पूर्णतः शुद्ध साहित्य है। भक्तिकाल में अवसरवादी प्रवृत्तियों का ठहराव–सा है। जितना भी साहित्य रचा गया, वो लौकिक जीवन के निकट का साहित्य है। स्वच्छंद प्रवृत्ति का दर्शन भी सबसे पहले भक्तिकालीन साहित्य में दिखता है। भक्त कवियों की रचनाएँ किसी प्रतिक्रिया के प्रति प्रदर्शन नहीं है। सहज प्रतिक्रिया का परिणाम और लोकजीवन में रहकर रचा जाने से ही इस काल का साहित्य स्वर्णयुगीन साहित्य है। अवसरवाद के लिए अवकाश नहीं था, ऐसा बिल्कुल नहीं है। आश्रयदाता तो उस समय भी थे, पर इस अवसरवाद पर जनरुचि का पहरा था। इसी कारण अवसरवादी लोग साहित्य में पैर नहीं पसार सके, जितना उस समय की राजव्यवस्था में फैला था।

भक्तिकाल की अवसरवादिता जो ठहरी हुई थी, उसे पूर्ण विस्तार रीतिकाल में मिला। मुगलकाल में जब शांति स्थापित हो गई तो युद्ध के बंधन ढीले पड़ गये। भक्ति भी ह्रासोन्मुखता की तरफ बढ़ने लगी। केन्द्रीय शासन व्यवस्था स्थापित होने से रियासतों के आपसी बेवजह होनेवाले युद्ध, सीमा विवाद भी थम गये। राजकार्य सीमित हो गया, ऐसे में भोगविलास की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। फलतः भोगवादी प्रतिक्रिया ने कवियों को एक बार फिर अवसर दिया। इस बार अवसरवाद ने अपनी जड़ें सामंतवाद के साथ–साथ समाज के उच्च मध्यमवर्ग तक जमा ली। जो कवि जितनी रसात्मकता के साथ जितने नग्न और उभरे मांसल चित्र खींच सका, वो उतना ही महान समझा गया। घनानंद, बोधा, ठाकुर, आलम इत्यादि रीतिमुक्त कवि अवसरवादी प्रवृत्तियों से निर्लिप्त विकसित स्वतंत्र चेतना के वाहक है। इनका काव्य व्यक्तिनिष्ठ होकर भी अवसरवाद की छाया से कोसों दूर है। जिस व्यक्तिनिष्ठ काव्य में भावों की समष्टि के विराट रूप मौजूद हो, वो काव्य साहित्य का अक्षय भण्डार है। रीतिबद्ध कवियों की वही रचनाएँ इतिहास में जगह और प्रसिद्धि पा सकी, जो अवसरवादी छाया के प्रभाव से मुक्त है। जो रचना राजाओं को प्रसन्न करने लिए लिखी गई, वो रचना साहित्य–सागर में उनके ही जीवनकाल में डूब गई। पाण्डित्य प्रदर्शन रचनाओं का नामोनिशान मिट गया। ऐसे कवियों के नाम भी लुप्त हैं, जिन्होंने अपनी प्रतिभा धन में डुबो दी।

केशव, चिंतामणि, मतिराम, देव, इत्यादि सदृश कवियों की अवसरवादिता ने साहित्य में आचार्यों के मण्डल पैदा नहीं होने दिये। रीतिबद्ध कवि अवसरवाद की उपजाऊ जमीन से फूटे अंकुर थे, जिनसे एक ही फसल ली जा सकी। अगली फसल के लिए इन अंकुरों से प्राप्त बीज किसी काम के नहीं थे। साहित्य की अगली पीढ़ी आधुनिक काल में रीतिमुक्त कवियों की कविताओं से उत्पन्न हुई।

आधुनिक काल में अवसरवाद के नये रूप सामने आये। आधुनिककाल का अवसरवाद भौतिकवाद की खोखली
नैतिकता से जुड़ा है। आधुनिक काल की अवसरवादी प्रवृत्ति के सम्बन्ध में कुछ कहना गलत तो नहीं है, लेकिन खतरा अवश्य है। जो कवि अभी साहित्य यात्रा पूरी कर चुके, उनके अवसरवादी प्रवृत्ति पर कहना जल्दबाजी होगी; क्योंकि अभी उनका पूरा मूल्यांकन नहीं हो पाया। हाँ, आजकल के नवोदित रचनाकार और प्रतिष्ठित कवि दोनों भंयकर अवसरवादी हैं। प्रतिष्ठित तो मार्ग से हटना नहीं चाहते। उनको सरकारें, पत्र–पत्रिकाएँ मोटा पैसा देती है, वो इस अवसर को नवोदित रचनाकारों से साझा करना अपमान समझते है और नवोदित रचनाकार बासी विषयों पर रचना का मोह रखते हैं। जयंती, दिवस, जन्म, सामयिक घटनाओं पर ज्यादा रचना करते हैं। सामयिक घटनाएँ कालांतर में अप्रासंगिक हो जाती हैं, तो उन विषयों की रचनाओं का क्या साहित्य को क्या लाभ?

दैनिक पत्रों, साप्ताहिक पत्रों, राष्ट्रीय मासिक पत्रिकाओं में अवसरवादी रचनाएँ छप रही हैं। साहित्य सागर में
इन क्षुद्र रचनाओं और रचनाकारों का कहाँ अस्तित्व होगा! जब मैं कभी–कभी साहित्यिक भावनाओं में बहकर नवोदित रचनाकारों को कह देता हूँ कि जयंती, दिवस,जन्म, बधाई, सामयिक घटनाओं पर रची गई कविताओं का क्या भविष्य हैं, तो वे बिदक जाते हैं और भला–बुरा कहने लग जाते हैं।

———

कविता

आम्रपाली

अनामिका,
मुजफ्फरपुर (9988729025)

था आम्रपाली का घर
मेरी ननिहाल के उत्तर
आज भी हर पूनो की रात
खाली कटोरा लिये हाथ
गुजरती है वैशाली के खंडहरों से
बौद्धभिक्षुणी आम्रपाली

अगल–बगल नहीं देखती
चलती है सीधी मानो खुद से बातें करती
शरदकाल में जैसे
(कमण्डल–वमण्डल बनाने की खातिर)
पकने को छोड़ दी जाती है
लत्तर में ही लौकी
पक रही है मेरी हर मांसपेशी
खदर–बदर है मेरे भीतर का
हहाता हुआ सत

सूखती–टटाती हुई
हड्डियाँ मेरी
मेरे कबूतर–जैसी
इधर–उधर फेंकी हुई मुझमें
सोचती हूँ क्या वो मैं ही थी
नगरवधू–बज्जिसंघ के बाहर के लोग भी जिसकी
एक झलक को तरसते थे?
ये मेरे सन–से सफेद बाल
थे कभी भौंरे के रंग के कहते हैं लोग
नीलमणि थीं मेरी आँखें
बेले के फूलों सी एक सफेद दंतपंक्ति
खंडहर का अर्द्धध्वस्त दरवाजा है अब जो
जीवन मेरा बदला, बुद्ध मिले
बुद्ध को घर न्योत कर
अपने रथ से जब मैं लौट रही थी
आर्यपुत्रो! क्योंकि भिक्खुसंघ के साथ
भगवान बुद्ध ने भात के लिए मेरा
निमंत्रण किया है स्वीकार
हे आम्रपाली!
सौ हजार ले और भात का निमंत्रण हमें दे
आर्यपुत्रो! यदि तुम पूरा वैशाली गणराज्य भी दोगे
मैं यह महान भात तुम्हें नहीं देनेवाली
मेरा यह उत्तर सुन वे लिच्छवी कुमार
चटकाने लगे उँगलियाँ
हाय, हम आमप्राली से परास्त हुए तो अब चलो
बुद्ध को जीतें
कोटिग्राम पहुँचे बुद्ध की प्रदक्षिणा
उन्हें घर न्योता
पर बुद्ध ने मान मेरा ही रखा
और कहा–रह जाएगी करुणा
रह जाएगी मैत्री
बाकी सब ढह जाएगा...
तो बहा काल–नंद में मेरा वैभव
राख की इच्छामती
रखा की गंगा
राख की कृष्णा–कावेरी
गरम राख की ढेरी
यह काया
बहती रही
सदियों
इस तट से उस तट तक
टिमकता रहा एक अंगारा
तिरता रहा राख की इस नदी पर
बना–ठना, बना ठना
तैरा लगातार
कुछ तरुण लिच्छवी कुमारों के रथ से
टकरा गया, मेरे रथ का
धुर–से–धुर, चक्के–से–चक्का, जुए–से–जुआ
लिच्छवी कुमारों को ये अच्छा कैसे लगता
बोले वो चीखकर
ऐ आम्रपाली क्यों तरुण लिच्छवी कुमारों के धुर से
धुर अपना टकराती है?
तैरी सोने की तरी
राख़ की इच्छामती
राख़ की गंगा
राख़ की कृष्णा–कावेरी

झुर्रियों की पोटली में
बीज थोड़े से सुरक्षित हैं
वो ही मैं डालती जाती हूँ
अब इधर–उधर
गिर जाते हैं थोड़े–से बीज पत्थर पर
चिड़िया का चुग्गा बन जाते हैं वे
बाकी खिल जाते हैं जिधर–तिधर
चुटकी भर 'हरियाली' बनकर

सुनती हूँ मैं गौर से आम्रपाली की बातें
सोचती हूँ कि कमंडल या लौकी या बीज कोष
जो भी बने, जीवन तो जीवन है
हरियाली ही बीज का सपना
रस ही रसायन है

कमंडल–वमंडल बनाने की खातिर
शरदकाल में जैसे पकने को छोड़ दी जाती
लत्तर में लौकी
पक रही है मेरी इस मांसपेशी, तो पकने दो
उससे क्या?
कितनी तो सुंदर है
हर रूप में दुनिया!

कहानी

सीमांकन

विवेक द्विवेदी 'रामेश्वरम्'
राजीव मार्ग, निरालानगर
रीवा (म.प.) मो.–09424770266

दो खेतों के बीच जो मेड़ है, असल झगड़े की जड़ तो यही मेड़ है। मेड़ आज की नहीं है, दरअसल किसी को पता ही नहीं है कि मेड़ किसने डलवायी है। दावे जो भी किये जाएँ, वे सभी झूठे साबित इसलिए हो जाते; क्योंकि गाँव का कोई भी बुजुर्ग यह न बता पाता कि किस पूरखे ने इस विशाल मेड़ को
डलवाया था। यह तो सभी कहते हैं कि पहले वहाँ पर एक बाँध था। कुछ लोग बताते है कि बाँध नहीं, तालाब था; जो भी रहा हो, बँटवारा होते–होते मेड़ धनपत और श्रीपत के हिस्से के बीच में आ गयी। मेड़ चौड़ी और ऊँची थी, लेकिन धनपत और श्रीपत दोनों हर साल जुताई के समय कुछ–कुछ हिस्से पर हल
चलवा ही देते। उसके बाद लट्ठ चलने की नौबत आ जाती। कई बार फौजदारी भी हुई। सीमांकन की बारी आती, तो बात टल जाती। दोनों के बँटवारे में मेड़ लिखी थी। धनपत का भाई गनपत तो अपने हिस्से की जमीन श्रीपत को बेचकर दूर हो गया था; लेकिन जब बेचा, तो पूरी मेड़ श्रीपत के हिस्से में लिखा दिया। किसी ने ध्यान ही नहीं दिया कि जमीन का रकवा कितना है।

ऐसे कई मेड़ों का विवाद गाँव में है; परन्तु यह मेड़ इसलिए चर्चा में रहती; क्योंकि धनपत के खानदान का सबसे बड़ा विरोधी श्रीपत ने खेत ही खरीद लिया था। कभी धनपत और गनपत उस परिवार से ताल्लुक रखते थे, जिसे जागीरदार कहा जाता था। इलाके में करवरिया परिवार का दबदबा था। तीन सौ एकड़ का काश्तकार परिवार पचास साल के अंतराल में भूमिहीन की श्रेणी में आ गया था। बँटते–बँटते इतना बँट गया था कि कई लोगों के पास घर बनाने की जमीन नहीं बची थी। कई लोग तो जमीन बेचकर खाते रहे। जिस जमीन में गाँव के जानवर चारा चरा करते थे, उसके पीछे लट्ठ चलने लगा था। धनपत के अलावा उस परिवार के कई लोग गाँव छोड़कर शहर में जा बसे थे। एक अकेला जागीरदार परिवार में धनपत बचा था, जो अपने हिस्से की जमीन को बचाकर रखा था। तब भी दस एकड़ जमीन में वह पंद्रह लोगों का उदर पोषण कर रहा था। उसके हिस्से में दो विधवा बहनों के अलावा भरा पूरा परिवार था । उसे पूरा विश्वास था कि मेड़ उसके ही हिस्से में है। मेड़ का रकवा मिलाने के बाद ही खेत की सीमा पूरी होती है।

तहसीलदार ने आदेश दे दिया था कि उस पूरे रकवे का सीमांकन किया जाए। सीमांकन का आदेश तो कई बार हुआ था, परन्तु हर बार टाल दिया जाता। धनपत को पता था कि जो विरोध करके सीमांकन नहीं होने देते उनकी भी जमीन श्रीपत कब्जियाए हुए हैं। यदि मेड़ धनपत के हिस्से में नप गयी तो पूरब तरफ कई खेत फँस जाएँगे। धनपत ने इस बार कड़ा निर्णय ले लिया था। सीमांकन कराकर ही दम लेगा। सीमांकन का आदेश लेकर पटवारी के पास पहुँच गया था। पहले तो पटवारी ने कहा कि करवरिया जी! बरसात आनेवाली है। अगले साल कर देंगे। हमारे कानूनगो साहब नहीं हैं। धनपत क्रोध से तमतमा गया था।

''मजाक बना रखा है। दस दिन के अंदर सीमांकन होगा। तुम्हारा जो खर्चा–पानी होगा, मैं दूँगा।'' पटवारी घुटा–पिटा आदमी था। उसे पता था, श्रीपत दुगुनी रकम देकर तहसीलदार को ही नाप देगा, पर मुख्य मंत्री के यहाँ से नया आदेश ही आ गया था। पूरे प्रदेश में आदेश प्रसारित हो गया था। सीमांकन आदेश के दिनांक से पंद्रह दिन के अंदर करना होगा। उसने दबी जुवान से कह दिया था।

''काका, दस हजार लगेंगे।'' पटवारी बोलकर सहम तो गया था। उसे पता था कि धनपत के चारो बेटे पूरे लठैत हैं। जागीरदारी की बू अभी गयी नहीं है, फिर बोलकर चुप रहा था धनपत भी थोड़ी देर तक चुप रहा था। दस हजार छोटी रकम नहीं थी यदि नहीं देता तो पटवारी लटका देगा। पर दस हजार आये कहाँ से? फिर धीरे से बोला था–दूँगा, मगर किश्त में दूँगा नाप सही होनी चाहिए। यदि नाप में गड़बड़ी हुई तो पटवारी साहब ठीक नहीं होगा। पटवारी रामाधार साकेत था। नम्बर एक का घूसखोर। कई बार पिट भी चुका था, परन्तु पैसा पाने के बाद सब भूल जाता। उसे एकाएक लगा था कि कम माँग लिये, पैसा तो तहसीलदार तक जाना है। कानूनगो तो सीमांकन के पहले ही आधा रखवा लेगा। तभी खेत में जंजीर घुमाने देगा। पटवारी ने दूसरी बार मुँह खोलने की कोशिश की, तो सामने धनपत के बड़े बेटे को देखकर चुप रह गया था। वह जानता था कि भीखम हत्या के जुर्म में जेल भी जा चुका है। गवाह के अभाव में छूट गया है। उसने विषय बदल दिया था।

''काका! मेड़ तो आपके ही हिस्से में है; लेकिन नपने के बाद क्या श्रीपत का कब्जा हटवा लोगे?

''सुन, रामाधार! एक–एक हाथ की जमीन का झगड़ा बढ़ गया है, तू तो जानता है कि मेड़ में एक एकड़ जमीन फँसी है। श्रीपत कितना भी बड़ा साहूकार होगा। उसकी वोटी–वोटी काट डालूँगा। यह मेड़ भारत और पाकिस्तान की सीमा बनी हुई है। यदि मैं झूठा निकलूंगा। तो खुशी–खुशी छोड़ दूँगा।''

रामाधार पटवारी जानता था कि धनपत बातें कुछ भी करे, लेकिन श्रीपत का कुछ बिगाड़ नहीं सकता। श्रीपत एक जगह खेत नहीं दबाया है। गाँव के कम–से–कम बीस लोगों के साथ उसका सीमांकन का विवाद चल रहा है। कभी गाँव में घोड़े पर चढ़कर गुड़ और नमक बेचने आया करता था, जिस तरह फिरंगी आये थे। मूलतः रहनेवाला पटना गाँव का था। फिर धीरे से सगौनी में उसने घर बनाने की जमीन

खरीदी। धीरे–धीरे उसका धंधा इतना फला–फूला कि बीस साल में चालीस एकड़ जमीन इसी गाँव में खरीद ली। पाँच बेटों में तीन तो पटना गाँव में रह गये। दो बेटों के साथ वह सगौनी में फलने–फूलने लगा था। पूरे गाँव को अपने कर्ज के नीचे दबा लिया था। दस बीस लुच्चे भी पाल लिया था। कहीं कुछ विवाद होता, तो उसके लठैत तैयार रहते। धनपत का परिवार कभी जागीरदार रहा होगा। आज तो घर बनाने की जमीन भी नहीं बच पायी थी। रईसी इतनी थी कि बैठकर खानेवाले उसी श्रीपत को गिरवी रखकर या फिर बेचकर ऐश करते रहे। एक अकेला धनपत अपने हिस्से की जमीन बचा पाने में सफल हुआ था। यह बात धनपत को भी पता थी कि श्रीपत से टकराने की हिम्मत आज आठ–दस गाँव में किसी की नहीं है। पटना और सगौनी में अकेली उसकी महाजनी नहीं चलती। बीस–पच्चीस गाँव में उसकी महाजनी का बोलवाला है। फिर भी धनपत के अंदर अभी भी जागीरदारी की बू नहीं गयी थी। उसके बेटे जब लट्ठ लेकर टूट पड़ते, तो अच्छे–अच्छे खाँ भी पीछे हट जाते।

रामधार ने श्रीपत को भी नोटिस दे आया था। फिर धीरे से बोला था। सेठ जी! अगले इतवार को बड़ी डीह की नपाई है। श्रीपत मुस्कराया था। फिर दराज से पांच हजार की गड्डी निकालकर उसकी तरफ बढ़ाते हुए बोला था।

"रख ले। तहसीलदार भी आयेगा। मैंने उसे कह दिया है। इस बार मेड़ के नीचे चार हाथ नाप दे, आगे मैं देख लूँगा। पूरी मेड़ मेरे हिस्से में आनी चाहिए।''

''कैसे संभव होगा सेठ जी! आपका खेत तो दो एकड़ सत्तर डिसमिल है। मेड़ मिला देने से तीन एकड़ सत्तर डिसमिल हो जाता है। धनपत का खेत साढ़े चार एकड़ है।''

''तू कितना मूर्ख है पटवारी! जंजीर की पांच कड़ी निकाल दे। कहां–कहा नहीं निकालता। मुझे का पता नहीं है।'' सेठ ने फिर दो हजार के नोट निकाल लिया था। फिर आगे बोला था। ''तू परेशान मत हो। तहसील मंडावी से बात हो गयी है। एक धनपत का खेत नहीं है। दधिमल सिंह ने भी अर्जी लगायी है।''

रामाधार को पता था कि श्रीपत की पकड़ ऊँचे तक है; लेकिन धनपत का बेटा भीखम तो हत्यारा ही है। वह तहसीलदार साहब को काट डालेगा। मेरी क्या विसात फिर उसे लगा कि मैं कितना अन्यायी हो गया। जिस गाँव में पैदा हुआ। सिर्फ घर बनाने के लिए जमीन थी। पता नहीं कबसे पूर्वज बसे रहे होंगे। जमीन में कब्जा भी लिखा था; परन्तु जमींदार ने सैकड़ों साल का कब्जा खाली करा लिया था। मैं कितना लड़ा था। कहाँ–कहाँ नहीं गया। आखिर अत्याचार के आगे पूरी हरिजन बस्ती खाली हो गयी थी। फिर उसे लगा था कि मैंने कितने लोगों की जमीन नाप दी? कितनी बार जंजीर बढ़ा दिया था और कितनों में जंजीर की कड़ी निकाल दी थी मात्र चंद पैसों के लिए कभी सत्य के लिए दुहाई देता था। आज मैं क्या हो गया। कितनों के खेत और घर दूसरों के नाम लिख दिया था। यह मेरे अंदर खीझ थी, नफरत थी, घृणा थी। पैसा कमाने की हवस इतनी बढ़ गयी थी कि न्याय और अन्याय पर विचार ही नहीं किया था। पिता तो जूते गांठा करते थे। पहली बार बुलाकर बोले थे।

''रामाधार! मैंने कई जमींदारों को माटी में मिलते देखा है। गरीबों की ऐसी आह लगी है रे कि पूरा–का–पूरा वंश डूब गया है, तू पटवारी हो गया है। ऐसा काम मत करना कि दुनिया जहान का पाप घर पर बुला ले।''

रामाधार अंदर से हिल गया था। उसे एक–एक सीमांकन याद आने लगा था। ननकौटी बुढ़िया मंगत सिंह को कम, मुझे ज्यादा श्राप दी थी। चीखते हुए बोली थी–''हिजरा पटवरीबा! तोर नास हो जाई रे, तैने मेरा आधा खेत ही मंगतवा के खेत में मिला दिया। आग खायेगा आग।'' उसके दस दिन बाद रामाधार का बेटा बीमार पड गया था। फिर न जाने कहाँ–कहाँ लेकर नहीं गया था। तब भी उसे बुढ़िया याद नहीं आई थी। पर आज अचानक उसे सारे अपराध याद आने लगे थे, क्योंकि धनपत ने कहा था–रामाधार मेरे पूर्वज बहुत ही आततायी थे। कहते हैं कि कितनों का खेत हड़प लिये थे। कितनों को मरवा दिया था। आज तो उस खानदान में चंद ही लोग बचे हैं। जो बचे हैं, वे सब परेशान हैं, इसलिए मुझे किसी के हिस्से का कुछ नहीं चाहिए। किंतु जो मेरा है, उसे लेकर रहेंगे। उस साहूकार के लिए एक हत्या और सही सीमांकन को लेकर कितने फसाद चल रहे थे। पूरा मोहकमा जानता था सारे विवाद पटवारी के पैदा किये थे।

रामाधार की साँसे ऊपर–नीचे हो रही थीं। तहसीलदार मंडावी ने उसे बुरी तरह से डाँटा था। पाप और पुण्य की बातें मत कर। जब विवाद नहीं होगा, तो मुकदमें कैसे बनेंगे। जैसा श्रीपत कहता है, वैसा कर। मामला न्यायालय में आयेगा, तो फिर देखेंगे। रामाधार कुछ बोल नहीं पाया था। वह जानता था कि धनपत का दामाद खुद पटवारी है। वह जरूर नपाई के समय आ जायेगा। बदमाशी तो कर नहीं पाऊँगा। इसलिए उसने तहसीलदार को एक रिपोर्ट लिखकर दे आया था। सीमांकन तभी संभव है, जब पुलिस बल वहाँ पर उपस्थित रहे। क्योंकि गोली भी चल सकती है। तहसीलदार भी अंदर से हिल गया था। एक तरफ श्रीपत था। उसके गुंडे थे। साथ में उसकी तिजोरी का मुख खुला था। जमीन मौके पर थी, वहीं से सड़क निकली थी। इसलिए जमीन बहुत कीमती थी। श्रीपत ने कई बार धनपत से कहा था। मान लिया कि मेड़ तुम्हारी है, जो कीमत चाहिए, लेकर अलग हो जाओ। पूरा खेत ही हम खरीद लेंगे। धनपत ने जूता उतारकर उसके मुँह में मारा था। श्रीपत के गुंडे हिम्मत नहीं जुटा पाये थे कि धनपत के ऊपर किसी भी प्रकार का हमला करें। धनपत धन से कमजोर था। जन से अभी बली था। श्रीपत से भय खाने के बावजूद वह डटा था। श्रीपत की खासियत थी कि वह सीधे किसी पर आक्रमण नहीं करता था। घात लगाकर दाव चलता था। सामनेवाले को इतना निश्चित कर देता कि श्रीपत सारी दुश्मनी भूल गया है। जब गोश्त पूरी तरह से ठंडा हो जाता, तभी क्रियाशील होता। फिर वोटी–वोटी कर के खाता।

श्रीपत ने बहुत कोशिश की कि सीमांकन टल जाये, पर ऐसा हुआ नहीं था। धनपत ने मुख्य मंत्री को शिकायत भेजी थी, तय समय

पर तहसीलदार को जवाब भेजना था। इतवार के दिन सगौनी गाँव में अनायास भीड़ इकट्ठी होती जा रही थी। चारो तरफ से लोग आ रहे थे। गाँव के पूर्व सरपंच मेहदी हसन ने आकर धनपत से कहा था–

''धनपत भाई! काहे को शेर के मुँह में हाथ डाल रहे हो।''

''काहे भाई! हम कौन गलत कर रहे हैं?'' धनपत ने कहा था

''शेर के मुँह से नेवाला मत निकालो। सरकार यदि सही–सही सीमांकन कर दे, तो यह झंझट ही क्यों रहे। जबरा हर जगह कमजोर की जमीन दबाए हुए हैं।'' मेहदी हसन धनपत के मित्र भी थे और शुभचिंतक भी थे। उन्हें पता था कि श्रीपत किसी भी सूरत में सीमांकन नहीं होने देगा। अंत–अंत में लाठी चलवा देगा। चारो तरफ उसी के तो आदमी थे, लेकिन धनपत के साथ भी पहली बार कई लोग इकट्ठा हो गये थे। श्रीपत को सबक सिखाने के लिए लोग मन बना चुके थे। रामाधार जंजीर से कड़ी निकालता और जोड़ भी देता। भीखम को खबर लग चुकी थी। वह अपने बहनोई को बुला लिया था। उसका बहनोई जनक आते ही रामाधार से बोला था।

''भाई, जंजीर देख लेना। नक्शे के अनुसार ही नपाई होनी चाहिए।'' जनक के तेवर भी बदले हुए थे। तहसीलदार मंडावी और कानूनगो पयासी भी आ गया था। मंडावी ने पुलिस बल बुला लिया था। श्रीपत खामोश हो गया था। उसे भी लगने लगा था कि भीड़ में सब उसके ही आदमी नहीं हैं। इसलिए चुपचाप नपने दिया जाये धनपत हालात पर नजर रखे हुए था।

तभी धनपत के कमरे में उजाला हुआ था उसने करवट बदली, तो चीख निकल गयी थी। बिस्तर पर पेशाब छूट गयी थी। छोटा बेटा अनुज धीरे से उसके कमरे में आया था। उसने देखा कि बिस्तर गीला हो गया है। करीब आते ही बोल उठा था। ''का बाबू! बुला लिये होते मग्गा, नीचे ही रखा था। पूरा बिस्तर गीला कर दिये।''

धनपत कुछ नहीं बोला था। उसकी आँखें भी बह आई थी, अनुज ने अपनी महतारी को आवाज दिया था। महतारी आ गयी थी। दोनों ने मिलकर उसे उठाया था। फिर अनुज ने विस्तर बदला था। अनुज की महतारी गुस्सा हो गयी थी।

''तुम्हारा बाबू कभी ठीक नहीं होगा। पूरे दिन एक ही बात सोचता रहता है। जो हुआ, उसे भूलने में ही भलाई है। जर, जोरू और जमीन के चक्कर में जो फँसा, वह बर्बाद ही हुआ है।''

धनपत तब भी कुछ नहीं बोला था। उसके दोनों पाँव में रॉड पड़े थे। छः महीने से बिस्तर पर ही पड़ा–पड़ा सब कुछ करता रहता है। अनुज ने माँ का समर्थन किया था। इस बार धनपत को गुस्सा आ गया था। वह फुंफकार उठा था।

''ससुरो, बोलने से तो लुटे–पिटे जा रहे हैं और तुमलोग हो कि कहते हो कि कुछ मत बोलो। नहीं बोलता तो यह घर भी चला जाता। जीना है तो लड़ना पड़ेगा।''

दरअसल जब भी धनपत अकेला होता तो पुरानी बातें उसे घेर लेतीं। नहीं चाहता था कि पिछला इतिहास उसके सामने आये पर करे क्या? अतीत उसका पीछा ही न छोड़ता। बार–बार उसकी आँखों के सामने श्रीपत का चेहरा आ जाता। वह उससे सीधा मुकाबला करना चाहता था। भीखम ने पूरा खेल ही बिगाड़ दिया था। यद्यपि भीखम के कृत्य से हजारों छातियाँ शीतल हुई थीं।

उस दिन रामाधार साकेत की बी.पी. बढ़ गयी थी। पहली बार उसे लगा था कि कहाँ से फँस गये। तहसीलदार का डंडा पड़ा था। अपने साथ चार पटवारी और बुला लिया था। श्रीपत को इसकी जानकारी नहीं हो पायी थी। रामाधार का दिल पसीज गया था। पता नहीं क्यों, उसे बार–बार लग रहा था कि उसके सामने उसके स्वर्गीय पिताजी आकर खड़े हो जाते। बार–बार कहते–''रमधरवा! कितना पाप तूने समेट लिया है। कहाँ रखेगा इतना पाप? खेत गुनिया से नाप। पाप से तेरा घड़ा भर गया है। श्रीपत तो वैसे ही मरेगा, जैसे धनपत के पुरखे मरे थे। सड़ गये थे। सरजू राम के बदन में कीड़े बुलबुला रहे थे। खटिया में तड़पता पड़ा रहता था। मुझे उसकी मुँहजुवानी कहानी याद है।'' रामाधार हिल गया था। पूरे दिन खेत की नपाई हुई थी। एक बार नहीं तीन बार खेत नपा था। पूरी मेड़ धनपत के हिस्से में आ गयी थी। तहसीलदार भी चुप रह गया था। धनपत का दामाद सब पर भारी था। धनपत धन से कमजोर था, परन्तु जन उसके पास भी थे। दूर–दूर से रिश्तेदार आ गये थे। धीरे–धीरे गाँववाले भी उसके ही पाले में चले गये थे। पश्चिम में मेड़ थी। पूरब में आर थी। चार हाथ पूरब में भी दबाये था। पूरब वाले का भी खेत नप गया था। जो धन और जन दोनों से कमजोर थे, उसे भी फायदा हो गया था। श्रीपत के खेत के चारो ओर पत्थर गढ़ गये थे।

पहली बार गाँव में न्याय हुआ था। लोगों के अंदर मरा आत्मबल जिंदा हो गया था। धनपत तो जनबल और आत्मबल के आधार पर ही तो लड़ रहा था। दस साल बाद उसे सफलता मिली थी। श्रीपत ने मन मारकर सीमांकन के कागज पर हस्ताक्षर किया था। फिर मुस्कराते हुए कहा था।

''मैं किसी का हिस्सा नहीं मारना चाहता। मुझे तो भगवान ने बहुत कुछ दे रखा है। अभी तो जो हुआ वह अंजाने में होता रहा।'' अंदर के गुस्सा को बाहर नहीं आने दे रहा था। विजयी भाव से बात कर रहा था। धनपत की पीठ भी थपथपाया था। माफी भी मांगी थी। गले लगा लिया था। फिर बोला था–

''मैं गलत था। तुम्हारे भाई ने मुझे गलत फँसाया था। उसी ने कहा था कि बँटवारे में मेड़ मेरे हिस्से में आई थी। मुझे क्षमा कर देना।''

श्रीपत की सरहना हुई थी। रामाधार उस दिन पूरी नींद सोया था। पहली बार उसने सही नाप किया था। धनपत ने उसे पाँच हजार ही दिये थे। धनपत भी खुश हुआ था। शातिर आदमी पिघला तो; लेकिन भीखम खुश नहीं था। उसने पिता से कहा था–बाबू! श्रीपत काला नाग है। साँप पर भरोसा मत करना। वह कभी भी आक्रमण कर सकता है।''

''अरे, नहीं रे। उस ससुरे को अहसास हो चुका है। कल जे.सी.बी. मशीन लगवाकर मेंड़ को ढहा देते हैं। इस मिट्टी को उठवाकर

बरदाडीह का नाला पटवा देते हैं।''

धनपत ने तीन के अंदर पूरी मेड़ ढहा दिया था। पूरी मिट्टी उठवाकर बरदाडीह के बीच से निकलनेवाले नाले में डलवा दिया था। वह भी अच्छा खेत बन गया था। कहीं किसी ने कोई विरोध नहीं किया था। चारो तरफ शांति थी। रोज की तरह जिंदगी पटरी पर चलने लगी थी। धनपत भूल गया था कि श्रीपत से कभी उसका विवाद भी था। जब भी दोनों मिलते तो इस तरह से मिलते, जैसे वर्षों के अच्छे साथी हों। उस साल दोनों खेत में गजब की धान हुई थी। लगभग ढाई सौ खंडी धान की उपज ने धनपत को चौका दिया था। दस बीस बोरा अपने लिए रखकर शेष धान मंडी में पहुँचा दिया था। इतने दिनों बाद उसे खेती से फायदा दिखा था। श्रीपत ने भी उसे बधाई दी थी। बात–बात में बोला था–''अब बड़े बाँधों का कोई महत्त्व नहीं है। मेंड़े बहुत जगह घेर लेती हैं। धनपत प्रसन्न हो गया था। सुबह से ही घर के धान दराने के लिए बैलगाड़ी में छ' बोरा धान लादकर धान की चक्की की ओर चल दिया था। धान की चक्की सगौनी से चार किलोमीटर दूर थी। भीखम को लगा था कि बाबू को अकेले मत जाने दें। अनुज तो साथ में जाये ही। दो भाई तो सूरत कमाने चले गये थे। उस दिन भैंस बिआई थी। उसकी देखरेख में वह घर पर ही रह गया था। अनुज साइकिल उठाकर एक प्राइवेट स्कूल में पढ़ाने चला गया था। घर में तीनों
बहुओं के अलावा नाती–नुतुर और भीखम की महतारी रह गयी थी। वैसे भी भीखम को खेत जोतवाना था। इसलिए गाँव में ट्रेक्टर की बात करने चला गया था।

बिजली न होने से धनपत ने अपनी धान तौलाया और चक्कीवाले से यह कहकर लौटने लगा कि जब बिजली आ जाये तो दर देना। मैं जा रहा हूँ। बैलों का भूसा भी नहीं लाया हूँ। इसलिए पूरे दिन भूखे रह जायेंगे। कल भीखम चावल उठा ले जायेगा। चक्कीवाला पुराना परिचित था। उसने हाँ में हाँ मिलाया
और दूसरे काम में लग गया था। धनपत बैलों को वहीं पर पानी पिलाया और बैलगाड़ी में लादकर फिर चल दिया था। धनपत बहुत खुश था। रास्ते में उसने हिसाब लगा लिया था। फसल से जो पैसा आयेगा, पहले बनियावाला और पताईवाला खेत को सुधरवाऊँगा। चार–चार हजार का खर्चा है। दोनों खेत में गेंहू के बदले प्याज लगवाऊँगा। भीखम कबसे कह रहा है। यदि प्याज की अच्छी फसल हो गयी, तो समझो किस्मत ही बदल जायेगी। श्रीपत तो कई एकड़ में प्याज लगवाता है। उद्यम में ही तो लक्ष्मी का वास है। बिना मेहनत कुछ नहीं होगा। पचासों साल का पुराना कच्चा मकान है। इस गर्मी में भट्ठे से ईंट उठवा लूँगा। अगले साल ठंडी में चार कमरे पक्के तैयार हो जाएँगे। धनपत मन ही मन प्रसन्न होता जा रहा था और खाली बैलगाड़ी बैल आसानी से खींचे जा रहे थे।

धनपत नाले के इस पार ही बैलगाड़ी को रोका और नीचे उतरकर लघुशंका करने चला गया। फिर लौटकर जेब से चुनहटी निकालकर तम्बाकू मलने लगा था। उसने देखा जरूर कि पीछे से एक ट्रक बालू लदा आ रहा है। उसने बैलगाड़ी खेत में उतारने लगा था। नाले के बगल से कच्ची सड़क पतली थी। नाले में सीमेंट के ढेले पड़े थे। उनके ऊपर से एक ही सवारी पार हो सकती थी बैलगाड़ी नीचे उतार ही रहा था, तभी बैलगाड़ी के साथ जैसे किसी ने उसे नाले पर उछाल दिया हो। फिर उसे होश नहीं था कि बैल कहाँ गये, बैलगाड़ी कहाँ गिरी और खुद कहाँ है? सात दिन बाद उसे जब होश आया था, तो अपने आप को अस्पताल में पड़ा पाया था। तीन दिन तक कुछ भी बता पाने में सक्षम नहीं था। फिर आहिस्ता–आहिस्ता याददाश्त लौटी थी। कमर के नीचे के दोनों पैर टूट चुके थे। शुक्र था कि कमर बच गयी थी। बस इतना ही बता पाया था कि ट्रक के अंदर से एक ऊँची आवाज आई थी–मार स्साले को मार...। कोई व्यक्ति चिह्नित नहीं हुआ था। उस रास्ते से कई ट्रक गुजरते थे। पुलिस भी खामोश हो गयी थी। बिना सबूत के किसी को पकड़ा नहीं जा सकता था, लेकिन गाँव में कनफुसिया शुरू थी कि श्रीपत और उसके बेटों के अलावा यह काम कोई कर ही नहीं सकता।

श्रीपत धनपत की मदद के लिए सबसे पहले आगे आया था। उसके किसी हलकारे ने आकर बताया था कि धनपत काका की बैलगाड़ी नाले में गिरी पड़ी है। दोनों बैल वहीं पर मर गये हैं। भीखम के ऊपर जैसे पहाड़ टूट पड़ा हो। आखिर उसने दो महीने की कोशिश के बाद पता लगाने में सफल हो गया था कि यह योजना छः महीने पहले ही बनकर तैयार हो गयी थी। यह तय नहीं था कि मारना कैसे है? जब जहाँ मौका मिले नजर
रखो। भीखम भी अंजान बन गया था। धनपत ने कहा था–''बेटा! दुश्मनी से दुश्मनी बढ़ती है। मेरी जान बच गयी, यही बहुत कुछ है। अब तुम शांत रहना। भीखम की आँखें भर आई थीं। उसने इतना ही कहा था। बाबू! कभी यह गाँव मेरा था। मेरे खानदान की तूती बोलती थी। आज हम शरणार्थी बनकर कब
तक जियेंगे। भीखम फिर कुछ नहीं बोला था। उसके व्यवहार में जो गरमी थी। वह नरमी में बदल गयी थी। वह भी शांत रहने लगा था। धनपत पाँच महीने के बाद घर आ गया था। अभी चल नहीं पाता था। पूरे दिन बिस्तर पर ही पड़ा रहता; लेकिन उसके मन में खीझ थी कि मैंने दुश्मन का कुछ भी नहीं बिगाड़ पाया। फिर एक दिन अचानक गाँव में एक साथ कई कौवे बोलने लगे थे। आसमान में कई चीलें उड़ान भरने लगी थीं। दिन में सियार बोलने लगे थे, कुत्ते अनायास भोंकने लगे थे। धनपत अनुज की
महतारी को बुलाकर चिल्ला उठा था–
''भीखम कहाँ है? कहीं उसने सीमोल्लंघन तो नहीं कर दिया। ये कौवे क्यों...।'' अनुज की महतारी दीवार के सहारे बैठ गयी थी। उसने मुँह में कपड़ा ठूँस लिया था। धनपत पूछे जा रहा था। वह कुछ नहीं बोल रही थी तभी अनुज लड़खड़ाते पांव अंदर आया था। धनपत ने उससे पूछना चाहा था। अनुज ने इशारा करके चुप करा दिया था। फिर अचानक चीख उठा था।
''हां, भैया ने बदला पूरा कर लिया। श्रीपत और उसके बेटे गोरेलाल

को गोली से भून दिया है। जो अपनी सीमा तोड़कर दूसरे की सीमा में घुसेगा, उसके साथ यही होगा। यह कोई चीन और भारत की सीमा नहीं है। यह मेरा गांव है।''

गाँव में सन्नाटा खिंच गया था। कौवे और चीले जैसे लापता हो गयी हो। कुत्ते और सियार भी चुप हो गये थे। उनकी जगह पर पुलिस की गाड़ियों के हॉर्न बजने लगे थे। हार्न की आवाजें इतनी कर्कश थी कि गाँव में लोग अपने–अपने घरों में छिप रहे थे। दोनों की लाशें घर के बाहर पड़ी थीं। सूचना देने वाला भी सामने नहीं आया था। उसने सिर्फ इतना ही तो कहा था। भीखम ने बाप–बेटे को गोली से उड़ा दिया। पुलिस की पदचाप पूरे गाँव में सुनाई देने लगी थी। तभी अनुज को लगा कि पुलिस की पदचाप तो उसकी ओर बढ़ रही है। धनपत के चेहरे से डर गायब हो गया था। उसने अनुज से कहा था कि मुझे कुर्सी पर बैठाकर बाहर ले चल। तभी दरवाजे पर खटखट हुई थी। अनुज ने दरवाजा खोला था। सामने पुलिस खड़ी थी।

''जी कहिए। पिता जी तो बिस्तर पर हैं। अनुज ने कड़क आवाज में कहा।''

''मुझे पता था कि एक दिन यही होगा। भीखम कहाँ है? दारोगा ने पूछा।

''भैया तो कल से बाहर गये हैं। आप लोग अंदर आइये बात क्या है?'' अनुज इतना ही बोला था कि उसके गाल पर जलता तमाचा पड़ा था। अनुज ने गाल पर हाथ फेरा था। उसका चेहरा तमतमा आया था। बहुत गंभीरता के साथ उसने दरोगा से कहा
था।

''दारोगा साहब! यही तमाचा आप उस हत्यारे को मारे होते, जिसने किसी भी सीमा रेखा को स्वीकार ही नहीं किया। तो आज इस गाँव में आपको गवाह ढूँढना न पड़ता। आज आपने हमें बेखौफ बना दिया। हाँ, मेरे भाई ने हत्या की है। यही सुनना था न! जाइये, जो उखाड़ना हो उखाड़ लीजिये। अब जेल जाने से डर नहीं लगता।'' अनुज ने गुस्से से दरवाजा अंदर से बंद कर लिया था। दारोगा को लगा था कि उसके ऊपर आसमान
फट पड़ा हो, सैकड़ों बिजलियाँ एक साथ कड़की हों। पुलिस वाले भौचक्क थे। दूसरी बार दरवाजा खटखटाने की हिम्मत नहीं कर पा रहे थे। तभी किसी एक ने कहा–

''सर! शाम तक वह मिल जायेगा। यहाँ खड़ा होना खतरा है। वह पुलिस का ही आदमी है। आप नये आदमी हैं। आपको पता नहीं। यह ऐसा काम कर ही नहीं सकता।'' जरूर मुखबिर श्रीपत का आदमी होगा।

तबतक पुलिस बल और आ गया था। मीडिया भी आ गया था। कलेक्टर और एस.पी. भी आ गये थे। मुखबिर अपने मोबाइल से सिम निकालकर फेंक दिया था। उसे आश्चर्य हो रहा था। कितनी हत्याएँ इस गाँव में हुईं। कभी कलेक्टर और एस.पी. नहीं आये थे। श्रीपत की हत्या में पूरा प्रशासन आ गया है। यही गोरेलाल जब गाँव की बुढ़िया ननकीबाई का झोंपड़ा जलाकर पूरी जमीन हड़प ली थी, तब पुलिस का ठुल्ला भी नहीं आया था। मेरी जमीन गिरवी रखकर बेचीनामा लिखा लिया और जब मैं शिकायत करने गया, तो किसी ने शिकायत नहीं दर्ज की। वाह रे धनपत काका! तुमने तो सीमांकन का सही अर्थ समझा दिया। तुम्हारे समझाते ही बवाल मच गया। मुखबिर जोर–जोर से हँसने लगा था। उसकी हँसी अट्टहास में बदलती जा रही थी। सभी परेशान हो उठे थे। अनुज के पूरे घर की तलाशी ली गयी थी। ननकी को पता चला गया था। दूसरे
गाँव में चली गयी थी। वह लाठी टेकते पहुँच गयी थी। वह एक तरफ से पुलिस वालों को गरियाए जा रही थी। गाली कम, श्राप ज्यादा दे रही थी। उसके मुँह से बहुत गंदे शब्द निकल रहे थे। फिर अचानक एक पुलिस वाले का कालर पकड़कर बोल उठी थी। हरामी! गर तैंने कल उस पापी श्रीपतवा को उसकी सीमा का ज्ञान करा देता, तो आज हत्या से बच जाता। हत्यारा भीखना नहीं है, पुलिस है, पुलिस!'' किसी ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया था।

शाम होने के पहले भीखम गिरफ्तार हो गया था। उसने जुर्म कबूल कर लिया था। फिर जिस कट्टे से मारा था, उसके बारे में बताया था कि नदी के दहार में फेंक दिया है। उसे पता था कि पुलिस में इतनी कूबत नहीं है कि नदी से कट्टा बाहर निकाल ले। धनपत ने फिर करवट ली थी। इस बार चीखा नहीं था, बल्कि उसके चेहरे पर खुशी थी। उल्लास था, उसे पता था कि भीखम के खिलाफ कोई गवाही नहीं देगा। फिर खपरैल घर की छत की ओर देखते हुए बोला था।''अनुज की महतारी! सरकार सीमांकन में असफल निकली। विवाद की जड़ में यही सीमांकन है।'' अनुज की महतारी ने सूजी आँखों से अपने पति को निहारी थी। धनपत फिर बोल उठा था। कभी–कभी धनबल भी जनबल के आगे कमजोर पड़ जाता है। भिखमा को कछू न होगा। पुलिस को गवाह नहीं मिलेगा। भिखमा खेल खेलने में माहिर हो चुका है। अनुज की महतारी का रो–रोकर बुरा हाल था। वह पति पर चीख उठी थी।

''चुप करो। चार बित्ता जमीन के पीछे लड़कौना जेल चला गया।''

''रो मत, बात सुन, चार बित्ता तो बहुत होता है। लोग एक बित्ता के खातिर जूझे पड़ रहे हैं। यह तो होना ही था। मैं मर भी गया, तो मेरे बेटे अपनी संपत्ति बचाने में सक्षम हो गये हैं।''

धनपत ने फिर करवट बदल ली थी। इस बार निम्न वायु ने गर्जना की थी। धनपत को लगा था कि पेट में जो कुछ फँसा था, साफ हो गया है। फिर किसी के सहारे के बिना ही उठकर बिस्तर पर बैठ गया था। अनुज की महतारी को आश्चर्य हुआ था–'कैसे अपने से उठ गया है!' धनपत ने तम्बाकू की डिबिया से तम्बाकू निकालकर मलने लगा था। रात हो चली थी। धीरे–धीरे लोग उसके घर पर आने लगे थे। गाँव में पुलिस का पहरा था। धनपत हँस दिया था। आओ भाई! पुलिस भी कितनी मूर्ख है। श्रीपत मारा गया। अब काहे का दंगा! नेपथ्य में हँसी गूंजी थी। धनपत समझ नहीं पाया था कि हँस कौन रहा है।

कहानी

किरका डोंगा (ब्रेंकिंग शीप)

श्रीमती रजनी शर्मा बस्तरिया
देशबंधु प्रेस के सामने
116 सोनियाकुंज, रायपुर (छ.ग.)
मो.–9301836811

जाने इस जगह का नाम 'भोपाल पट्टनम्' क्यों पड़ा? ना तो यह भोपाल है और ना ही यहाँ पट्ट (शिलापट्ट) हैं। पर हाँ आस–पास की सीमाओं का समुद्र से रोटी और बेटी का नाता जो था। 'लहरो' का काम ही था कि सुबह से उठकर अपने छोटे से डोंगे यानी कि नाव को साफ–सुथरा कर समुद्र में अपनी नाव लेकर चल पड़ना। तट पर जाने कितने डोंगे अपनी रवानगी की राह देखा करते थे। समुद्र की लहरों से मिलने का उनका भी तयशुदा समय होता था ना। ये डोंगे समुद्र में जाते तो खाली थे, पर वापसी में समुद्री जीवों, मछली, केकड़े जाने क्या–क्या इनमें भरा होता था।

'लहरो' थी ही उन्मुक्त लहरों–सी, घुटनों के ऊपर बँधी साड़ी, बायीं ओर खोपा (जूड़ा), ठुड्डी पर गोदने के टप्पे और मछरिया–सी चमकती त्वचा 'सत्यवती' के समान ही उसके शरीर में मत्स्य बास समाई हुई थी। बस्तर की सीमाएँ भोपालपट्टनम को समेटे अन्य राज्यों से भी मिलती थी। देशज प्रभाव इस जगह पर भी था। बोली बात में हल्बी के साथ अन्य आंचलिक भाषाएँ भी पानी में घुले नमक–सी थीं।

'लहरो' के गाँव का नाम ही था डोंगा घाट। छोटे–बड़े करके सैकड़ों नावों वाला गाँव। सूरज जैसे ही पहली किरण के साथ संदेशा भेजता, सभी डोंगेवाले रात भर के खूँटे से बँधे डोंगे को रेत पर मानो ढकेल ही देते थे। ये रेत पर फिसलकर पानी में छपाक से छलाँग जो लगाते थे। पर डोंगे की मालकिन 'लहरो' बिल्कुल एक माँ की तरह चिंतित, फिक्रमंद रहती थी। वह अपने शिशु नाव को कभी भी अकेला नहीं छोड़ती थी। साथ में नाव के कुछ दूर जरूर चलती थी। जैसे कि कोई पहली बार चलना सीख रहे, अपने बालक की अंगुलियाँ थामे रहती है ना, वैसे ही। जब लहरो को तसल्ली हो जाती कि यह डोंगा पानी में भली भाँति 'चल लेगा' यानी कि तैर ही लेगा, तब वह नाव को छोड़ती और फिर कूदकर जा बैठती चप्पू के साथ अपने डोंगे में।

'डोंगाघाट' डोंगों (नावों) से भरी बस्ती तो थी ही, पर बोलचाल में भी डोंगा का प्रयोग उलाहने में भी होता था। कल ही तो 'रोहू' के साथ उसकी कहा–सुनी हो गई थी। रोहू का अपने कार्य के प्रति उदासीनता लहरो को अब खलने लगी थी। बात बढ़ती गई। रोहू ने कहा–कल से वह समय पर अपनी नाव लेकर जरूर जायेगा और उसे और अधिक गृहस्थी का बोझ उठाने नहीं देगा। इतना सुनना था कि लहरो कह उठी जानुआँय जानुआँय तुचो ढगनाच के उल्टा चाटू ने डोंगा घाटू। (जानती हूँ, जानती हूँ तुम्हारी चालबाजी को उल्टे चप्पू से नाव खेनेवाले)।

डोंगाघाट के चारों ओर ताड़–खजूर के पेड़। मीलों तक फैले रेत पर सूरज का करतब, तारों पर सूखती मछलियाँ उस गाँव में ताड़ी (स्थानीय शराब) का जादू रात में सिर चढ़ कर बोलता था। मजबूरन लहरो जैसे कई बायले (महिलाओं) को नाव लेकर समुद्र में जाना पड़ता था। ये बायले मन (महिलायें) समुद्र के प्रति जरा ज्यादा ही मानवीय होती थी। लहरो ने अपनी टोकनियों की ओर देखा। टोकनियाँ मछलियों से भर चुकी थीं। रोहू, कतला, मोंगरी, चिंगड़ी लहरो खुश थी। इनको
बेचकर गृहस्थी का गुजारा एक हफ्ते तक तो हो ही जायेगा। साथ ही डोंगे की मरम्मत भी हो जायेगी।

रोहू आज कल कई दिनों तक घर से गायब रहता था। समुद्र में आज जाने कहाँ से विशालकाय जहाज की आवाजाही शुरू हो गयी। भयानक शोर लहरो क्या पूरे समुद्री जीव जंतुओं में भी खलबली मच गई थी। लहरो जानती थी कि उसकी नाव की भी सेवानिवृत्त होने की तिथि आ रही है। जिस दिन डोंगे का निर्माण होता है, उस दिन ही उसकी सेवानिवृत्ति का दिन भी तय हो जाता था। 'डोंगाघाट' में या कहिये पूरे नाव समाज में पूरे विधि विधान अनुष्ठान के साथ नावों का खंडन किया जाता है। गाँव के कई लोग इस 'नौका खंडन' का कार्य करते थे। भला जीवन भर जिन डोंगों (नाव) ने दधीचि की तरह अपनी हड्डियों को गलाकर लोगों का भला किया है। क्या उनका मृत्युपश्चात् देहदान निरर्थक होगा? असंभव है ना?

बड़े यत्न से इन सेवानिवृत्त डोंगों को तोड़ा जाता था। इसका एक–एक पुर्जा अच्छे दामों में पुनः बिकता जो था और आखिरकार हजारों–हजारों बार समुद्र में जाने का अनुभव, बौराई लहरों से टकराने का जज्बा हवा के खिलाफ दुःसाहस और मछलियों के सघन मिलने की अनुमानित जगह जैसे हुनर इन बेजान नावों में समाये जो रहते हैं और यही तो उन्हें नायाब बना जाते थे। ये नाव (डोंगे) मानव शरीर थोड़े ही हैं, जिन्हें वृद्धावस्था में अनुपयोगी समझा जाता है।

इस गाँव में सभी औसत मछुआरे ही थे। अपनी नाव को सेवानिवृत्ति के बाद भी अपनी यादों में संजोकर रखते थे। बहुत ज्यादा आवश्यकता हुई, तभी इनका खंडन किया जाता था।

रोहू के साथ गांव के तीन चार लोग जिनके लोभ– लालच का समुद्र धरती से बड़े आकार का हो चला था। आज उस बड़े जहाज के आस–पास अपनी नौका (डोंगा) लेकर जाने को क्यों उतावले हो रहे थे? लहरो ने नाखुशी जाहिर की। उसने रोहू को आगाह भी किया कि वह अपनी हद में रहे। पर कहाँ? रोहू की हथेलियों में रिश्वत लेने को हो रही खुजलियों पर नियंत्रण ही नहीं रहा। जहाज के मालिक की ओर से प्रलोभन का जाल फेंका जा चुका था, जिसमें रोहू जैसे अनेकों मछलियाँ स्वेच्छा से फँसने को उतावले हुए जा रहे थे।

तय यह हुआ कि पूरे समुद्री सीमा तट पर जहाज के मालिक का अधिकार हो, बदले में रोहू जैसे अनेकों को तगड़ी राशि मिलेगी। वे धीरे–धीरे तमाम डोंगों को जबरिया सेवानिवृत्त करते जायें और तमाम समुद्री जीवों के शिकार, आधिपत्य सिर्फ और सिर्फ जहाज के मालिक का ही रहे।

लहरो का मन आज बेहद अनमना था। आज रोहू जाने क्यों उस डोंगे में साथ जाने ही नहीं दे रहा था। वह उसके जिद के आगे बेबस हो चली थी। जैसे ही रोहू और गाँव के अन्य डोंगेवाले डोंगा लेकर समुद्र में गये लहरो ने भी अपने पुराने डोंगे के साथ समुद्र की राह पकड़ ली। नाव में कुछ रेत की बोरियाँ भी भरकर रखी जाती हैं, जो नाव का मालिक तय करता है कि कब उसे पानी में फेंका जाये, ताकि डोंगे का भार संतुलित रह पाये।

जाने क्यों आज लहरो ने भरपूर शृंगार किया था। मत्स्यगंधा–सी सुवासित, माथे पर बड़ी–सी बिंदी, साहस की लाठी, अरमानों की टोकरी, जिजीविषा के जाल, अधूरे सपनों की रेत की बोरी, जो मुट्ठियों को बंद करने

पर फिसलती ही जाती थी। इन सबके साथ वह भी उतर गई अपने डोंगे को साथ लेकर समुद्र की लहरों में। ऊपर से शांत दिख रहे समुद्र के गर्भ में जाने कितने विध्वंस, षडयंत्र के भँवर तैर रहे थे, उनसे अनभिज्ञ सैकड़ों डोंगे रोज की तरह समुद्र में अपनी हाजिरी लगाने जा रहे थे। क्या पता समुद्र के रजिस्टर में उन्हें आज हमेशा–हमेशा के लिये विलोपित ही दर्ज किये जाने का षडयंत्र रचा जा चुका होगा।

डोंगे अपनी रफ्तार से बढ़े ही थे। बीच सागर के मोहपाश जैसे उन्हें सम्मोहन में जकड़े ही जा रहा था। यह क्या? सभी के नावों में पानी भरने लगा था। उफ्फ इतना बड़ा धोखा, छल। डोंगों को किरका (बारिक सूत सी छेद) कर दिया गया था। भयानक चीख–पुकार मच चुकी थी। लोग जाने अपने
स्वस्थ डोंगों की देह को आज आक ही नहीं पाये कि उनको लालचवश 'किरका' (खंडित) कर 'किरका डोंगा' (छेदवाली नाव) बना दिया गया था। लहरो जोर से चीखी। बालू के पकाहा (रेत को फेंको) पर कहाँ? नाव अब अपना संतुलन भला कैसे कायम रख पाती? यहाँ तो लालच का पलड़ा भारी हो चुका था।

सामुद्रिक युद्ध में बड़े–बड़े जंगी जहाज वाले देश अपनी सेना के सैकड़ों छोटी–बड़ी नावों का प्रयोग करते ही हैं। बिल्कुल ऐसे ही टिड्डियों के दल की तरह ये नावें समुद्र में आगे बढ़ने लगीं। लहरो स्वयं सागर की प्रचंड लहरों–सी उस दल की अगुवाई कर रही थी। संघर्ष बड़ा था। 'किरका डोंगा' और जहाज के बीच। देखते–ही–देखते डूबती नावों से लोग कूदते जा रहे थे। लहरो नाव छोड़कर जहाज पर चढ़ चुकी थी। सैकड़ों नाविक अब अपने डूबते 'किरका डोंगों' को जहाज पर चढ़ा रहे थे। जहाज पर भी रेत की बोरियाँ रखी जाती हैं, जिन्हें कब फेंकना है, यह कप्तान तय करता था। अचानक छपाक–छपाक की आवाज आई...। रेत की बोरियों के स्थान पर रोहू, लोलूप कप्तान की जल समाधि समुद्र में बन गई थी। लहरें अब शांत हो गई थी। तूफान गुजरने के बाद सी शांति पसर चुकी थी। सैकड़ों 'किरका डोंगों' को ससम्मान लादकर जहाज वापस डोंगाघाट जा रहा था। यह जबरिया सेवा निवृत्ति समुद्र के चीरहरण के खिलाफ अपने डोंगों पर अपनी लहरों पर अपनी नावों के साथ एक साथ समुद्रगान ही था सैकड़ों 'किरका डोंगों' का...।

लघुकथा :

दुर्लभ होते हैं ऐसे मददगार

सीताराम गुप्ता
ए.डी.–106–सी, पीतमपुरा
दिल्ली–110034
फोन नं. 09555622323

निरंतर एक वर्ष तक कोविड से संक्रमित रोगियों का उपचार करते हुए पुत्र डॉक्टर अमित के स्वयं कोविड से संक्रमित हो जाने के बाद उसके लंग्स पूरी तरह से जवाब दे चुके थे, अत: वो पिछले दो महीनों से लगातार एक्मो सपोर्ट पर चल रहा था। हालत नाजुक बनी हुई थी। उसके उपचार के लिए पूरा परिवार दो महीनों से घर से डेढ़ हजार किलोमीटर दूर हैदराबाद में डेरा डाले हुए था। एक्मो सपोर्ट पर ब्लड लॉस बहुत ज्यादा होता है, अत: बार–बार रक्त चढ़ाने की जरूरत पड़ रही थी। ब्लड ही नहीं, प्लाज्मा व प्लेटलेट्स की भी निरंतर जरूरत पड़ रही थी। सभी मित्र व परिचित लगातार पूरा जोर लगाकर रक्तदान के लिए डोनर भिजवाने की कोशिशों में जुटे हुए थे, फिर भी रक्त की कमी पड़ रही थी, अत: उन्हें और अधिक डोनर्स भेजने के लिए बार–बार मैसेज किए जा रहे थे। एक परिचित द्वारा दिए गए नंबर पर फोन किया, तो उन्होंने पेशेंट की पूरी डिटेल्स भेजने के लिए कहा। उन्हें उसी समय अपेक्षित विवरण भिजवा दिया। अगले दिन शाम तक जब कोई डोनर नहीं आया तो उनको पुन: फोन किया और कुछ डोनर्स भिजवाने का निवेदन किया। उन्होंने झुंझलाते हुए जवाब दिया, 'अब रात को मैं कहाँ से डोनर्स लाऊँ? आपकी डिटेल्स हरियाणा नागरिक संघ के ग्रुप में डाल तो दी हैं, वे आपसे संपर्क कर लेंगे।'

इस घटना के एक सप्ताह पूर्व ही मेरे एक कजिन ने हैदराबाद में रह रहे एक परिचित सुरेश सिंघल जी को हमारी मदद करने के लिए कहा था। सुरेश सिंघल जी ने उसी रात स्वयं मुझे फोन किया और सारी जानकारी ली। अगले दिन सुबह ही गाड़ी भेजकर मिलने के लिए बुलाया और वस्तुस्थिति को समझकर हर प्रकार की मदद करने का आश्वासन दिया। हम हैदराबाद में पिछले दो महीनों से जिस मकान में रह रहे थे उसे बदलना चाहते थे। मैंने उन्हें हॉस्पिटल के आसपास किराए पर एक अच्छा सा मकान दिलवाने में मदद करने के लिए कहा।
उन्होंने इस विषय में बहुत सारे लोगों से संपर्क किया और मुझे साथ लेकर भी कई जगह गए। कई मकान दिखलाए। संयोग से एक अन्य परिचित की मदद से अगले दिन ही एक मकान मिल गया। मेरे मन में आया कि क्यों न डोनर्स के लिए भी सुरेश सिंघल जी से मदद ली जाए, लेकिन उपर्युक्त घटना के बाद किसी को भी फोन करने से डर सा लग रहा था। अधिकांश लोग एनजीओज के नंबर भेज रहे थे, लेकिन लगभग सभी एनजीओज ने न केवल मायूस किया था, अपितु बेकार में समय भी खूब नष्ट किया था। दिल्ली के कई बड़े उद्योगपतियों से अच्छे संबंध और मिलना–जुलना रहा है। उन लोगों ने भी हैदराबाद में अपने परिचित होने और उनसे हर प्रकार की मदद करवाने का आश्वासन दिया, लेकिन कोई एक डोनर भी उपलब्ध
नहीं करा पाया।

हाँ, बिहार के आरा की एक एन.जी.ओ. ने वहीं से हैदराबाद में लगातार ढाई महीनों तक रक्तदान के लिए नियमित रूप से डोनर्स भिजवाने की व्यवस्था की। ब्लड प्लाज्मा व प्लेटलेट्स की अत्यधिक आवश्यकता को देखते हुए किसी को भी फोन किया जा सकता था। अगले दिन मैंने सुरेश सिंघल जी को भी फोन किया और उन्हें भी कुछ डोनर्स भिजवाने के लिए कहा। उन्होंने पूछा कि कितने डोनर्स की व्यवस्था करनी है? मैंने जब कहा कि दो, चार, दस बीस जितने संभव हो सकें भिजवा दीजिए तो उन्होंने कहा कि मैं आधा घंटे बाद बात करता हूँ और ये कहकर फोन रख दिया। पंद्रह मिनट बाद ही सुरेश सिंघल जी का संदेश आ गया। उसमें बारह व्यक्तियों के नाम लिखे थे। नीचे लिखा था ये सब हमारे परिवार और हमारे
पार्टनर के परिवार के बच्चे हैं। ये सब बच्चे रक्तदान करेंगे। आपको किसी भी प्रकार की चिंता करने की जरूरत नहीं है। और जिस चीज की भी जरूरत हो निस्संकोच बतला दीजिएगा और किसी भी समय फोन कर लीजिएगा। इस संदेश के आधा घंटे के अंदर–अंदर सभी युवक रक्तदान के लिए हॉस्पिटल पहुँच चुके थे। इन युवकों में सुरेश सिंघल जी के दोनों पुत्र भी थे। सचमुच दुर्लभ होते हैं ऐसे व्यक्ति और ऐसे परिवार।

कहानी

कि तुम मेरी जिंदगी हो

डॉ. पूरण सिंह
दिल्ली
9868846388

'आप सुमन के पापा हो!'
'जी नहीं।'
'तो?'
'चाचा हूँ'
'चलिए, चाचा भी तो पापा ही होते हैं।' डॉक्टर बोला था।

''मेरे चाचा मेरे लिए पापा ही है। पापा मैंने नहीं देखे। मेरे चाचा ने मेरे लिए बहुत दुख उठाए। कभी हम सभी भाई–बहनों को पता ही नहीं चलने दिया कि पापा क्या होते हैं। सर! मेरे चाचा बहुत अच्छे हैं।'' सुमन के मन में, मेरे लिए छिपी श्रद्धा और सम्मान साकार होने लगा था।

डॉक्टर साहब कुछ नहीं बोले थे। उन्होंने सुमन को देखा था। उसकी बातों की सच्चाई को जानना चाहा था। फिर, अल्ट्रा साउण्ड्स, एम. आर.आई. आदि की रिपोर्ट देखते रहे थे। मुझे हाथ से, बैठने का संकेत किया था। मैं वहीं उनके सामने ही कुर्सी पर बैठ गया था, 'आपसे एक जरूरी बात कहनी है।' डॉक्टर साहब ने मेरी तरफ देखा था। मैंने भी सिर हिलाकर स्वीकृति दे दी थी मानो कहना चाहा था, 'कहो–क्या कहना है' सर!'

''सुमन का केस थोड़ा–सा कम्पलीकेटेड है। मेरे लिए नॉर्मल स्थिति में कुछ भी नहीं है। अब चूँकि सुमन अनमैरिड है, इसलिए हमें फूँक–फूँककर कदम रखना होगा। आपको फेथ में लेकर काम करना जरूरी है।'' वे बताए जा रहे थे। ''आप थोड़ा–सा और स्पष्ट करें, सर!'' मैं बोला था।

''ठीक कहा आपने। देखो, सुमन की ओवरी में सिस्ट है। सिस्ट बढ़ रही है। उसे निकालना होगा। निकल भी जाएगी, लेकिन बहुत संभव है कि वह कुछ परेशानियाँ छोड़ जाए। डॉक्टर साहब आगे बताते इससे पहले मैं बोल पड़ा था–'मतलब'।

''मतलब ये कि हो सकता है सुमन शायद कभी माँ न बन पाए। वैसे ऐसा होगा नहीं, लेकिन पॉइंट फाईव परसेंट संभावनाएँ रहती हैं।''

इसके आगे भी डॉक्टर साहब न जाने क्या–क्या क्रोनिकल बातें बताते रहे थे। मुझे तो लगा था कि उनका केबिन घूम रहा है। मैं चक्कर खा रहा हूँ और ध्यान न दिया तो मैं गिर पड़ूँगा कि मेरे मुँह से निकल गया था–'पानी।' डॉक्टर साहब पानी देते इससे पहले ही सुमन ने पानी की बोतल मेरी तरफ बढ़ा दी थी। मैंने आधी बोतल खाली कर दी थी।

''देखिए, सुमन के चाचा आपको धैर्य से काम लेना होगा। सुमन अभी बच्ची है। आप बड़े हैं और समझदार भी। परिवार के अन्य लोगों को भी साहस देना होगा आपको। मुझसे आज तक कभी कोई चूक हुई तो नहीं है, लेकिन फिर भी।'' फिर अपने हाथों को उठाकर बोले थे, ''हजारों आपरेशन किए हैं मैंने। अब तक तो ऐसा हुआ नहीं।'' मैं चुप था।

''तो ठीक है अगले फ्राईडे को सुमन को लेकर सुबह सात बजे आ जाना। उसी दिन आपरेशन कर लेंगे और अगले दिन छुट्टी मिल जाएगी। विश्वास है सब ठीक रहेगा।'' इतना कहकर डॉक्टर साहब ने हमें इजाजत दे दी थी। हम बाहर आ गए थे उनके केबिन से।

मैं अंदर–अंदर तो परेशान था, लेकिन अपनी परेशानी प्रकट नहीं होने दे रहा था। बाहर भाभी और छोटेवाला इंतजार कर रहे थे। क्या कहा डॉक्टर ने–भाभी बोली थी।

''कुछ नहीं। फ्राइडे को आपरेशन होगा और सेटरडे को ललिया (बेटी) को छुट्टी मिल जाएगी। मैं सहज होने का साहस कर रहा था। हम सब घर लौट आए थे।

अगले फ्राइडे को हम जल्दी ही होस्पीटल पहुँच गए थे। डॉक्टर साहब और नर्स अपने–अपने काम में व्यस्त थे। डॉक्टर साहब ने मुझे देखकर छोटी वाली स्माइल दी थी। मैंने अपने दोनों हाथ जोड़ दिए थे। शायद कहना चाहा था, मेरे भाई की अमानत है। चूक न होने पाए सर! बेटी को ऑपरेशन थिएटर ले जाया गया था।

भाभी वहीं बाहर वेटिंग रूम में पड़ी बेचों पर बैठ गई थी। छोटेवाला भी वहीं बैठा था। मैं भी उन्हीं के पास साइड में बैठ गया था। मेरे अलावा बहुत–से और लोग भी बैठे थे। सभी का कोई–न–कोई आपरेशन थिएटर में था। कोई–कोई तो ऐसा भी था, जो आपरेशन थिएटर के दरवाजे की ओर ही देख रहा था, जिधर से उसके अपने को अंदर ले जाया गया था।

प्रायः लोगों को कहते सुना है कि 'कोई काऊ को नाहि है' लेकिन अस्पतालों में ये बात झूठी साबित होती है। अगर कोई किसी का नहीं है, तो ये बाहर बैठे लोग कौन हैं? बीच–बीच में गार्ड या वार्डबॉय आकर किसी के नाम की आवाज लगा जाते। शर्मिला के साथ कौन है या फिर रजिया के साथ वाले आओ। जिससे लोगों का ध्यान बँट जाता था। अधिकांश के चेहरे उतरे हुए थे।

मैं बैंच पर बैठा सभी को देख रहा था। भाभी और छोटेवाला कुछ बातें करने लगे थे कि कैसे भैया अपने छोटे–छोटे बच्चों को छोड़कर भगवान के घर चले गए थे। भाभी के चार बच्चे हैं। दो बेटे और दो बेटियाँ। जब भैया की मृत्यु हुई थी, तब भाभी खूब जवान थी। चार बच्चे जल्दी–जल्दी हो गए थे। भैया बहुत ज्यादा काम नहीं कर पाते थे। उन्हें टी.बी. हो गई थी। तब टी.बी. लाइलाज हुआ करती थी। जिसे होती, उसका जाना तय होता था। भैया की मृत्यु पर अम्मा और घर के शेष लोगों ने भाभी को ही कोसा था। इसी की वजह से मेरा बेटा चला गया। खसम के बगैर कभी सोती तो थी नहीं। कमजोर शरीर था मेरे बेटे का ये जवान लुगाई। लील लिया मेरे बच्चे को। भाभी का साथ देने के बजाय, उन्हें दुत्कार और घृणा ही मिली थी। मेरा झुकाव भैया की ओर था। भाभी भी मेरे लिए महत्त्वपूर्ण रही। उस समय सुमन अपनी मम्मी का दूध पीती थी, जब भैया अपनी अंतिम यात्रा पर निकल गए थे। बड़ा बेटा ही थोड़ा–सा समझदार था। उसी ने घर सँभाला था। मैंने साथ दिया भाभी और बच्चों का, जिसका परिणाम ये निकला कि मुझे भाभी के साथ जोड़ा गया। एक को तो लील गई, अब इसे भी लील लेना। भाभी सूनी सूनी आँखों से सभी को देखती रहती। स्थिति तो यहाँ तक आयी कि मेरी पत्नी भी मुझे गलत समझने लगी थी। खैर, आप जब भी कोई अच्छा काम करेंगे, बाधाएँ आपका मार्ग रोककर खड़ी हो जाएगी। मैं अपवाद कहाँ था।

बड़े बेटे की मेहनत, लगन और परिवार के प्रति निष्ठा, भाभी की ईमानदारी और मेरा साथ, आज भाभी के चारों बच्चे समर्थ हैं। जो भाभी

एक–एक पैसे के लिए तरसती थी, आज उसको, उसके दोनों बेटों ने अपने–अपने क्रेडिट कार्ड दे दिए हैं। बड़ी बेटी का ब्याह कर दिया है। बेटे भी ब्याह दिए हैं। बस सुमन ही बची है। सुमन भी भारत सरकार में सेक्शन आफिसर है, वस्त्र मंत्रालय में किसी तरह का कोई दुख नहीं है भाभी के लिए। हाँ, भैया को वापिस तो भगवान भी नहीं ला सकते। वह
दुख तो रहेगा ही। रही बात मेरी, तो मेरा क्या है। कभी वादा किया था भाई से कि जीवन की आखिरी साँस तक बच्चों को आपकी कमी महसूस नहीं होने दूँगा। वही पूरा कर रहा हूँ। अब ये बात और है कि सोच ही रहा था कि वार्डबॉय ने आवाज लगाई थी, सुषमा के साथ कौन है। मैं न जाने कब बोल गया था–मैं। भाभी ने मुझे देखा था, ''क्या हुआ, सब ठीक तो है। वह सुषमा को बुला रहा है। सुमन को नहीं।'' फिर पानी की बोतल मेरी ओर बढ़ाई थी–''लो पानी पियो। आप ऐसे करोगे तो हम ...हम कैसे करें।''

''अरे, वो बस ऐसे ही मैंने कह दिया था। उन्हें नहीं बताया था कि भाभी मैं मीलों दूर चलकर लौट आया हूँ। सब पेशेंट के नाम बुलाए जाते, लेकिन मेरी सुमन का नाम नहीं बुलाया जा रहा था। देखते–देखते पौने चार बजने को आए। हम सबकी आँखें ऑपरेशन थिएटर के दरवाजे की ओर लगी थी और कान खड़े थे।

फिर वार्डबॉय ने आवाज लगाई–''सुमन के साथ कौन है?'' मैं एक ही पल में उसके सामने। भाभी और छोटेवाला तो सामान ही सँभालते रहे थे। ''अरे आपकी जरूरत नहीं है। कोई लेडी भेजो।'' वार्डबॉय गुर्राया था।

''क्यों।''

''अरे, भाई! गाईनी का मामला है। आप वहाँ क्या करेंगे।'' और उसने मुझे ऐसे दुत्कारा था मानो मैं कुत्ता होऊँ!

''तब तक भाभी भी आ गई थी। भाभी वार्डबॉय के साथ अंदर चली गई थी। कुछ देर बाद सुमन को वार्ड में शिफ्ट किया जाना था। दो महिला कर्मचारी उसे स्ट्रेचर पर लिए वार्ड में जा रही थीं। वार्ड, ऑपरेशन थिएटर से थोड़ा–सा दूर था। मैं भी स्ट्रेचर के साथ–साथ ही चलने लगा था। रंभा, उर्वशी, कामायनी को मात देनेवाली मेरी सुमन का चेहरा पीली पड़ा हुआ था। होठ पपड़ाए हुए थे। शेष शरीर ढका था। में रोक न सका था–''बाबू, बाबू, सुमन! ए सुमना! मैं चाचा, मुझे देखो बाबू।'' सुमन ने थोड़ी सी आँखें खोली थी, फिर बंद कर ली थीं। 'सुमन को वार्ड में शिफ्ट कर दिया गया था। भाभी उसकी देखरेख के लिए थी। मैं और छोटेवाला वार्ड के बाहर ही खड़े थे। अभी बहुत ज्यादा देर भी नहीं हुई थी कि भाभी, वार्ड के बाहर आयी और बोली थी–डॉक्टर साहब बुला रहे हैं। मैं यंत्रचलित–सा उनके सामने था।

''आपकी बेटी का ऑपरेशन सक्सेस रहा। वह खतरे से पूरी तरह बाहर है, लेकिन इसके पहले कि डॉक्टर कुछ आगे बोलता में बीच में कूद पड़ा था, लेकिन माने क्या डॉक्टर साहब।''

लेकिन माने ये कि अब सुमन कभी माँ नहीं बन पाएगी। मैंने बहुत कोशिश की, लेकिन क्या करता, सिस्ट ने जड़ें पकड़ ली थी। बेटी को बचाना, बहुत जरूरी था हमारे लिए पेशेंट इज इसेंशियल। बच्चे पैदा करने की तो तमाम टेक्नीक है मार्केट में। लेकिन इंसान को बचाने की... नो...नो वन। आई डिड राईट. यू डोंट वरी। सुमन को मत बताइएगा और यहाँ तक कि उसकी माँ को भी नहीं। ये बात सिर्फ मैं जानता हूँ या फिर आप। सुमन की माँ औरत ही है और फिर ये क्रूयल समाज। 'आई थिंक यू बेटर अण्डरस्टैण्ड' और मेरी कोई बात सुने बिना ही बाहर चले गए थे डॉक्टर साहब उनके जाते ही महिला कर्मचारियों ने मुझे बाहर जाने के लिए कहा था। मैं वार्ड से बाहर आ गया था। भाभी, सुमन के पास चली गई थी। मैं और छोटेवाला वहीं, वार्ड के बाहर ही गैलरी में बैठ गए थे।

मैं बार–बार अपने मन में यही कह रहा था–''ये क्या हो गया भगवान! मेरी बच्ची के साथ उसकी रक्षा नहीं की तूने, तु सच में बहुत बड़ा निर्दयी...।'' सोचने लगा था..

''.....चाचा एक बात कहनी थी आपसे।'' एक दिन शाम को चाय पीते समय बोली थी सुमन मुझसे।

''कहो।''

''ऐसे नहीं, प्यार से पूछो।'' और पीछे से मेरे गले में बाहें डाल दी थीं। छोटी थी, तब ऐसे ही किया करती थी जब चिज्जी या हप्पा माँगती थी।

प्यार, मेरे पास कहाँ है बेटा! अगर प्यार होता तो आज मेरे अपने... इसके आगे नहीं बोलने दिया था सुमन ने। और कहा था– ''अगर आपमें प्यार नहीं है, तो दुनिया के किसी भी आदमी में प्यार नहीं होगा।''

''अच्छा, बताओ क्या बात है?'' मैंने चाय का कप प्लेट में रखते हुए कहा था।

'चाचा।'

'हाँ।'

'चाचा!'

''अरे भैया, अब चाचा से आगे भी बढ़ेगी या चाचा पर ही अटकी रहेगी। और पहले तो एक काम करो मेरे ऊपर से हटो। यहाँ बैठो आकर। कितनी बड़ी हो गई है, लेकिन फिर भी बच्ची ही बनी रहती है। कोई कहेगा इसे देखकर कि ये अफसर होगी।'' मेरे प्यार में अथाह गहराई थी।

सुमन मेरे पास ही सोफे पर बैठ गई थी। बिल्कुल मुझसे सटकर, फिर उसे चैन नहीं पड़ा, तो मेरी गोद में सिर रख लिया था। अब सुनो।

''मैं एक लड़के से...।'' कहाँ बोलने दिया था मैंने। उसके आगे मैं ही बोला था–''प्यार करती हो, राईट।''

बस गजब हो गया था। आपने कैसे जाना, बताओ बताओ। ये बात आपको किसने बताई? मम्मी तक नहीं जानती। अच्छा उसी ने बताया होगा। गोद से उठकर बैठ गई थी।

''अरे मुझे किसी ने नहीं बताई। आखिर मैं तेरा चाचा हूँ भाई'' मैं बोला था।

''आप चाचा नहीं है। आप पापा है, पापा। सिर्फ पिता ही होता है, जो अपने बच्चों के मन की बात जान लेता है।'' और उसकी आँखों की कोरों में गीलापन गहरा हो गया था। मैंने आँसुओं को बाहर नहीं आने दिया था। आँसू पी लेने में मुझे महारत हासिल है।

''मेरे आफिस में ही है। मेरा ही बैचमेट है। मुझसे तीन नम्बर नीचे उसका नाम था। हम दोनों ने साथ–साथ ज्वाइन किया था।'' बताए जा रही थी सुमन, ''बहुत रईश घर का है। अकेला बेटा है अपने माँ बाप का। मुझे बहुत प्यार करता है, चाचा।''

''और तुम!''

'मैं भी' उसके इतना कहने पर मैंने उसकी ओर देखा था। फिर क्या था। 'हम ना ...मजाक बना रहे हैं मेरी।' और फिर तो सोफे से उठकर मेरी पीठ पर लद गई थी। 'और बनाओगे मजाक, बताओ बताओ।'

''अरे, अब उतर भी मैं बूढ़ा आदमी हूँ। अब तू बच्ची नहीं है। और आज तो साबित हो गया कि तू बच्ची नहीं है। अच्छा, चल आगे बता। मैंने उसे पकड़कर अपने पास फिर बैठा लिया था।

''चाचा, वह मुझे बहुत प्यार करता है। मैं भी। एक दिन कहने लगा मुझसे चाचा सुनो तो।'' और मुझे झकझोरने लगी थी कि ''सुमन! हमारी माँ कहती हैं, हमारे घर में खूब सारे बच्चे चाहिए। दो, चार, पाँच, नौ, ग्यारह।'
तभी न जाने क्यों मुझे डॉक्टर के कहे शब्द याद आने लगे थे कि अब ... सुमन कभी, माँ ....नहीं।

'क्या?' मैं अनायास ही बोल पड़ा था।

''हाँ चाचा, उसकी माँ चाहती है कि उनके घर में खूब सारे बच्चे हों। मैंने तो कह दिया, सिर्फ दो बच्चे ही करेंगे। ठीक
कहा न चाचा मैंने।''

''हाँ'' मैं कब बोल गया था, मुझे पता ही न चला। होश तो तब आया, जब एक महिला कर्मचारी मुझपर चिल्लाई थी–''चलो–चलो, भागो यहाँ से, वहाँ जाकर बैठो... ये कोई बैठने की जगह है। चलो हटो।''

छोटेवाले ने कहा भी था–''तुम्हारा दिमाग खराब है। ऐसे बात करते हैं। मेरे चाचा बहुत बड़े अफसर हैं।''

''अफसर होगा अपने ऑफिस में, यहाँ तो वही होगा जो हमें कहा गया है। उसकी बात का बुरा मैंने नहीं माना था। मैं
वहाँ से उठकर चला आया था। छोटेवाला साथ–साथ था। दो दिन वार्ड में रखने के बाद उसकी छुट्टी हो गई थी। डॉक्टर ने फिटनेस सर्टिफिकेट दे दिया था। सुमन ने आफिस ज्वाइन कर लिया था और फिर एक सप्ताह की छुट्टी ले ली थी। अब वह घर पर ही आराम करती थी। रोज शाम को मेरे पास आकर बैठ जाती। तभी एक शाम मैं थक गया था। ऑफिस में काम ज्यादा रहा था। दरअसल एक एग्रीमेंट था इंडोनेशिया के साथ भारत का। उसी का ड्राफ्ट तैयार करते–करते सब करम हो गए थे, सो बेड पर लेटा था कि सुमन आ धमकी।

''और हेण्डसम कैसे हो।''

तू बता तेरा प्यार कैसा चल रहा है। मैं कहाँ चूकने वाला था। शरीर ही तो थका था। मुँह थोड़े ही न थका था। 'सोलिड।

'अरे तूने उस गधे का नाम तो बताया ही नहीं उस दिन। मैं चिढ़ाने में भी माहिर हूँ।
रणविजय सिंह।
माने ठाकुर साहब और तू च..
'चाचा हम नहीं। अब मैं बड़ी हो गई हूँ। और वैसे भी प्यार में जातिबंधन हैज नो मीनिंग।' वह बोली थी। चाचा आज क्या हुआ सुनो तो आज उसकी माँ का फोन आया था। जानते हैं आप उसकी माँ क्या कह रही थी। और उसने मेरे चेहरे की ओर देखा था। मैंने आँखें घुमाई थीं।

''कह रही थी। सुमन! जल्दी से घर आ जाओ दुलहिन बनकर घर सूना सूना लगता है। और जल्दी से तीन चार बच्चे। 'ऐं' मैं लेटा था बैड पर, सो उठकर बैठ गया था और डॉक्टर का चेहरा मेरी आँखों में घूम गया था। सुमन अब कभी माँ नहीं। सुमन नहीं समझ पायी थी। उसे लगा था कि उसके मुँहफट होने से मैं नाराज हो गया हूँ, तभी तो बोली थी।
''सॉरी सॉरी चाचा! गलती हो गई। आप मुझे डाँटते ही नहीं, इसीलिए अब आगे से ध्यान रखूँगी।'' और इतना कहकर कान पकड़कर मेरे सामने खड़ी थी। ठीक वैसे ही जैसे बचपन में कोई गलती करती और मैं डाँटता, तो ऐसी खड़ी हो जाती। मैं उसे सहज किया था और बोला था–बेटा, एक बात सुनो।
'जी, चाचाजी!'
'तुम कितना प्यार करती हो उस लड़के से।'
'अपने आप से भी ज्यादा।'
'तुम यह भी जानती हो, प्यार में झूठ बोलना, धोखा देना, अविश्वास करना प्यार को कमजोर बनाता है। प्यार में स्वाभिमान बहुत जरूरी है। घमण्ड नहीं और स्वाभिमान तभी रहता है, जब आप पूरे के पूरे ईमानदार हो। प्यार में डर नहीं होना चाहिए।' इन बातों पर वह मुझे बड़ी गहनता से देख रही थी।
'तुम समझ रही हो मैं क्या कहना चाह रहा हूँ।'
'हाँ' वह बोली थी।
'तो जाओ और उससे कह दो कि तुम कभी माँ नहीं बन पाओगी।' सहज तरह से मैं कभी नहीं बोल सकता था यह बात। दिल पर पत्थर रखकर ही तो बोला था मैं।
और सुमन ...वह तो सचमुच पाषाण प्रतिमा–सी मुझे निहारे जा रही थी।

मैंने उसे हिलाया था। डॉक्टर की कही पूरी बात बताई थी। बहुत समझाया था। वह कितना समझी, कितना नहीं, ये तो वही जाने। हाँ जाने को हुई तो फिर मैंने उसे पुचकारते हुए कहा था, ''बेटा, मेरी लाडो, मेरी राजकुमारी! उसे सब बात स्पष्ट बताना। देखो, अगर वह तुम्हारा होगा तो तुम्हारे पास आ जाएगा और अगर नहीं होगा, तो तुमसे दूर चला जाएगा। तुम दोनों ही स्थितियों में जीत में रहोगी। कम–से–कम अकेले में बैठोगी, तो खुद को दोष तो नहीं दोगी कि तुमने उसे छला है।
किसी को भी छल लो, लेकिन स्वयं से नहीं भागा जा सकता।'' सुमन चली गई थी अपने कमरे में।

दो दिन तक मेरे पास नहीं आई थी। कल आई थी मेरे पास। मैंने उसकी ओर प्रश्न करने वाली आँखों से देखा था, मानो कहना चाहा हो क्या हुआ।''

''चाचा मैंने उसे सारी बातें बताई, जैसी आपने मुझसे बताई थीं। सुमन बताने लगी थी, उसे देखकर लगा था कि न
जाने वह कुछ ही दिनों में बहुत बड़ी हो गई हो।

'फिर'

फिर उसने मुझसे कहा, ''सुम्मा! एक बात बताओ, यही घटना हमारी शादी के बाद हुई होती तो, तो क्या मैं तुम्हें छोड़ देता?''

''तब दूसरी बात होती। अभी सब कुछ तुम्हारे हाथ में है, तुम्हें दूर तक सोचना होगा और हाँ, माँ का कैसे करेंगे! माँ को खूब सारे बच्चे चाहिए।'' मैं निर्दयी हो गई थी।

''माँ को मना लूँगा। मान जाएगी माँ। माँ बहुत अच्छी है। माँए अच्छी होती ही हैं। तुम्हें बहुत चाहती है।'' वह बोला था।

''चाहत और यथार्थ में जमीन–आसमान का फर्क होता है। अच्छा एक काम करो, पहले खूब सोच–विचार कर लो, फिर देखेंगे।''– मैंने कहा था।

''मुझे अकेला मत छोड़ो सुमन! मैं रह न पाऊँगा तुम्हारे बिना। फिर घुटनों के बल बैठकर, दोनों हाथ बढ़ाकर, मेरी आँखों में आँखें डालकर बोला–''सुमन! तुम मेरी जिंदगी हो।''

''मैंने उसके हाथ अपने हाथों में भर लिए थे। बताए जा रही थी सुमन और मेरे गले लगकर बड़ी देर तक बिलख–बिलखकर रोती रही थी और मैं उसके सिर पर प्यार से हाथ फिराता रहा था। आँखें तो गीली मेरी भी थीं कि कुछ शब्द हवा में तैरने लगे थे कि 'तुम मेरी जिन्दगी हो।'

कहानी

मन का डर

सविता मिश्रा
अक्षजा, देवेन्द्र नाथ मिश्रा
(पुलिस निरीक्षक)
मोबाईल नम्बर– 09411418821

उमेश रोज प्रिया से निधि की बड़ाई करता और हर बार की तरह उसकी आँखो में ईर्ष्या देखने की कोशिश करता था। पर अफसोस कि प्रिया की आँखों में उसे कहीं कुछ नजर नहीं आता था। जैसे उमेश की पिछली जिन्दगी कोई मायने ही न रखती हो उसके लिए। उमेश जिस लड़की के बारे में बता–बताकर उसे उद्वेलित करने की चेष्टा करता, वह पलटकर उसका नाम तक नहीं पूछती थी कभी भी।

सुना था स्त्रियाँ बहुत ईर्ष्यालु होती हैं। शायद गलत सुना था मैंने। कभी–कभार तो वह मेरी बातों पर खिलखिला पड़ती और तुमक कर कहती–''उसी से शादी करके उसे अपने घर ले आते, तब आटे–दाल का भाव पता चल जाता तुम्हें?''

हर पल, हर जगह नाम लेते ही हाजिर रहती प्रिया। माँ तो मेरी हँसी उड़ाते हुए कहती, पत्नी नहीं यह तेरी परछाई है, परछाई। कितनी सुधड़ और संस्कारी बहू है मेरी। माँ को देखकर पत्नी का मुस्कराना मुझे जैसे चुभ जाता। लगता जैसे प्रिया जता रही हो कि माँ मुझसे ज्यादा उससे प्यार करती है।

दिन ऐसे ही हँसते–खिलखिलाते हुए बीत रहे थे, एक दूजे के गुण–अवगुण गिनाते जो बीत गया, सो बीत गया। दस साल का समय बहुत होता है घाव भरने के लिए। सूखी पौध अब मेरे जीवन में पुन: हरी–भरी होकर नहीं लौट सकती। ऐसा लग रहा था, अपना जीवन शांत नदी की तरह बीत जाएगा। इसमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी चाहे तो तूफान क्या थोड़ी हलचल भी नहीं ला सकते। अपने खुशमय संसार के बारे में सोच–सोचकर उमेश हमेशा गद्‌गद होता रहता था।

ऑफिस से लौटते वक्त उमेश ने फिल्म की दो टिकट ले ली। सोचा प्रिया को बहुत दिन हो गए कोई भी फिल्म नहीं दिखायी। टिकट देखते ही वह खुश हो जाएगी। घर पहुँचते ही सामने निधि को सोफे पर बैठा पाया। उसको देखते ही उसके साथ बीता समय जैसे आँखों के सामने से क्षण मात्र में ही गुजर गया। एक अजीब सा डर घर कर गया उसके मन में ऐसा लगा, मानों पैरों के नीचे से सहसा किसी ने जमीन खींच ली हो। निधि के साथ बैठी हुई प्रिया मुझे देखकर मुस्करा रही थी। लगा वह मुस्करा नहीं रही, बल्कि कह रही हो–'अच्छा बच्चू! तुम तो बड़े छुपे रुस्तम निकले। बड़े–बड़े गुल खिलाए है तुमने तो।' उन पलों में मैं खुद को एक ऐसा चोर महसूस कर रहा था, जिसकी दाढ़ी में तिनका ही तिनका हो।

अबतक तो मैं अपनी पत्नी की अच्छाई का फायदा उठाते हुए हँस–हँसकर उसे निधि के बारे में कुछ सच बता रहा था, तो बहुत कुछ छुपा रहा था। परन्तु लगा कि अब तो पोल पूरी तरह खुल ही जाएगी। उस समय मुझे निधि किसी खतरनाक आतंकवादी–सी लग रही थी। पुरानी प्रेम–कहानी कहीं हवा हो गयी थी।

प्रिया ने आवाज दे कर कहा–''अरे! आओ न, आकर बैठो भी। क्या आज ऑफिस से आने पर थकान नहीं हो रही क्या? खड़े–खड़े ही मिलोगे निधि से।''

उमेश आकर सोफे पर धम्म से बैठ गया तो प्रिया निधि से बोली–''निधि! ये मेरे पति उमेश है। और उमेश, ये निधि है, हमारी नयी पड़ोसन, दो घर छोड़कर तीसरा जो खाली मकान था न, उसमें रहने आई है।''

उमेश के दिल का चोर अपनी पत्नी से आँखे चुराने पर मजबूर कर रहा था। उमेश के मन में डर बैठा था कि कहीं निधि ने बता तो नहीं दिया प्रिया को सब कुछ–ऐसा हुआ होगा तो प्रिया बाद में मेरी खूब खबर लेगी।

निधि जल्दी ही चली गई। उसके जाने के बाद उमेश थोड़ा सामान्य हुआ। प्रिया ने अगले दस–पन्द्रह मिनट तक कुछ नहीं कहा। सोते समय प्रिया पलंग के साइड टेबल पर रखी हुई फिल्म की टिकट देखकर बोली– ''अरे, मेरी पसंदीदा फिल्म की टिकट लाये और बताए भी नहीं। फालतू चार सौ रुपए बर्बाद हो गए। तुम भी न बहुत लापरवाह हो।'' कहकर व उमेश की बाँहों में झूल गयी। परन्तु उमेश अभी भी गहरे ख्यालों में खोया हुआ था। उसे अपनी बाहों में कोई शरारती बच्चा झूलता–सा महसूस हो रहा था, जो कभी भी काट सकता था। थोड़ी देर तक साँस रोके वह उस घड़ी का इंतजार करने लगा। लेकिन हरकत न देख डरते हुए प्रिया पर नजर दौड़ाई, तो वह सुकून से उसकी बाँहों के आगोश में सो चुकी थी।

एक हफ्ते ऐसे ही गुजर गए। हर दिन उमेश डरा– डरा सा रहने लगा था। जब–जब वह निधि को प्रिया के साथ देखता, अपने अपराधबोध से सहम जाता।

एक दिन दरवाजे पर ही निधि से उसका सामना हो गया। निधि उसकी ओर देख मुस्कराकर निकल गयी। उसे निधि का मुस्कराना ऐसा लगा, जैसे वह कह रही हो–बच्चू! आज भी बच गए हलाल होने से। पर कब तक बचते रहोगे? या
फिर उमेश के मन का चोर था, जो उसे चैन से रहने ही नहीं दे रहा था।

महीनों बाद जब उमेश ने चेहरे पर खुशी की चमक लिए घर में प्रवेश किया तो उसके चेहरे पर रौनक देख प्रिया भी मुस्कराती हुई पूछ बैठी–''क्या बात है जनाब, आज तो दमक रहे हो?''

उमेश खुश होते हुए बोला–''जानती हो, मेरा ट्रांसफर हो गया है यहाँ से बहुत दूर बेंगलूर के लिए। दो दिन के अंदर ही वहाँ जाकर

ज्वाइन करना है।''

ट्रांसफर की बात सुनकर प्रिया के चेहरे की खुशी काफूर हो गयी। उसे ऐसा लगा मानो तूफान आ गया हो। उसकी बसी–बसाई गृहस्थी तहस–नहस होती हुई महसूस हुई। उसने जैसे अपने आपसे ही पूछा–''दो दिन में? दो दिन में कैसे हो पायेगा सब?' यहाँ जमी जमाई गृहस्थी, मिंटी का स्कूल, माँ जी के डॉक्टर, और तो और निधि जैसी सहेली और अच्छी पड़ोसन।''

पड़ोसन शब्द सुन उमेश ने मन ही मन सोचा–'वही तो मूल कारण है, इस ट्रांसफर की। हमारी गृहस्थी में भूचाल भले आए, पर हमारे संबंधों में भूचाल न आने पाए। इसीलिए यह ट्रांसफर बहुत जरूरी था मेरे लिए। मेरे सुखी संसार के लिए। निधि को लेकर मजाक करना अपनी जगह था, पर उसको सामने पाकर हर बार लगता कि मेरे चेहरे का मुखौटा अब उतरा कि तब उतरा।

सोच से बाहर आकर प्रिया से उमेश बोला–''अरे डार्लिंग! तुम चिंता क्यों करती हो। सब कुछ अरेंज कर दूँगा, तुम्हें जरा भी दिक्कत नहीं होगी। वहाँ तो स्कूल और डॉक्टर सब यहाँ से अच्छे ही मिल जाएँगे।''

निधि को जब पता चला तो वह प्रिया से मिलने आई, परन्तु उसे मिल गया अकेला उमेश। दोनों ही एक दूजे को एक टक थोड़ी देर तक देखते रहे। दोनों के ही ख्यालों में पुराने मीठे दिनों की रिमझिम फुहार भी हुई। जल्दी ही निधि सहज होती हुई बोली–''उमेश! मैं तुमसे जबसे दुबारा मिली हूँ, देख रही हूँ तुम मुझसे कटे–कटे से रहते हो, क्या मुझे देख तुम्हें पुराने हसीन लम्हे जरा भी याद नहीं आते? तुम्हारी आँखों में मैंने हमेशा डर ही देखा है, जबकि मैं प्यार देखना चाहती हूँ अपने लिए। मुझे लगा था कि तुम मुझसे मिलकर बहुत खुश होगे। पर नहीं, मैं गलत थी।''

''मुझे पता चला, तुम अपनी पत्नी के साथ बहुत खुश हो, तुम्हारी पत्नी बता रही थी, तुम हमेशा उसे हँसाते रहते हो। परन्तु मैंने महसूस किया है कि मुझे देखकर तुम्हारी हँसी विलुप्त सी हो गयी है, मैं समझ सकती हूँ। तुम डर रहे होगे कि कहीं मैं तुम्हारा राजफाश न कर दूँ?''

उमेश मंत्रमुग्ध सा सुनता रहा। वह न रो सकता था, न अपनी सफाई में कुछ कह सकता था। बस सिर झुकाए सुन रहा था निधि की बातों को बड़े गौर से। उमेश की तरफ देखती हुई निधि फिर बोली, तुम मुझे समझे ही नहीं, उमेश यदि सबकुछ कहना होता तो कब का कह देती। जब तुम्हें देखा उसी दिन बता देती कि तुम ही मेरे पति हो, जिसने मंदिर में मुझसे शादी की थी। तुमने ही मुझे छला है। मैं तुम्हारे परिवार और खासकर प्रिया के व्यवहार के कारण चुप रह गयी। सोचा जैसे दस साल तुम बिन अकेले बिता दिए, वैसे बाकी भी बिता दूँगी। तुम्हारी हँसती–खेलती गृहस्थी में आग नहीं लगाऊँगी। पहले दिन तो तुम्हें देखकर बहुत क्रोध आया था, क्योंकि तुम बिना बताये ही मुझे मँझधार में छोड़ आए थे। सोचा उसका बदला ले लूँ।''

उमेश ने भयभीत नजरों से निधि की ओर देखा, ओठ बुदबुदाये, लेकिन आवाज नहीं निकली। वह फिर सिर झुकाकर बैठ गया।

''परन्तु बातों–बातों में माँ जी से पता चला कि तुम्हारी मजबूरी थी प्रिया से शादी करना। तुमने अपने माता–पिता के सम्मान के लिए हमारे प्यार को ही भुला दिया था। माँ के कहने पर तुमने उनकी दूर की गरीब रिश्तेदार की बेटी से शादी कर ली। माँ जी और प्रिया के अपनेपन के कारण मैं अपना बदला भूल चुकी थी। तुम्हारी मजबूरी समझ में आ गयी थी मुझे। बस एक ही आँखों की नमी को सुखा लिया।

''उमेश! जहाँ कहीं रहो, खुश रहो। अच्छा हुआ तुमने जान–बूझकर ट्रांसफर ले लिया। हो सकता था मेरे सब्र का बाँध एक न एक दिन टूट जाता और तुम्हारी गृहस्थी बह जाती।'' यह कहते–कहते निधि की आँखों में आँसू आ गए। वह चाहते हुए भी उमेश से अपने आँसुओं को छुपा न सकी।

उमेश का मन ग्लानि से भर उठा। वह मरियल–सी आवाज में बोला–''कितना गलत था मैं औरतों के बारे में। सच है, औरतों को समझ पाना, मर्दों के बस की बात नहीं। समुद्र से ज्यादा गहरी होती हो तुम औरतें।

तभी बाहर से प्रिया आ गयी। माँ को सोफे पर बिठा कर निधि से गले लगकर बोली–'तुम कब आई? मैं जरा डॉक्टर के पास चली गयी थी माँ को दिखाने, सॉरी यार! तुम्हें छोड़कर जाना पड़ रहा है। पर मैं फोन करती रहूँगी और जब भी दिल्ली आऊँगी, तुमसे जरूर मिलूँगी। पक्का, क्यों उमेश? उमेश ने भी मुस्करा कर हामी भरते हुए कहा–'हाँ, बिलकुल पक्का।'

अब उमेश के दिल से डर खत्म हो चुका था। वह कभी निधि को पहले प्यार करता था, अब उसका सम्मान करने लगा था। उसके दिल में औरतों के प्रति इज्जत बढ़ गयी थी। एक तरफ माँ, जो कि उसकी नजरों में सबसे अच्छी और प्यारी माँ थी, एक प्यारी पत्नी, जो उसकी हर सही–गलत बात को भी हँसी में उड़ाकर खिलखिलाती रहती थी। एक प्रेमिका जो उसकी नजरों में पत्नी ही थी, भले समाज की नजर में न हो। जिसकी अच्छाई अब वह ताजिंदगी भूल ही नहीं सकता था।

और हाँ, एक नन्ही बेटी, जो उसे दुनिया का सबसे अच्छा पिता बताते हुए, अपनी सहेलियों से लड़ पड़ती थी। आज उमेश खुद को दुनिया का सबसे खुशनसीब इन्सान समझ रहा था।

नियत समय पर निधि से पूरा परिवार अनमने स्नेहिल शब्दों से विदा ले निकल पड़ा अपने नए गन्तव्य बंगलूर की ओर। प्रिया और निधि दोनों उदास थीं। उमेश ने भी महसूस किया कि निधि से बिछड़ते हुए वह भी भीतर से बहुत उदास था।

कहानी

समबडी इज इनसाइड

दिलीप कुमार सिंह
कुंज कॉलोनी
आनंदबाग, बलरामपुर, (उप्र.)
मो.–9956919354

संजीव ने दरवाजे के भीतर आते ही खुद को चटाई पर निढाल छोड़ दिया। शेखर ने उसे किनारे होने की घुड़की दी। उसने कातर आँखों से शेखर को देखा फिर आँखें बंद कर ली। करीब पाँच मिनट ऐसे ही संवादहीनता की स्थिति में बीत गये। शेखर सोच रहा था कि अब संजीव उठे और खाना बनाना शुरू करें,

शेखर जोर से खाँसा, मगर कमरे में कोई दूसरा स्वर नहीं बोला। शेखर को भूख लग रही थी वक्त काटना मुश्किल हो रहा था। पाँच–दस–पंद्रह मिनट ऐसे ही बीत गये, मगर संजीव ने आँखें नहीं खोली, तब शेखर ने हारकर उसे जगाया। उसने आँखे खोली, मगर पीड़ा मिश्रित स्वर में धीरे से बोला रुको, अभी हाल ठीक नहीं है, फिर वो धीरे–धीरे अपने घुटनों को सहलाने और दबाने लगा। बड़ी देर तक वो अपने हाथ के पंजों से अपने पैरों को दबाता रहा, फिर मुट्ठियाँ भींच–भींचकर मारता रहा। शेखर जान गया कि ये इतनी जल्दी नहीं उठेगा और खाने में काफी देर लगेगी।

शेखर कमरे से निकालकर गली के नुक्कड़ पर आ गया। उसने दूध का एक पैकेट खरीदा, पाव लिया और अपना कलेजा फूँकने के लिये सिगरेट। मोमेन्ट सिगरेट उसके जैसे स्ट्रगलर के लिये ही बनी भी शायद। बड़ा पाव, कटिंग चाय, मोमेन्ट सिगरेट, शेयरिंग आटो, शेयरिंग खोली–ये सब उसके मुम्बइया जिन्दगी के हिस्से थे। शेखर भी इन समझौतों से आजिज था, वरना वो संजीव को क्यों बर्दाश्त कर रहा होता। वो उधार की पर्ची और सब सामान लेकर कमरे

में लौट आया और संजीव के सामने चाय और पाव रख दिया, जिसका मतलब था–चाय बना दो। संजीव ने ये सब देखा, तो फीकी हँसी से बोला–रुको, शेखर भाई! खाना बना रहा हूँ। दिन भर में दो बर्गर और रात को चाय के साथ पाव। यही खायेंगे तो वैसे ही मर जायेंगे। फिर हम यहाँ मरने थोड़े ना आये हैं। शेखर ने रुखाई से कहा–''वैसी मौत तो जब मरेंगे, तब मरेंगे, मगर आज कुछ न खाया तो जरूर मर जायेंगे।''

संजीव भी शायद भूख से व्याकुल था, वो उठा तो नहीं पर घिसट–घिसटकर मोरी तक गया। हाथ–मुँह धोये, फिर उसी तरह घिसट–घिसट कर वापस भी आ गया। तबतक शेखर ने चाय चढ़ा दी थी। संजीव ने सब्जियाँ काटी, चावल बीना। चाय के साथ दोनों ने एक–एक पाव खाया। संजीव ने कहा–सब्जी–चावल में बहुत देर लगेगी। तहरी बना डालता हूँ। मुझे भी बहुत भूख लगी है, आप भी भूखे होंगे। शेखर ने सहमति दे दी। अब जो कुछ जल्दी मिल जाये, वही खा लिया जाये। शेखर चटाई पर पसर गया और संजीव ने उसका मोबाइल उठाकर अपने हाथ में ले लिया और इयर फोन लगाकर गाने सुनने लगा। शेखर का अपना गम था–'नानक दुखिया सब संसार', वो एक प्राइवेट स्कूल में टीचर था, वो भी बिना ट्यूशन का। संजीव उसके कमरे में पंद्रह सौ रूपये के किराये का पार्टनर था। वो भी सिर्फ पाँच सौ रुपये देता था। संजीव के पास मुम्बई में खोली लेने के लिये डिपाजिट की रकम का इंतजाम न था। शेखर ने रूम के डिपाजिट का इंतजाम तो कर लिया था। मगर पंद्रह सौ रुपये महीना देना भारी था। ये राष्ट्रीय क्षितिज पर महेन्द्र सिंह धौनी के उभार का समय था।

शेखर ने संजीव को कुछ शर्तों पर रखा था, जिसमें से ये था कि संजीव खाना बनायेगा, बर्तन धुलेगा कमरे की साफ–सफाई रखेगा। सिर्फ शेखर के जूठे बर्तन नहीं धोयेगा, क्योंकि शेखर ने उसे मना कर रखा था, क्योंकि संजीव ब्राह्मण जो था। संजीव के अंदर थोड़ा–सा ब्राह्मणत्व बचा हुआ था, सिर्फ खाने के मामले में। वो खुद मांसाहार नहीं करता था, मगर मांस–मछली और मासाहारियों के बीच में भोजन कर लेने से उसे परहेज न था। संजीव भी अजीब सा था–साढ़े चार फुट का कद, रंग गोरा, खड़े बाल, चेहरे पर दाढ़ी–मूँछ जमी नहीं, दुबला–पतला शरीर। उसे देखकर लोग न जाने क्यों वितृष्णा से भर उठते थे। उसके पैतृक शहर में लोग उसे नाटा और छोटू बुलाते थे, तो वह इस सम्बोधन से चिढ़ता था। मगर छोटु शब्द कब उसका पीछा छोड़ने वाला था। उसे इस बात का पहली बार एहसास तब हुआ, जब वो बारह–तेरह वर्षों का था, तब बाकी भाइयों के बनिस्पत उसके हाथ–पैर छोटे–छोटे थे। छोटू, भांटा, नाटा, गुंठे जैसे शब्द उसकी दिनचर्या का हिस्सा था। उसका असली नाम राजीव तिवारी शायद ही कोई पुकारता था। ये उन विशेषणों से जितना चिढ़ता था, लोग उतना ही उसको उन्हीं नामों से पुकारते थे। हिमालय की तराई के जिस छोटे से कस्बे नानपारा से उसका ताल्लुक था, वो जगह देश के नक्शे से ऐसे गुम थी, जैसे राजीव तिवारी की जिन्दगी से सपने। राजीव के पिता शंभुनाथ तिवारी ज्योतिष, पत्रकारिता और नेतागिरी से इतना भी नहीं कमा पाते थे कि वो अपने चार बच्चों का ठीक से भरण–पोषण कर सकें। सरकारी स्कूलों की तालीम पर गुजर–बसर करते राजीव किसी तरह यौवन की दहलीज पर पहुँचा। राजीव अपने बोने होने के तानों से इतना आजिज था कि कई बार उसने खुदकशी करने की कोशिश भी की थी। मगर खुदकशी करने की कोशिश करना और उस कोशिश को अंजाम तक ले जाना दो अलहदा चीजें हैं।

हताशा और परती के आलम में वो अपने हमउम्र लोगों से भी कटता गया और तालीम से भी। उसका बड़ा भाई संजीव एक ट्रान्सपोर्ट कम्पनी में मुंशीगीरी करता था। उसी की कमाई की बदौलत दोनों जून चूल्हे पर अदहन चढ़ा करता था। राजीव आठवीं भी ना पास हो पाया था और बहुत हाथ–पाँव मारने के बावजूद अपनी विचित्र देह–दशा के कारण कोई रोजगार भी न पा सका। जब उसकी उम्र के लड़कों की शादियाँ होती थी तो उसके भी दिल में हूक उठती थी कि मैं भी कुछ करूँ। कुछ करने के चक्कर में उसने नेपाल से डली लाकर बहराइच के बाजार में बेचना शुरू किया, जो कि खासा मुफीद भी था। क्योंकि एक तो वो जल्दी पकड़ा नहीं जाता था, दूसरे अगर वो पकड़ा भी पाता था तो उसकी विशेष–कद–काठी देखकर लोग उसपर दया करके छोड़ देते थे।

आसानी से पैसा आया तो अपने साथ लत भी लाया। उसकी भूखमरी दूर हुई तो उसने लड़कियों को महँगे तोहफे देने शुरू कर दिये थे। घर में, परिवार में, समाज में 'सौ अवगुन लक्ष्मी हरे' वाली कहावत चरितार्थ हो रही थी राजीव के मामले में। दिन–ब–दिन राजीव का महत्व बढ़ रहा था। जितना संजीव महीने भर में कमाता, उतना राजीव नेपाल के दो चार फेरे लगाकर कमा लेता। लेकिन बार्डर पर एस.एस.बी. की तैनाती ने राजीव को कहीं का नहीं छोड़ा था। रूपईडीहा बार्डर पर जब वो एक बोरी डली के साथ पकड़ा गया, तो उसका चालान करके जेल भेज दिया गया। राजीव मुश्किल से छूटा, अब वो दागी हो चुका था समाज की नजरों में। उसे कोई रोजगार न मिला। रिक्शा चलाना, चाय बेचने में उसका ब्राह्मण होना बाधा था।

पूँजी घर में थी नहीं, सो उसने मुम्बई की राह ली। मुम्बई क्या उसके लिये पलक पाँवड़े बिछाये बैठी थी। मुम्बई अब वो शहर था, जो अपनी पहचान से जूझ रहा था। कहने को यहाँ या तो अंग्रेजी चलती थी या मराठी। मराठी भाषा और मराठी मानुष की एकता ऊपर से जितनी दिखाई दे रही थी, उतनी हकीकत में थी। नहीं अंग्रेजी और मराठी के वर्चस्व वाले इस शहर में शायद राजीव के लिये भी कुछ था और इसी कुछ की तलाश में राजीव महीनों मुम्बई की खाक छानता रहा। राजीव अपने जिस रिश्तेदार के घर पहुँचा था, वो मुम्बा देवी मंदिर के सामने आम बेचते थे फुटपाथ पर आम बेचना, आम की दुकान सजाने से पहले खाना बनाकर खा लेना। उसी स्थान पर फिर दुबारा दुकान लगाना और रात को उन्हीं पेटियों पर अखबार बिछाकर सो लेना। नहाना–धोना सब बी.एम.सी. के शेयरियाँ शौचालय और नल से। कमाल का शहर, दिल फरेब जिन्दगी सबके हाथ में एन्ड्रायड और सबके पैरों में एडिडास के जूते, मगर पैरों के नीचे जीमन नहीं। ये फंतासियों और ये ख्वाबों की उम्मीद अब कत्लगाह में तब्दील हो रहे थे। राजीव अपने घरेलू नाम मिन्टू के जरिये बीसियों दिन वहीं पड़ा रहा। उसका नानपारा का पड़ोसी जमील, जिसके आश्वासन पर वो बाउम्मीद था। जमील उन दिनों पिजहट कम्पनी में था। आठ घंटे की जानलेवा नौकरी जो पिजहट में थी, वो भी जमील उसे नहीं दिला सका। क्योंकि मिंटू के पास कोई डिग्री नहीं थी। जमील के जब सारे प्रयास विफल हो गये। उसने राजीव को समझाया–जो दस–पाँच लोग तुझे इस शहर में जानते हैं ,उनको अपना असली नाम राजीव कभी मत बताना। बस पुकारू नाम मिन्टू ही बताना। ये ताकीद एक योजना का हिस्सा थी, जिसके खुल जाने से खेल की तासीर बिगड़ सकती थी।

जमील से पैसे लेकर उसने फिर नानपारा की राह ली। घर पहुँचकर उसने अपने भाई संजीव की मार्कशीट की और उसे अपने इरादे बताये। संजीव का विवाह तय हो रहा था। उसने किसी लफड़े में फँसने से आशंकित होकर आनाकानी तो
की, मगर अपने लघुकाय भाई के लिये उम्मीद देखकर उसका मन द्रवित हो उठा। उसने अपनी मार्कशीट, चंद रुपये और भाई को विजयी भवः का आशिष दिया। इंटर की मार्कशीट हाथ लगी, तो राजीव को मानो पंख लग गये थे। उसने खुद कई दिनों तक अभ्यास किया था, खुद के संजीव होने का। जमील ने अपने प्रयासों से उसे नौकरी तो दिला दी, मगर न तो उसे अंधेरी उपनगर की ब्रांच मिली और न किचन, न ही काउन्टर उसे हाउसकीपिंग में रखा गया था। हाउसकीपिंग अपने आपमें जितना फँसी नाम था, वो काम उतना ही भयावाह था। पिज्जा, बर्गर काफी की इस दुकान में ग्राहक खुदा था। मुम्बा देवी की फुटपाथ पर रात बिताकर भयंदर की नौकरी आसान न थी वेस्टर्न लाइन से सेंट्रल लाइन आना, फिर ट्रेन पकड़ना और फिर आटो या बस से पिजहट। लगातार तीन दिन की देरी से खिन्न मैनेजर ने उसे चौथे दिन नौकरी छोड़ने का अल्टीमेटम दे दिया। राजीव को फिर जमीन सूँघ गया। उसने जमील के पैर पकड़े। जमील ने उस ब्रांच के मैनेजर से मिन्नते की, तो राजीव को एक मोहलत और मिल गयी, मगर ये मोहलत कबतक रहनी थी। हारकर जमील ने इसे मालवणी में ठहरने को कहा। मालवणी से भयंदर वेस्टर्न लाइन पर ही था, फिर सीधी बस भी जाती थी वहाँ तक। मगर बस खासी महँगी थी। ये विश्वव्यापी मंदी के शुरुआती साल थे, जिसमें महेन्द्र सिंह धोनी टी–20 विश्वकप जीत चुके थे और तब राजीव की तनख्वाह पाँच हजार रुपये थी। मालवणी से मलाड की बस, मलाड स्टेशन से भयंदर लोकल ट्रेन से। मगर मालवाणी भी अब उतनी आसान नहीं रही थी। जमील ने राजीव के रहने का इंतजाम एक सिलाई के कारखाने में कर दिया था, सिर्फ पाँच सौ रुपये महीने पर। सारे कारीगर मुसलमान थे। रोज मांस, मछली, अंडा बनाते थे, तो साथ खाने–पीने का सवाल ही नहीं था। कारीगर दिन भर
नात सुनते और हिन्दुओं की खिल्ली उड़ाते। हिन्दू देवी–देवताओं पर होनेवाले तंज से राजीव बहुत आहत होता, वो जमील को सब बताता, बहुत मिन्नतें करता कि वो उसे अपने कमरे में रख ले, मगर जमील असमर्थता जता देता।

दिन ऐसे ही बमुश्किल बीतते गये और एक दिन रात को कारखाने में भयंकर झगड़ा हुआ, तो एक कारीगर ने उस पर कैची से हमला किया। वो रोता हुआ खून खच्चड़ खोजते–खोजते जमील के कमरे तक पहुँचा। यहाँ उस कमरे पर एक लड़की मिली, जिसने अपना नाम हलीमा बताया। उस युवती ने राजीव की मल्हमपट्टी की और जमील को ड्यूटी से भी बुला लिया। जमील जब कमरे पर लौटा, तो उसे अपना ये राज बताना पड़ा राजीव को कि वो इस लड़की के साथ बिना शादी के रह रहा है, इसे लिव इन कहते हैं और ये मुम्बई शहर में बहुत आम बात है। जमील, राजीव को लेकर सिलाई के कारखाने पर पहुँचा। दरयाफ्त की, तो पता चला कि राजीव ने कारखाने के एक कोने में गणेश लक्ष्मी की मूर्ति लगा रखी है। जहाँ रोज सुबह वो धूप–अगरबत्ती सुलगाकर चालीसा पढ़ता था। यही बात मुस्लिम कारीगरों को गवारा न हुई, तो नात और चालीसा की बहस मारपीट में बदल गयी। राजीव शरीर से लघुकाय था। लोगों ने उसे मिलकर बहुत बुरी तरह से पीटा था और फिर आगे पीटने की फिराक में भी थे। रज्जू मियाँ और उनके कारीगरों को ये हर्गिज गवारा न था कि उनके कारखाने में पूजा–पाठ हो, पूजा–पाठ न भी हो तो एक लघुकाय हिन्दू के सामने वे जब्त होकर क्यों रहे। ये उनकी अपनी सीमित दुनिया थी, जहाँ वे सामूहिक रूप से अपना गुस्सा और भड़ास निकाल सकें।

जमील बहुत दुखी हुआ, वो अगर राजीव को मुम्बा देवी भेजता है तो नौकरी जाती है और अगर मालवणी के इस कारखाने में रखता है तो मारपीट की आशंका बनी रहती है। हारकर जमील, राजीव को अपने घर ले आया। घर क्या था एक आठ बाई आठ की खोली थी, जिसमे दो लोग गुजारा कर रहे थे। कहते हैं दिल में जगह हो तो हर जगह गुंजाइश बनी रहती है। राजीव न जमील का दोस्त था न रिश्तेदार, बस उसके शहर का था। राजीव के कमजोर शरीर के कारण जमील के दिल में उसके लिये सहानुभूति थी।
अजब–गजब रंग जिन्दगी
के चलते रहे। कभी राजीव की नाइट शिफ्ट तो कभी जमील की नाइट शिफ्ट और उन सबके बीच पीसती रही हलीमा। एक औरत को वो कमरा कभी अकेले नसीब न हुआ इस महानगर में। जबकि नारीवादियों ने शी–टाइम का एक बहुत बड़ा अभियान छेड़ रखा था। कमरा साझा था, दुख साझा था, रोटियाँ साझी थी, बस साझे नहीं थे तो उनके सपने। इसी बीच जमील ने पिजहट वाली नौकरी छोड़ दी। उसे जुहू के एक होटल में दूसरी अच्छी नौकरी मिल गयी थी। जमील को एक स्टाफ क्वार्टर भी मिल गया था, जो बम्बई की इस कहावत को चरितार्थ कर रहा था कि बम्बई में भगवान का मिलना आसान है, मकान का मिलना मुश्किल है। अपने नये रोजगार पर जमील ने हलीमा को अपनी ब्याहता पत्नी बताया था, सो वो अब रहने के लिये जुहू जानेवाला था। जमील मुसलमान था और राजीव हिन्दू, वरना वहाँ भी राजीव को वो अपना भाई बनाकर घर में रख लेता, मगर जमील को राजीव के रहने की बड़ी फिक्र थी।

इसी फिक्रमंदी और तलाश के दौरान जमील की मुलाकात शेखर से हुई, जो घर से तुनककर भाग आया था और वो भी नानपारा से था। शेखर अब इस शहर में प्राइवेट टीचिंग और कोचिंग से अपना गुजारा कर रहा था। वो

एक बेहतरीन बाँसुरीवादक था, मगर महानगर के शोर में उसकी बाँसुरी कहीं दब गयी थी। कभी जिन्दगी ने मोहलत दी और पैरों के तले जमील आयी, तो वो भी दुबारे बाँसुरी की धुनें इस शहर को सुनायेगा और भी पैसे लेकर। जमील उसका पुराना परिचित था, मगर ये परिचय फिर से नया हो गया था। शेखर भी इधर–उधर टहलकर दिन काट रहा था। जमील ने शेखर को खोली खोजने, एग्रीमेन्ट बनाने और धनी से मोलभाव करने में खासी मदद की, खुद एग्रीमेंट में गवाही भी बना। शेखर जमील की इस मदद का थोड़ा मुरीद था। जुहू शिफ्ट होने से पहले जमील ने शेखर को ये प्रस्ताव दिया और इल्तजा भी की कि वो संजीव को अपनी खोली में रख ले। जमील ने राजीव को संजीव बनाकर ही मिलवाया था शेखर से, ताकि कल को कोई शक सुबहा की नौबत न आये। शेखर भी जरूरतमन्द था, उसने संजीव को अपनी खोली में पनाह दे दी। राजीव अब पूरी तरह से संजीव था। जब भी संजीव को लगता उसकी जिन्दगी पटरी पर लौट आई है, तभी कोई–न–कोई बखेड़ा खड़ा हो जाता था। जमील ने नौकरी क्या छोड़ी, उस पिजहट में उसका इकबाल भी जाता रहा था। जबतक जमील था, तब तक लघुकाय संजीव से कोई विशेष मेहनत वाला काम मैनजर नहीं लेता था। मगर जमील के जाते ही सबके तेवर बदल गये। गालिबन अब भी वो हाउसकीपिंग में ही था। मगर नये मैनेजर को लगता था कि उसके जैसे लघुकाय व्यक्ति को सामने देखकर ग्राहकों के मन में खिन्नता पैदा होती है कि कम्पनी के पास चमचमाते चेहरे और अच्छे डील–डॉल के व्यक्ति नहीं है क्या। फिर अंग्रेजी भाषा का अपना रुआब था। अंग्रेजी न बोल पानेवालों को मुख्य काउंटर से हटा दिया गया, जिनमें संजीव भी था। मजे की बात ये थी कि रिक्शेवाला, खोमचेवाला भी बीस रुपये में ही पिजहट में जा सकता था, मगर उसके सेवक अंग्रेजीदार हो। संजीव की ड्यूटी वाशरूम में लगा दी गयी। वाशरूम एक बहुत छोटी सी जगह, जिसमें बमुश्किल सात–आठ लोग एक वक्त में रह सकते थे। जिसमें तीन यूरिनल थे, दो वाश बेसिन थे और चार शौचालय कक्ष थे। दो महिला, दो पुरुष मगर वाशरूम सबका कामन ही था। एक बड़ा सा आइना भी था, जिसमें लोग आते कपड़े बदलते बनाव–शृंगार करते, कुछ चूमा–चाटी का भी प्रयास करते हैं। संजीव की ड्यूटी अब वहीं थी। लोग वाशरूम में गंदगी न करें, इसलिये हाउसकीपिंग का एक बन्दा उनको सब बताता–समझाता रहता। संजीव अब रूम फ्रेशनर, हैंडवाश, टायलेट क्लीनर का रखवाला था। शौचालय के बाहर इंतजार कर रहे और कोने के दो महिला शौचालय की तरफ कोई जाने की कोशिश करता, तो संजीव उसको टोकता–'समबडी इज इनसाइड' (कोई अंदर है) यही बताना उसका काम था। पिजहट में वाशरूम ही एक ऐसी जगह थी, जहाँ सी.सी.टी.वी. कैमरे की पहुँच न थी। पिजहट आनेवाली अधिकांश महिलाएँ वाशरूम का प्रयोग करती, अपना मेकअप दुरुस्त करती। पुरुष जाते तो खुद को सजाते–सँवारते और अगर महिला–पुरुष इकट्ठे जाते तो प्रेमालाप करते थे। बेसिन पर लोग इधर–उधर थूक या उल्टी कर जाते, तो राजीव उन्हें साफ करता। शौचालयों की टोटी खुली रह जाती, तो उन्हें बन्द करता।

तमाम महिलाएँ अपने अतिरिक्त कपड़े, पर्स और दूसरे सामान शौचालय जाने से पहले संजीव को तका कर जाती, तो संजीव उनको पकड़े खड़ा रहता, बडी हसरत से उन जनाना सामानों को निहारता, सहलाता। कुछ महिलाएँ कमोड में सेनेटरी पैड फेंक जाती, जिससे कमोड चोक हो जाता। संजीव स्वीपर की मदद से उसको साफ करवाता। सभी जरूरतमंदों को साबुन, टायलेट क्लीनर, रूम फ्रेशनर उपलब्ध करवाता और फिर उन्हें करीने से सजाकर रखता। खड़े–खड़े उसकी टाँगे दुखने लगती थी। पिजहट में उसे खुद कुछ भी खाने–पीने की छूट न थी, मगर पेट की आग तो बुतानी ही थी। पिज्जा बेचो, पर पिज्जा मुफ्त में खा नहीं सकते। सिर्फ दो बर्गर दोपहर को खाने को मिलते थे। नथुनों से लेकर फेफड़ों तक पूरे शरीर में शौचालय की बू भरी रहती थी। टायलेट क्लीनर से रूम फ्रैशनर और दूसरी की जिस्मानी इल्लत झेलने का एहसास।

ब्राह्मण विद्या से जाये, तो क्या–क्या दुख न पाये। स्नान–ध्यान, तन–मन की शुद्धता, पूजा–पाठ और दुराचारियों से दूर रहने की ताकीद सुनते उसका बचपन बीता था। अब उतनी ही तन–मन की बू में डूबा उसका आज था। खाना खाने बैठता तो थूक, खखार और उल्टी याद जाती। ये याद आते ही खाने से उसका मन खिन्न हो जाता था। खाना खाते–खाते अचानक उसका मन भिन्ना जाता, तो वो खाना छोड़ देता था। शेखर उसे इस खाने की बर्बादी पर बहुत भला–बुरा कहता था। दोनों का दुख साझा था, मगर धीरे–धीरे दुख घट भी रहा था। मगर संजीव की जिन्दगी इतनी आसान कहाँ रहनेवाली थी। तभी आया पैनकार्ड का लफड़ा। पिजहट का निर्देश पैनकार्ड के बिना सभी भुगतान रोक दिये जाएँगे। इसके पीछे भी इस अति आधुनिक शहर मैं जातिगत कुंठा थी। पिजहट के ब्रांच मैनेजर विवेक कायसे जो कि दलित था, उस तक संजीव राजीव बाली बात किसी ने चुगली की थी। विवेक कायसे ने अपनी जातिगत कुंठा निकालने के लिये संजीव को शौचालय में लगाया था और फिर जब कानाफूसी शक–सुबहा की नौबत आयी, तो इस लघुकाय ब्राह्मण की वो नौकरी ले लेने पर आमादा था। इसका कारण ये था कि तमाम पर्व और त्योहारों पर पिजहट के कर्मचारी विवके कायसे के पैर छूते थे, लेकिन संजीव ने अपनी जातिगत श्रेष्ठता के कारण मैनेजर के कभी पाँव न छुये, उसे ये बात खटक गयी थी। अब जातिवाली सच

दोनों तरफ काम कर रही थी। ये बात जब संजीव की समझ में आयी, तो वो जान गया कि ये नौकरी अब न बचेगी, क्योंकि संजीव के असली फोटो वाला पैनकार्ड तो नानपारा की ट्रांसपोर्ट कम्पनी में पहले से लगा हुआ था। जब वो राजीव था, संजीव नहीं। मुम्बई में अब उसके लिये शायद कुछ न बचा था। सिक्योरिटी एजेंसी में उसे लघुकाय के कारण नहीं रखा गया। केरियर में उसे अंग्रेजी पढ़ न पाने के कारण और मराठी बोल न पाने के कारण नहीं रखा गया। बाकी सारी नौकरियाँ जी तोड़ शारीरिक मेहनत वाली थी, जो उसका शरीर देखकर ही उसको नहीं मिली थी। पिजहट की सत्रह रूपये घंटे वाली नौकरी भी महीने में उसे पाँच हजार से ऊपर न कमवा पाती थी, फिर पैनकार्ड का अड़ंगा आया तो ये भी जानेवाली थी। तीन महीने तक तनख्वाह नहीं मिली, तो संजीव ने फिर जमील की शरण ली। जमील भी अब काफी हद तक बेबस था। उसने संजीव को नानपारा वापस लौट जाने की सलाह दी और तीन महीने की बकाया तनख्वाह दिला देने का आश्वासन दिया। जमील ने अपने पुराने संपर्कों के बलबूते संजीव को उसकी तनख्वाह दिला दी। कंपनी के अपने संगी–साथियों को उसने माँ की बीमारी का हवाला दिया और चल दिया अपने वतन। ट्रेन तक उसे शेखर विदा करने आया था। बड़ी तेजी से स्टेशन पीछे छूटते जा रहे थे और बड़ी हसरत से वो सपनों की नगरी को निहार रहा था, वो चिंतामग्न था कि आगे क्या होगा, मगर फिलहाल मुम्बई की रंगीनी को निहार रहा था, क्योंकि आधी रात को मुम्बई झिलमिला रही थी।

कहानी

रोजगार

शंकर लाल माहेश्वरी
ग्राम–आगूचा, भीलवाड़ा
राजस्थान–311022
मो.–9214581610

रामधन अब बूढ़ा हो गया। कमर झुक गई। लकड़ी ही उसके चलने का सहारा बन गई। सेवा निवृत्ति के 25 साल बाद भी उसका परिवार वहीं का वहीं ठहरा हुआ–सा है। बड़ी लड़की आभा भी विधवा हो जाने के बाद रामधन के पास ही रहती है। छोटी सुरभि तो पिया के संग विदेश चली जाने के बाद सुध भी
नहीं ली अपने बाप की उसने। बेटा राहुल एम.ए. प्रथम श्रेणी से पास कर चुका और अपने कॉलेज में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने पर सम्मानित भी हुआ। रामधन अचानक ही पक्षाघात से पीड़ित हो गया। खूब ईलाज भी करवाया, किन्तु सुधार नहीं हो पाया। वह दिन भर बिस्तर पर पड़े–पड़े भावी दुश्चिंताओं से ग्रसित रहने लगा। स्थिति बिगड़ती जा रही थी। माँ की बूढ़ी आँखें भी कब तक पड़ोसी बच्चों को ट्युशन पढ़ाती रहेगी? ऐसी हालत में पेंशन के पैसे से कोई कैसे काम चलाए? अकेला पड़ गया बेचारा रामधन। दिन–प्रतिदिन चिन्ता गहराती गई। जो रामधन रोज सुबह 4 बजे उठकर दण्ड बैठक लगाकर घूमने निकलता था। आज चार महीने से खाट पर लेटा रहने को मजबूर हो गया। सुबह चार बजे साथ घूमनेवाले भी चार माह बीत जाने के बाद भी रामधन की सुध लेने नहीं आये। यह कैसा दस्तूर है दुनिया का?

बेटा राहुल नित्य प्रति सुबह रोजगार की तलाश में निकलता और शाम होते तक घर आकर निराश हताश होकर
पड़ जाता। प्रथम श्रेणी में एम.ए तक की पढ़ाई कर लेने के बाद भी रोजी–रोटी का जुगाड़ नहीं कर पाया तो ऐसी पढ़ाई किस काम की? इससे तो जीतू लुहार का छोकरा दसवीं पास करते ही अपने पुश्तैनी धन्धे में लग गया, जो आज लाखों का हिसाब किताब रखता है। शिक्षा तो ऐसी होनी चाहिए कि पढ़ाई पूरी करते ही रोजगारोन्मुख होकर सुखी जीवन–यापन कर सके। राहुल उस दिन भोजन करके घर की सीढ़ियों की चौखट पर अनमना–सा बैठा हुआ सोच रहा था कि अब करें तो क्या करें? इसी समय रामधन के बचपन का दोस्त, जो विदेश में रहता है, उसके कुशलक्षेम पूछने के लिए आ धमका। दीन दयाल है नाम उसका। बड़ा खुशमिजाज है। लाख परेशानियाँ हो, तब भी वह समभाव बनाये रखता है। संतुलन नहीं खोता रामधन की दशा देखकर कहने लगा–दादा! 'हारिए न हिम्मत बिसारिये न हरि नाम' निराश होने की जरूरत नहीं है। कहते हैं, जब व्यक्ति पर
चारों और से विपत्ति का पहाड़ टूट पड़े, तो ऐसी अवस्था में सब कुछ ऊपरवाले पर छोड़ देना चाहिए। जिस प्रकार दुख आता है, उसी प्रकार जीवन में सुख के दिन भी आते हैं। राहुल की चिन्ता मत करें सब समय आने पर ठीक होगा। भैया! चिता तो हमारे शव को ही जलाती हैं, किन्तु चिन्ता जीते जागते इंसान को ही जला डालती है। बुढ़ापे को भुनभुनाते हुए जीने की बजाए, गुनगुनगुनाते हुए जीयें। आशावादी बनकर जीना सीखें। निराशावादी हर अवसर में कठिनाई देखता है, जबकि आशावादी हर कठिनाई में अवसर देखता है। इसीलिए आशावादी बनकर जीवन को जीयें, समय पर सब कुछ ठीक होगा।

दीनदयाल को आज ही विदेश लौटना था। रामधन से विदा लेकर बाहर की बैठक में राहुल को साथ बिठाकर गले में बाँहे डाल उसे यह हौसला दिलाया कि बेटा राहुल! ध्यान रख जब सफलता का एक दरवाजा बन्द होता है, तो दूसरा दरवाजा खुल जाता है; लेकिन हम सदैव बन्द दरवाजे को ही देखते हैं, खुले दरवाजे की ओर नहीं देखते। जहाँ हिम्मत समाप्त होती है, वहीं तो हार की शुरुआत होती है। धीरज मत खो, कदम आगे बढ़ा। ध्यान रख, हर सफलता का इंजीनियर व्यक्ति स्वयं ही होता है। अगर वह अपनी आत्मा की ईंट और जीवन की सीमेंट उस जगह लगाये, जहाँ चाहते हैं, तो सफलता की बड़ी मजबूत इमारत खड़ी कर सकता है। मोती तो सदैव समुद्र में गोता लगाने पर ही मिल सकते है, किनारे पर बैठकर नहीं पा सकते। सफलता के लिए नए रास्ते चुनो। मैं तुम्हें सफलता का एक ही गुरु मन्त्र देकर जा रहा हूँ, वह यह है–सर्वप्रथम अपना लक्ष्य निर्धारित कर, फिर कार्य की योजना बना, जो उस लक्ष्य तक पहुँचा सके और फिर उस काम में तबतक जुटे रहना, जबतक निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो जाये। हमेशा ध्यान रखना जीवन युद्ध में बलशाली और तेज दौड़ने वाले ही नहीं जीतते, बल्कि हर युद्ध में वे ही जीतते हैं, जो यह सोचते हैं कि वे जीत सकते हैं। भरोसा होना चाहिए अपनी काबिलियत पर, हिम्मत के साथ ही अपनी काबिलियत साथ देती है। कागज अपनी किस्मत से उड़ता है, किन्तु पंतग अपनी काबिलियत से। आगे बढ़ो, चल पड़ो, कंटकाकीर्ण मार्ग की चिन्ता मत करो। तुम्हारी मेहनत और दृढ़ इच्छाशक्ति तुम्हारी राह के काँटों को भी अवश्य फूल बना देगी।

दीनदयाल की सीख का जबरदस्त प्रभाव पड़ा राहुल पर, वह हिल सा गया। नई ऊर्जा का संचार हुआ। नई उमंग और नये जोश के साथ चल पड़ा अपनी मंजिल की ओर, निश्चय में मजबूती आ गई। वह जान गया कि इंतजार करने वालों को तो केवल इतना ही मिलता है, जितना कोशिश करने वाले छोड़ जाते हैं। अब राहुल हौसलों की उड़ान पर है। आज राहुल बड़े तड़के ही उठा, नहा–धोकर तैयार हुआ। माँ–बापू के
चरणस्पर्श कर काम की तलाश में जयपुर जाने की आज्ञा प्राप्त कर निकल पड़ा। भावी संभावनाओं की सूची निर्मित करता हुआ जयपुर पहुँच ही गया। दोपहर वाली ट्रेन से स्टेशन के बाहर ही ठेलेवाले, रिक्शेवाले को देखकर मन में आया कि क्यों नहीं ये ही काम कर लूँ? उससे मुसाफिरों से जाते–आते बातचीत होगी, किसी से परिचय भी बढ़ेगा, तो किसी के सामने काम–काज की बात भी कर सकता हूँ। कभी–न–कभी किसी–न–किसी से तो काम का जुगाड़ बैठ सकता है। इसी उधेड़बुन में चौराहा पार कर ही रहा था कि एक हरा–भरा बगीचा दिखाई दिया। वह उस बगीचे में पहुँचा और जल मंदिर के पास वाली सूनी बेंच पर बैठ गया। समीप ही खड़े खोमचेवाले से भूख बुझाने के लिए एक के बाद एक समोसा खरीदा, पुराने अखबारी कागज के टुकड़े पर मसालेदार समोसों का

रसास्वादन कर अखबार के टुकड़ो को वहाँ रखे कूड़ेदान को समर्पित करने ही वाला था कि उसकी नजर अखबारी कागज पर लिखे विज्ञापन पर पड़ी। उसमें लिखा था–मिलिए, वर चाहिए तो वर से और वधु से।' उसकी आँखें उसी विज्ञापन पर टिक गई। पूरा विवरण एक ही साँस में पढ़ गया। सोचा, क्यों नहीं इसी विज्ञापन को आधार बनाकर अपना रोजगार प्रारम्भ किया जाए। अब क्या था, आशा अमर हुई, नई उमंग से भर गया।

समीप के जल मंदिर पर जाकर अपनी प्यास बुझाई और आज के अखबार की तलाश में आगे बढ़ गया। थोड़ी दूर
जाने के बाद शिव मंदिर की सीढ़ियों पर एक छोकरा जोर–जोर से बोल रहा था। वर चाहिए, तो लीजिए आज का यह अखबार पढ़िये, आपको वधू भी मिलेगी। पढ़े–लिखे नौकरी पेशेवाले किसी भी जाति समुदाय के हों, मिलेंगे हमउम्र के स्वस्थ व जोड़ीदार रिश्ते राहुल का रास्ता साफ होता जा रहा था। उसने वह अखबार खरीदा और वर–वधू वाले विज्ञापन को काटकर अपनी जेब में रखा।

दूसरे दिन नौ बजे का समय था। नाश्ता किया और भविष्य का हिसाब–किताब लगाने लगा। तभी अखबार बेचने वाला छोकरा आया और उससे आज का अखबार खरीदा। वर वधू का पन्ना पलटा। विज्ञापन में जोड़ीदार की तलाश की। जोडीवाले वर–वधू को पत्र लिखना प्रारम्भ किया। तीन चार दिनों के बाद ही उसके फोन की घंटी बजती सुनाई दी। भैयाजी! आपका पत्र मिला काम करवा दें। आपका प्रस्ताव अच्छा लगा, हम तैयार हैं। काम शीघ्र करवायें, आपका मेहनताना हाथोंहाथ मिल जाएगा। इस प्रकार वैवाहिक विज्ञापनों से रोजगार बढ़ता गया। दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति हुई। अच्छा भला बिन पैसे का रोजगार मिला, तो वह फूला नहीं समाया। उसने इसी रोजगार में कई विधवाओं को सधवा बना दिया और कई तलाकशुदा को शादी शुदा बनाकर पुण्य कमाया। वह उसके लिए वरदान सिद्ध हुआ। पिता रामधन का जयपुर में ही रहकर बड़े ख्याति प्राप्त डॉक्टर से उपचार करवाया। पिता तन से और बेटा मन से स्वस्थ होकर परिवार सहित आनन्द का जीवन जीने लगे।

बगीचे के उस जल मंदिर पर एक अपंग 24–25 वर्ष की एक विकलांग विधवा लड़की रोज पानी पिलाने का ही काम
कर अपनी रोजी कमाती हैं। बेचारी का पति उत्तराखण्ड की त्रासदी में भगवान को प्यारा हो गया था। वह लड़की सुबह तो पैसे वालों के घर जाकर झाड़ू बुहारी कर पैसा कमाती, तो आधा–अधूरा पेट भरने को मिल जाता, जब प्याऊ के काम से छुटकारा मिलता, तो दिन भर में प्राप्त हुए पैसों से भरपेट भोजन का इंतजाम कर लेती थी। कोई प्यासा दया भाव से तो कोई उदारता दिखाकर और कोई मनचले अपनी मौज से पानी
का पैसा डालकर जाते थे। सायंकाल मस्त मजदूर की दशा लिए वह घर जाती और दूसरे दिन की प्रतीक्षा करती। उसका नाम सुधा है।

एक दिन राहुल अकेले में उसकी राम कहानी सुनकर द्रवित हो गया और उसने उसे जीवन संगिनी बनाने का प्रस्ताव रखा, तो वह राजी हो गई और माता–पिता की साक्षी में धूमधाम से शादी हो गई। रोजगार के इस कारोबार में दोनों ही जी जान से लग गये। सुधा ने कम्प्यूटर और इंटरनेट का ज्ञान प्राप्त कर इस व्यवसाय को आगे बढ़ाने में सहयोग दिया। दीनदयाल विदेश में रहते हुए भी राहुल व रामधन की खैर–खबर लेता रहा। राहुल के कारोबार की उन्नति से वह बड़ा खुश हुआ। रामधन भी स्वस्थ होकर इस व्यवसाय में जुड़ गया और राहुल का सहारा बन गया। राहुल का कारोबार बढ़ता गया। कई लोगों की गृहस्थी चल पड़ी। पहचान बढ़ी, तो धन्धा भी बढ़ गया। आज ही के दिन तो साल भर पहले काम शुरू किया था राहुल
ने। अब वहीं अपना घर भी बसा लिया। माँ–बाप भी एक साथ रहने लगे। आज राहुल को समझ में आया कि दो अक्षर का 'लक' ढाई अक्षर का 'भाग्य' तीन अक्षर का 'नसीब' और साढ़े तीन अक्षर की 'किस्मत'–ये सभी चार अक्षर की 'मेहनत' से छोटे होते हैं।

सुसंभाव्य
प्रकाशन

कार्यालय
भवानी कॉम्पलेक्स, पटल बाबू रोड
गुरुद्वारा गली के सामने, भागलपुर (बिहार)
Mob.: 9931240303